सुलभजैनग्रन्थमाला— नं० ११



६३६७५ A.

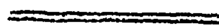
श्रीपरमात्मने नमः।

श्रीवृहज्जिनवाणीसंग्रह

संपादक—
पन्नालालबाकलीवाल सुजानगढ निवासी।



प्रकाशक और मुद्रक—
श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ मंत्री—
भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था



जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस
९ विश्वकोष लेन बाघबाजार कलकत्ता।



प्रथमावृत्ति।

वीरनिर्वाण संवत् २४५५ ईस्वी सन् १९२९।

न्योछावर—एक रुपया, जिल्द सवा रुपया।

सावधान! सावधान!!

सुनहरी नाम और रेशमी कपडेकी जिल्दका चाक्यचिक्य देखकर धोका न खावैं, क्योंकि सुनहरी नाम छपानेसे नियमसे मुर्गीके अंडेको फोडकर उसमेंका चेप लगाते हैं, तब सोनेका वर्क चिपकता है और रेशमी कपडा बिना सरेसके चिपकता नहीं, इसीकारण हमने सोनेरी अक्षर और रेशमी कपडा नहीं लगाया है। अतएव बाहरी सुंदरता देखकर नहिं छूने लायक, अन्य संग्रहोंको न लेकर इस पवित्र बृहज्जिनवाणीसंग्रहपरसे ही पाठ, स्वाध्यायादि किया करैं।

मंत्री—

६३७८५. A.

आवेदन।

संस्थाने अपने उद्देश्यानुसार सुलभ प्रचारार्थ इस संग्रह ग्रंथका मुद्रण किया है। प्रत्येक जैनी भाईके नित्य काममें आनेवाले पाठ इस संग्रहमें प्रायः सब ही आगये हैं। न्योछावर भी इतनी कम रक्खी गई है जिससे गरीब अमीर सब ही लाभ उठा सकते हैं। छपाई कपड़ेके पवित्र बेलनोंसे हुई है, जिल्द अरारोटकी लेईसे हिंदूके द्वारा बांधी गई है, मतलब यह कि--सरेस आदि किसी भी अपवित्र वस्तुका इसमें संपर्क नहीं कराया गया है।

धन्यवाद।

आजसे लगभग १०-११ साल पहले धरणगांवनिवासी सेठ झूमकराम भगवानसा संस्थामें आठसौ रु० प्रदानकर दानी सहायक बने थे, उनके प्रदत्त द्रव्यसे श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४४३ में अध्यात्मका ग्रंथ 'तत्त्वज्ञानतरंगिणी' प्रकाशित हुआ था, उसके बाद उक्त ग्रन्थकी आई हुई न्योछावरसे स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा स्व० पं० जयचंद्रजीकृत वचनिका सहित ग्रंथ वीर संवत् २४४७ में छपा था। उसके बाद अब यह श्रीवृहत्-जिनवाणीसंग्रह गुटका छपाया गया है। इसीप्रकार सदा अनेक ग्रन्थोंका उद्धार होता रहेगा। उक्त दानी महाशयके प्रदत्त द्रव्यसे जो जैनसमाज-का उपकार हुआ है उसके लिये वे कोटिशः धन्यवादके पात्र हैं। इसी प्रकार जो एकबार कोई रकम दान देकर सदा जिनवाणी माताकी सेवा करना चाहते हैं उन्हें संस्थाका दानीसहायक हो कर स्वपरकल्याण करना चाहिये।

निवेदक—

पन्नालाल बाकलीवाल महामंत्री—

भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनीसंस्था—कलकत्ता।

विषय-सूची।



प्रथम अध्याय प्रातःक्रिया और दर्शन पाठादि संग्रह।

दूसरा अध्याय। अभिषेक पूजादि संग्रह।

तीसरा अध्याय।

देवशास्त्रगुरुस्तुतिसंग्रह।

चौथा अध्याय।

स्तोत्रसंग्रह संस्कृत और भाषा

पंचम अध्याय

भाषा पर्वपूजा-संग्रह

संख्या — पृष्ठ

छठा अध्याय-आरती संग्रह ।

सातवां अध्याय वीनतीसंग्रह ।

आठवां अध्याय-भावनासंग्रह ।

नवमा अध्याय-परमारथ जकड़ी संग्रह।

दशवां अध्याय-जैनव्रत कथा संग्रह।

ग्यारहवां अध्याय-जैनकथा संग्रह।

बारहवां अध्याय उपदेश संग्रह।

तेरहवां अध्याय फुटकर संग्रह।



वृहज्जिनवाणीसंग्रह।

प्रथम अध्याय।

प्रातःक्रिया और दर्शनपाठादि संग्रह।

प्रत्येक जैनबंधुको सुवह उठ कर नीचे लिखे मंत्र और पाठ बोलने चाहिये और सातव पृष्ठमें बतलाई गई विधिके अनुसार सामायिक करना चाहिये।

१। नमस्कारादि मंत्र।

गाथा।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥
अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।

स्वर्गीय पं० महाचंद्रकृत

२ सामायिक पाठ।

१ प्रतिक्रमण कर्म।

काल अनंत भ्रम्यो जगमें सहिये दुख भारी।
जन्ममरण नित किये पापको ह्वै अधिकारी ॥
कोटि भवांतरमांहिं मिलन दुर्लभ सामायिक।
धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक ॥ १ ॥
हे सर्वज्ञ जिनेश ! किये जे पाप जु मैं अब।
ते सब मन-वच-काय-योगकी गुप्ति विना लभ ॥
आप समीप हजूर मांहिं मैं खडो खडो सब।

दोष कहूं सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब ॥ २ ॥
क्रोधमानमदलोभमोहमायावशि प्रानी ।
दुःखसहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी ॥
विना प्रयोजन एकेन्द्रिय वितिचउपंचेंद्रिय ।
आप प्रसादहि मिटैं दोष जो लग्यो मोहि जिय ॥ ३ ॥
आपसमें इकठौर थापि करि जे दुख दीने ।
पेलि दिये पगतलें दाबि करि प्राण हरीने ॥
आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक ।
अरज करूं मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक ॥ ४ ॥
अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय ।
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय ॥
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि ।
यह पणिकोणो कियो आदि षटकर्ममांहिं ॥ ५ ॥

२ प्रत्याख्यान द्वितीय कर्म ।

इसके आदि वा अन्तमें आलोचनापाठ बोलकर फिर
तृतीय सामायिक कर्मका पाठ करना चाहिये ।

जोप्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे ।
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे ॥
सो सब झूठो होउ जगतपतिके परसादै ।
जा प्रसादतैं मिलै सर्व सुख, दुःख न लाधै ॥ ६ ॥
मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ ।
किये पाप अघढेर पापमति होय चित्त दुठ ॥
निंदूहूं मैं बारबार निज जियको गरहूं ।
सबविधि धर्म उपाय पाय फिर पापहिं करहूं ॥ ७ ॥

दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी।
सतसंगतिसंयोग धर्मजिनश्रद्धा, धारी॥
जिनवचनामृतधारसमा वर्तें जिनवानी।
तो हू जीव संघारे धिक धिक धिक हम जानी॥ ८॥
इंद्रियलंपट होय खोय निज ज्ञान जमा सव।
अज्ञानी जिमि करै तिसी विधि हिंसक व्है अव॥
गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले।
ते सव दोष किये निंदू अव मन वच तोले॥ ९॥
आलोचनविधिथकी दोष लागे जु घनेरे।
ते सव दोष विनाश होउ तुमतैं जिन! मेरे॥
वारवार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता।
ईर्षादिकतैं भय निंदिये जे भयभीता॥ १०॥

३ तृतीय सामायिक भावकर्म।

सव जीवनमें मेरे समताभाव जग्यो है।
सव जिय मोसम समता राखो भाव लग्यो है॥
आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छांडि करिहूं सामायिक।
संयम मो कव शुद्ध होय यह भाववधायक॥ ११॥
पृथिवी जल अरु अग्नि वायु चउकाय वनस्पत।
पंचहिं थावरमांहिं तथा त्रस जीव बसैं जित॥
वेइंद्रिय तिय चउ पंचेन्द्रियमांहि जीव सव।
तिनतैं छिमा कराऊं मुझपर छिमा करो अब॥ १२॥
इस अवसरमें मेरे सव सम कंचन अरु तृण॥
महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहिं सम गण॥
जामन मरण समान जानि हम समता कीनी।

सामायिकका काल जितै यह भाव नवीनी ॥ १३ ॥
मेरो है इक आतम तामैं ममत जु कीनो ।
और सबै मम भिन्न जानि समतारस भीनो ॥
मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह ।
मोतैं न्यारे जानि जथारथ रूप कर्यौ गह ॥ १४ ॥
मैं अनादि जगजालमांहिं फंसि रूप न जाण्यो ।
एकेंद्रिय दे आदि जंतुको प्राण हराण्यो ॥
ते सब जीवसमूह सुनो मेरी यह अरजी ।
भवभवको अपराध क्षमा कीज्यो करि मरजी ॥ १५ ॥

४ चतुर्थ स्तवनकर्म।

नमौं रिषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्मको ।
संभव भवदुखहरण करण अभिनंद शर्मको ॥
सुमति सुमतिदातार तार भवसिंधु पार कर ।
पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीति धर ॥ १६ ॥
श्रीसुपार्श्व कृतपाश नाश भव जास शुद्धकर ।
श्रीचन्द्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांतिधर ॥
पुष्पदंत दमि दोष कोश भविपोष रोषहर ।
शीतल शीतलकरण हरण भवताप दोषहर ॥ १७ ॥
श्रेयरूप जिनश्रेय ध्येय नित सेय भव्यजन ।
वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभयहन ॥
विमल विमलमति देन अंतगत है अनंतजिन ।
धर्मशर्मशिवकरण शांतिजिन शांतिविधायिन ॥ १८ ।
कुंथ कुंथमुख जीवपाल अरनाथ जालहर

मल्लि मल्लसम मोहमल्लमारन प्रचार धर ॥
मुनिसुव्रत व्रतकरण नमत सुरसंघहि नमि जिन ।
नमिनाथ जिन नेमि धर्मरथमाहिं ज्ञानधन ॥ १९ ॥
पार्श्वनाथ जिन पार्श्वउपलसम मोक्षरमापति ।
वर्द्धमान जिन नमूं वमू भवदुःख कर्मकृत ॥
या विधि मैं जिनसंघरूप चउवीस संख्यधर ।
स्तवूं नमूं हूं बार बार वंदूं शिवसुखकर ॥ २० ॥

५ पंचम वंदनाकर्म ।

वंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सु सनमति ।
वर्द्धमान अतिवीर वंदि हूं मनवचतनकृत ॥
त्रिशलातनुज महेश धीश विद्यापति वंदूं ।
वंदों नितप्रति कनकरूप तनु पापनिकंदूं ॥ २१ ॥
सिद्धारथ नृपनंदद्दुंद्दुख दोष मिटावन ।
दुरितदवानल ज्वलितज्वाल जगजीव उधारन ॥
कुंडलपुर करि जन्म जगतजिय आनंदकारन ।
वर्ष बहत्तरि आयु पाय सबही दुखटारन ॥ २२ ॥
सप्तहस्त तनु तुंग भंगकृतजन्ममरणभय ।
बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥
दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन ।
आप वसे शिवमाहिं ताहि वंदौं मन वच तन ॥ २३ ॥
जाके वंदनथकी दोष दुखदूरिहि जावै ।
जाके बन्दनथकी मुक्तितिय सन्मुख आवै ॥
जाके वंदनथकी वन्द्य होवै सुरगनके ।

ऐसे वीर जिनेश वन्दि हूं क्रमयुग तिनके ॥ २४ ॥
सामायिक षटकर्म माहिं बन्दन यह पंचम।
बन्दों वीरजिनेंद्र इन्द्रशतवन्द्य वन्द्य मम ॥
जन्ममरणभय हरो करो अघशांति शांतिमय।
मैं अघकोश सुपोष दोषको दोष विनाशय ॥ २५ ॥

६ छठा कायोत्सर्ग कर्म।

कायोत्सर्गविधान करूं अंतिम सुखदाई।
कायत्यजनमय होय काय सबको दुखदाई ॥
पूरब दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर मैं।
जिनगृहवंदन करूं हरूं भवपापतिमिर मैं ॥ २६ ॥
शिरोनती मैं करूं नमूं मस्तक कर धरिकैं।
आवर्तादिक क्रिया करूं मन वच मद हरिकैं ॥
तीनलोक जिनभवनमाहिं जिन हैं जु अकृत्रिम।
कृत्रिम हैं द्वय अर्द्धद्वीप मांहीं बन्दों जिमि ॥ २७ ॥
आठ कोडि परि छप्पन लाख जु सहस सत्यानूं।
च्यारि शतक परि असी एक जिनमन्दिर जानूं ॥
व्यंतर ज्योतिषिमाहिं संख्यरहिते जिनमंदिर।
ते सब बंदन करूं हरहु मम पाप संघकर ॥ २८ ॥
सामायिकसम नाहिं और कोऊ वैर मिटायक।
सामायिकसम नाहिं और कोउ मैत्री-दायक ॥
श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक।
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुखहानक ॥ २९ ॥
जे भवि आतमकाज-करण उद्यमके धारी।

ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी ॥
राग दोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब ।
बुध 'महाचन्द्र' विलाय जाय तातैं कीज्यो अब ॥३०॥

❋ इति सामायिक पाठ समाप्त ❋

३ सामायिक करनेकी विधि ।

गृहस्थके नित्यकर्म छह हैं। देवपूजा १, गुरुकी भक्ति करना २, स्वाध्याय करना ३, संयम पालना ४, तप करना ५, और दान करना ६। सामायिक करना इन षटकर्मोंमेंसे तपके अंतर्गत है। इसलिये प्रत्येक गृहस्थको प्रतिदिन सवेरे ही एकवार दूसरी प्रतिमाके धारीको सवेरे साम दो बार और तीसरी सामायिकप्रतिमाधारीको दुपहर रातमें कमसेकम तीन बार सामायिक करना चाहिये। उपवास वा उपवाससे पूर्वके दिन इनसे जियादा और जियादा समय तक करना चाहिये।

सामायिकका काल जघन्य दो घडी अर्थात् एक मुहूर्तका (४८ मिनिटका) है, मध्यमकाल चार घडी वा दो मुहूर्तका और उत्कृष्ट काल ६ घडीका है और जो प्रतिमाधारी नहीं हैं अव्रती हैं, उनकेलिये ४८ मिनिटका नियम नहीं है वे अपने अवकाशके अनुसार कम जियादा भी कर सकते हैं।

सामायिक करनेका सबसे उत्तमकाल सवेरेका है सो सवेरे चार बजे या सूर्योदयसे पहले शय्यासे उठकर ही करना चाहिये। गृहस्थ यदि स्त्रीसहवासादिसे अपवित्र हो तो हाथ पांव धोकर कपडा बदल कर घरके किसी एकांत स्थानमें (जहां कि—डांस मच्छर आदिकी कोई भी बाधा न हो)

अथवा जिनमंदिरजी या धर्मशालामें उत्तर या पूर्वमुख कुशासन पर बैठकर सामायिक धारण करना चाहिये। जिनमंदिरजीमें उत्तर पूर्वमुख देखकर बैठनेका कोई नियम नहीं है क्योंकि मंदिरजी नवदेवोंमेंसे एक देव हैं। देवके सन्मुख बैठकर सामायिक करना सर्वोत्तम है। इसलिये मंदिरजीमें जहां कुछ विक्षेपका कारण न हो, उस जगह चाहे जिधरको मुँह करके बैठ सकते हैं।

सामायिक करनेवाला प्रथम ही दर्भासन या चटाई पर सीधे खडा होकर पांवके अग्रभाग चार अंगुलके अंतरसे रख, दोनों हाथ लटका देवे, दृष्टि नाशाके अग्रभागपर रख कर खडा हो अपने मनमें प्रतिज्ञा करै कि 'मैं इतने समय तक सामायिक करूंगा सो जब तक सामायिककी क्रिया करूं तबतक मुझे इस स्थानके सिवाय अन्य स्थान और समस्त प्रकारके परिग्रहका सर्वथा त्याग है।' तत्पश्चात् नव अथवा तीन बार नमस्कार मंत्रका उच्चारण करके साष्टांग नमस्कार करै। तत्पश्चात् खडे २ ही अथवा बैठकर तीन बार नमस्कार मंत्र पढकर हाथ जोडकर जुडे हुये हाथोंसे तीन आवर्त (चक्र) देकर जुडे हुए हाथों पर मस्तक रखकर एकबार शिरोनति करै। इसका अर्थ यह है कि मैं मनवचनकायसे सन्मुखदिशाकी तरफ जितने कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय (जिनमंदिर) सिद्धक्षेत्र हैं, उन सबको नमस्कार करता हूं। इसी प्रकार तीन आवर्त और एक शिरोनति दहने हाथकी दिशामें करै, फिर पीठ पीछेकी दिशामें

और फिर बायें हाथकी दिशामें करै। यदि मंदिरजीमें बैठकर सामायिक करनेका काम पडै और चारों तरफ अन्य भाई सामायिक स्वाध्यायादिक करते हों और चारों तरफ फिर फिर कर शिरोनति करनेमें शास्त्रजी वगेरहके पीठ लगती हो तो जिस दिशामें मुख करके बैठे हों, उसी दिशामें ही चारबार आवर्त और चार शिरोनति कर लें परंतु मनमें यही भावना रक्खे कि इस पूर्वदिशाके व दक्षणदिशाके या अमुकदिशाके चैत्यालय आदिको नमस्कार करता हूं अथवा अपने हाथों को पहिले आवर्तके बाद एकबार दहने हाथकी तरफ झुका कर फिर तीसरी बार पीठ पीछे नमस्कार करते समय माथे पर हाथ रख कर और चौथी बार बांयी तरफ हाथ झुका कर जुडे हुये हाथोंपर मस्तक रख कर शिरोनति कर लें।

इसप्रकार चारों तरफ चार बारमें बारह आवर्त और चार शिरोनति करनेके पश्चात् पहले जिस तरफ मुंह करके बैठे हो उसी तरफ पद्मासन वा अर्द्धपद्मासन बैठकर शांतचित्त होकर सामायिकका पाठ संस्कृत वा भाषा धीरे धीरे पढे, जबानी याद न हो तो पुस्तक सामने रखकर मनमें उसके अर्थको समझता हुवा पढै।

सामायिक पाठमें प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, सामायिक, स्तवन, वंदन और कायोत्सर्ग ये छह कर्म हैं। प्रतिक्रमणमें भगवानके सन्मुख अपने किये हुये पापकार्योंको स्मरण करके आलोचना (प्रार्थना) करना है। प्रत्याख्यान कर्ममें ये सब दोष मैंने प्रमादके वशीभूत होकर किये हैं सो मैं आपके

पास अपनी निंदा करके प्रार्थना करता हूं कि मेरे ये दोष मिथ्या होवो। सामायिक कर्ममें समस्त जीवोंमें और उत्तम मध्यम समस्त पदार्थोंमें रागद्वेष छोडकर समस्त जीवोंसे अपने किये हुये अपराधोंकी क्षमा मांग कर समता भाव धरनेकी प्रतिज्ञा है। चौथे स्तवन कर्ममें चौवीसों तीर्थंकर भगवानको नमस्कार पूर्वक स्तुति (गुणप्रशंसा) करना है। पांचवें बंदनाकर्ममें अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीरस्वामी को प्रशंसापूर्वक बारंबार नमस्कार करना है। सो पाठ करते समय इन पांचों अध्यायोंकी पूर्त्तिमें नमस्कार करना चाहिये और छठा कायोत्सर्ग कर्म है सो पहिलेकी तरह खडे होकर शरीरसे ममता छोडकर, चारों दिशाओंमें तीन तीन आवर्त और एक एक शिरोनति करैं। इसप्रकार आदि अंतमें चार आवर्त और चार शिरोनति करनेसे सबसे थोडे समयकी सामायिक करना तौ पूरा हो जाता है परंतु इतने पाठ पढने में वहुत थोडा समय ही लगा इसलिये अधिक काल शांत-परिणाम (समताभाव) रखनेकेलिये इन समतारूप भावोंमें ही एक वा दो नमस्कार मंत्रकी माला फेर लेना चाहिये तथा बारह भावनाका पाठ अथवा अन्यान्य पाठ भी पढ लेना चाहिये। इसके सिवाय सामायिक धारण करनेसे पहिले आलोचनापाठ भी जो प्रतिक्रमण कर्म ही है, पढ लेना चाहिये। नमस्कारमंत्रकी माला फेरनेमें समय वहुत लगता हो और अन्यान्य पाठ पढने हों तौ ३५ अक्षरी नमस्कार मंत्रकी जगह, 'अरहंत सिद्ध' ऐसे छह अक्षरोंके मंत्रकी

अथवा 'असियाउसा' इसप्रकार पांच अक्षरोंके मंत्रकी, तथा 'अरहंत' ऐसे चार अक्षर 'सिद्ध सिद्ध' ऐसे दो अक्षर अथवा 'ओम्' ऐसे एक अक्षरकी माला जप लेना चाहिये। जब कि सामायिक पाठ पढनेके बाद माला फेरना तथा बारह भावना आदि और और पाठ पढना हो तो इन सबके बाद अंतका कायोत्सर्ग और आवर्तादि क्रिया करकैं सामायिक पूर्ण करै।

इसप्रकार नित्य एक बार वा दो बार या तीन बार आलोचनापाठ सहित सामायिक करनेसे परिणामोंमें बडी शांति होती है, प्रमाद छूटता जाता है जो कि महा सुखका कारण है।

४ अथ आलोचना पाठ।

यह आलोचना पाठ सामायिक कालमें प्रथमकर्म प्रतिक्रमण कर्म है उस कर्मके आदि वा अन्तमें बोलना चाहिये।

दोहा—वंदों पांचों परम गुरु, चौवीसों जिनराज।
करूं शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरनके काज॥ १॥

सखी छंद चौदहमात्रा।

सुनिये जिन अरज हमारी। हम दोष किये अति भारी॥
तिनकी अब निवृत्ति काजै। तुम सरन लही जिनराजै॥२॥
इक वे ते चउ इंद्री वा। मनरहित सहित जे जीवा॥
तिनकी नहिं करुणा धारी। निरदइ ह्वै घात विचारी॥ ३॥
समरंभ समारंभ आरंभ। मनवचतन कीने प्रारंभ॥
कृत कारित मोदन करिकैं। क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं॥ ४॥
शत आठ जु इम भेदनतैं। अघ कीने परछेदनतैं॥

तिनकी कहुं कोलौं कहानी । तुम जानतु केवलज्ञानी ॥ ५ ॥
विपरीत एकांत विनयके । संशय अज्ञान कुनयके ॥
वश होय घोर अघ कीने । बचतैं नहिं जात कहीने ॥ ६ ॥
कुगुरुनकी सेवा कीनी । केवल अदयाकरि भीनी ॥
याविधि मिथ्यात भ्रमायो । चहुंगति मधि दोष उपायो ॥७॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी । परवनितासौं दृगजोरी ॥
आंरभपरिग्रहभीनो । पनपाप जु या विधि कीनो ॥ ८ ॥
सपरस रसना घ्राननको । चखु कान विषयसेवनको ॥
बहु करम किये मन मानी । कछु न्याय अन्याय न जानी ॥९॥
फल पंच उदंबर खाये । मधु मांस मद्य चित चाहे ॥
नहिं अष्ट मूलगुणधारी । विसनन सेये दुखकारी ॥ १० ॥
दुईवीस अभख जिन गाये । सो भी निशिदिन भुंजाये ॥
कछु भेदाभेद न पायो । ज्यों त्यों करि उदर भरायो ॥ ११ ॥
अनंतान जु बंधी जानो । प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ॥
संज्वलन चौंकरी गुनिये । सब भेद जु षोडश मुनिये ॥१२॥
परिहास अरति रति शोग । भय ग्लानि तिवेदसंयोग ॥
पनवीस जु भेद भये इम । इनके वश पाप किये हम ॥ १३ ॥
निद्रावश शयन कराई । सुपनेमधि दोष लगाई ॥
फिर जागि विषयवन धायो । नानाविधि विषफल खायो ॥१४॥
कियेऽहार निहार विहारा । इनमें नहिं जतन विचारा ॥
बिन देखी धरी उठाई । विनशोधी भोजन खाई ॥ १५ ॥
तव ही परमाद सतायो । बहुविध विकलप उपजायो ॥
कछु सुधिबुधि नाहिं रही है । मिथ्यामति छाय गई है ॥ १६ ॥

मरजादा तुम ढिंग लीनी। ताहूमें दोष जु कीनी॥
भिन भिन अब कैसें कहिये। तुम ज्ञानविषै सब पइये॥ १७॥
हा हा! मैं दुठ अपराधी। त्रसजीवनराशि विराधी॥
थावरकी जतन न कीनी। उरमें करुना नहिं लीनी॥ १८॥
पृथिवी बहु खोद कराई। महलादिक जागां चिनाई।
पुन विन गाल्यो जल ढोल्यो। पंखातैं पवन विलोल्यो॥१९॥
हा! हा! मैं अदयाचारी। बहु हरितकाय जु विदारी॥
तामधि जीवनके खंदा। हम खाये धरि आनंदा॥ २०॥
हा! हा! मैं परमाद बसाई। विन देखे अगनि जलाई॥
तामधि जे जीव जु आये। ते हू परलोक सिधाये॥ २१॥
बीध्यो अन राति पिसायो। ईंधन बिन सोधि जलायो॥
झाडू ले जागां बुहारी। चींटी आदिक जीव विदारी॥ २२॥
जल छानि जिवानी कीनी। सो हू पुनि डारि जु दीनी॥
नहिं जलथानक पहुँचाई। किरिया विन पाप उपाई॥ २३॥
जल मल मोरिन गिरवायो। कृमिकुल बहु घात करायो॥
नदियनविच चीर धुवाये। कोसनके जीव मराये॥ २४॥
अन्नादिक शोध कराई। ता मैं जु जीव निसराई॥
तिनका नहिं जतन कराया। गरियालै धूप डराया॥ २५॥
पुनि द्रव्य कमावन काजे। बहु आरंभ हिंसा साजे॥
कीये तिसनावश भारी। करुना नहिं रंच विचारी॥ २६॥
इत्यादिक पाप अनंता। हम कीने श्रीभगवंता॥
संतति चिरकाल उपाई। बानीतैं कहिये न जाई॥ २७॥
ताको जु उदय अब आयो। नानाविधि मोहि सतायो॥

फल भुंजत जिय दुख पावै। वचतैं कैसैं करि गावै॥ २८॥
तुम जानत केवलज्ञानी। दुख दूर करो शिवथानी॥
हम तो तुम शरन लही है। जिन तारन विरद सही है॥ २९॥
जो गांवपती इक होवै। सो भी दुखिया दुख खोवै॥
तुम तीन भुवनके स्वामी। दुख मेटो अंतरजामी॥ ३०॥
द्रोपदीको चीर बढायो। सीतापति कमल रचायो॥
अंजनसे किये अकामी। दुख मेट्यो अंतरजामी॥ ३१॥
मेरे अवगुन न चितारो। प्रभु अपनो विरद विचारो॥
सब दोषरहित करि स्वामी। दुख मेटहु अंतरजामी॥३२॥
इंद्रादिक पदवी न चाहूं। विषयनिमैं नाहिं लुभाऊं॥
रागादिक दोष हरीजे। परमातम निजपद दीजे॥ ३३॥

दोहा।

दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोहि।
सब जीवनके सुख बढ़ै, आँनद मंगल होय॥ ३४॥
अनुभवमाणिक पारखी, जोंहरी आप जिनंद।
यही बर मोहि दीजिये, चरन सरन आनंद॥ ३५॥

इति आलोचना पाठ समाप्त।

५। सुप्रभातस्तोत्रम्।

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे। यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः संगीतस्तुतिमंगलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः॥१॥ श्रीमन्नतामरकिरीटमणिप्रभाभिरालीढपादयुग! दुर्धरकर्मदूर। श्रीनाभिनन्दन! जिनाजित शंभवाख्य! त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातं॥ २॥ छत्रत्रयप्रचलचामर-

वीज्यमानदेवाभिनन्दनमुने सुमते जिनेन्द्र ! पद्मप्रभारुणमणि-
द्युतिभासुरांग त्व० ॥ ३ ॥ अर्हन् सुपार्श्व कदलीदलवर्णगात्र
प्रालेयतारगिरिमौक्तिकवर्णगौर । चन्द्रप्रभ स्फटिकपाण्डुर पुष्प-
दंत ! त्व० ॥ ४ ॥ संतप्तकाञ्चनरुचे जिनशीतलाख्य श्रेया-
न्विनष्टदुरिताष्टकलंकपंक । बंधूकबंधुररुचे जिन वासुपूज्य
त्व० ॥ ५ ॥ उदण्डदर्पकरिपो विमलामलांग स्थेमन्ननंतजि-
दनंतसुखाम्बुराशे । दुष्कर्मकल्मषविवर्जित धर्मनाथ त्व० ॥
देवामरीकुसुमसंन्निभ शांतिनाथ कुन्थो दयागुणविभूषणभूषि-
तांग । देवाधिदेव भगवन्वरतीर्थनाथ त्व० ॥ ७ ॥ यन्मोह-
मल्लमदभञ्जनमल्लिनाथ क्षेमंकरोवितथशासनसुव्रताख्य । यत्स-
म्पदा प्रशमितो नमिनामधेय त्व० ॥ ८ ॥ तापिच्छगुच्छरुचि-
रोज्ज्वल नेमिनाथ घोरोपसर्गविजयिन् जिन पार्श्वनाथ । स्या-
द्वाद सूक्तिमणिदर्पणवर्द्धमान त्व० ॥ ९ ॥ प्रालेयनीलहरिता-
रुणपीतभासं यन्मूर्तिमव्ययसुखावसथं मुनीन्द्राः । ध्यायन्ति
सप्ततिशतं जिनवल्लभानां त्व० ॥ १० ॥ सुप्रभातं सुनक्षत्रं मांग-
ल्यं परिकीर्तितम् । चतुर्विंशतितीर्थानां सुप्रभातं दिने दिने
॥ ११ ॥ सुप्रभातं सुनक्षत्रं श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम् । देवता
ऋषयः सिद्धाः सुप्रभातं दिने दिने ॥ १२ ॥ सुप्रभातं तवै-
कस्य वृषभस्य महात्मनः । येन प्रवर्तितं तीर्थं भव्यसत्त्वसुखा-
वहम् ॥ १३ ॥ सुप्रभातं जिनेंद्राणां ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम् ।
अज्ञानतिमिरान्धानां नित्यमस्तमितो रविः ॥ १४ ॥ सुप्रभा-
तं सुनक्षत्रं सुकल्याणं सुमंगलम् । त्रैलोक्यहितकर्तॄणां जिना-
नामेव शासनम् ॥ १६ ॥

इति सुप्रभातस्तोत्रं समाप्तम् ।

६। प्रभाती संग्रह।

राग रामकली।

ऋषभदेव ऋषिदेवसहाई। अजित अजितरिपु संभव संभव, अभिनंदन नंदन लवलाई॥ ऋषभदेव॥ १॥ सुमति सुमति भवि पदम पदम अलि, देत सुपास सुपास भलाई। चित चकोर चंदा चंदप्रभ पुहुपदंत पुहुपनि–भजि भाई॥ऋषभ०॥ शीतल शीतल जडता नाशै, श्रेयान् श्रेयान् जोति जगाई। वासुपूज्य वासवपदपूजै, विमल विमल कीरति जगछाई॥ ऋषभ०॥३॥ गुण अनंत अघ अंत अनंत है, धरम धरम बरसा बरसाई। शांति शांत कुंथ्वादि जंतुपर, कुंथुनाथ करुणा करवाई॥ ऋषभ०॥ ४॥ अरह अरहविधि मल्लि मल्लवर, मुनिसुव्रत मुनिसुव्रतदाई। नमि नमि सुरनर, नेमि-धरम रथ, नेमि प्रभू काटैं भवकाई॥ ऋषभ०॥ ५॥ पास पास छेदी चहुं गतिकी, महावीर महावीर बड़ाई। द्यानत परमानंद पदकारन, चौबीसौं नामारथ गाई॥ ऋषभ०॥६॥

राग भैरों।

उठो रे सुज्ञानी जीव, जिनगुन गावो रे॥ उठो रे०॥ टेक॥ निसि तो नसाय गई, भानुको उद्योत भयो, ध्यानको लगावो प्यारे, नींदको भगावो रे। उठो रे॥ १॥ भववन चौरासी बीचि, भ्रमनो फिर न नीच, मोहजाल फंद परयो, जन्म मृत्यु पावो रे॥ उठो रे०॥ २॥ आरज पृथ्वीमें आय, उत्तम नर जन्म पाय, श्रावक कुलको लहाय, मुक्ति क्यों न जावो रे॥ ॥ उठो रे०॥ ३॥ विषयनि राचि राचि, बहुविधि पाप सांचि,

नरकनि जाय क्यों, अनेक दुःख पावोरे ॥ उठोरे० ॥ ४ ॥ परको मिलाप त्याग आतमके जाप लाग, सुबुधि बतावै गुरु, ज्ञान क्यों न लावोरे ॥ उठोरे ॥ ५ ॥

राग वसंत ।

भोर भयो भज श्री जिनराज, सफल होहिं तेरे सब काज ॥ टेक ॥ धन संपति मन बंछित भोग, सब विधि जान बनै संजोग ॥ भोर० ॥ १ ॥ कल्पवृच्छ ताके घर रहै। कामधेनु नित सेवा बहै । पारसचिंतामनि-समुदाय, हितसों आय मिलै सुख दाय ॥ भोर० ॥२॥ दुर्लभतें सुलभ्य ह्वै जाय, रोगसोग दुखदूर पलांय। सेवा देव करैं मनलाय, विघन उलटि मंगल ठहराय ॥ भोर० ॥ ३ ॥ डायनिभूत पिशाच न छलै, राज चोरको जोर न चलै। जस आदर सौभाग्य प्रकास, द्यानत सुरग मुकतिपदवास ॥ भोर० ॥ ४ ॥

राग भैरों ।

भोर भयो सब भविजन मिलकर, जिन वरपूजन आवो (जावो), अशुभ मिटावो पुण्य बढावो, नैनन नींद गमावो ॥ भोर० ॥ टेक ॥ तनको धोय धारि उजरे पट, सुभगजलादिक लावो। वीतराग छवि हरखि निरखिके, आगमोक्त गुन गावो ॥ भोर भयो० ॥ १ ॥ शास्तर सुनो भनो जिनवानी, तपसंजम उपजावो । धरि सरधान देव गुरु आगम, सात तत्त्वरुचि लावो ॥ भोर भयो० ॥ २ ॥ दुःखित जनकी दया ल्याय उर, दान चारविधि द्यावो। रागरोष तजि भजि निजपदको, 'बुधजन' शिवपद पावो ॥ भोर भयो० ॥ ३ ॥

७। मेरी भावना।

(स्नान करते समय बोलना)

मैं देव नित अरहंत चाहूं सिद्धका सुमिरन करौं। मैं सूर गुरु मुनि तीनि पद थे साधुपद हिरदय धरों॥ मैं धर्म करुणा-मय जु चाहूं, जहां हिंसा रंच ना। मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूं जासुमें परपंच ना॥ १॥ चौवीस श्रीजिनदेव चाहूं और देव न मन बसै। जिन बीस क्षेत्रविदेह चाहूं, बंदिते पातक नशै॥ गिरनार शिखर समेद चाहूं, चंपापुर पावापुरी। कैलाश श्री-जिनधाम चाहूं, भजत भाजैं भ्रमजुरी॥ २॥ नवतत्त्वका सरधान चाहूं, और तत्त्व न मन धरों। षट्द्रव्य गुन परजाय चाहूं ठीक तासों भय हरों॥ पूजा परम जिनराज चाहूं और देव न हूं सदा। तिहुंकालकी मैं जाप चाहूं पाप नहिं लागे कदा॥ ३॥ सम्यक्त दरशन ज्ञान चारित, सदा चाहूं भावसों। दशलक्षणी मैं धर्म चाहूं महा हर्ष उछावसों॥ सोलह जु कारन दुखनिवारण सदा चाहूं प्रीतिसौं। मैं चित अठाई पर्व चाहूं महा मंगल रीतिसों॥ ४॥ मैं वेद चारों सदा चाहूं आदि अंत निबाहसों। पाये धरमके चार चाहूं अधिक चित्त उछा-हसों॥ मैं दान चारौं सदा चाहूं भुवनवशि लाहो लहूं। आरा-धना मैं चारि चाहूं अंतमैं येही गहूं॥ ५॥ भावना बारह जु भाऊं भाव निरमल होत हैं। मैं व्रत जु बारह सदा चाहूं त्याग भाव उद्योत हैं॥ प्रतिमा दिगंबर सदा चाहूं ध्यान आसन सोहना। वसुकर्मतैं मैं छुटा चाहूं शिवलहूं जहँ मोहना॥ ६॥ मैं साधुजनको संग चाहूं प्रीति तिनहीं सों करौं। मैं पर्वके

उपवास चाहूं अवर आरंभ परिहरौं ॥ इस दुक्ख पंचमकालमाहीं कुल शरावक मैं लहों । अरु महाव्रत धरि सकौं नाहीं, निबल तन मैंने गहो ॥ ७ ॥ आराधना उत्तम सदा चाहूं सुनो जिन-रायजी । तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना न्याय जी ॥ वसुकर्मनाश विकाश ज्ञानप्रकाश मोको कीजिये । करि सुगति गमन समाधिमरन सुभक्ति चरनन दीजिये ॥ ८ ॥

८ । दृष्टाष्टकस्तोत्रम ।

(दर्शनार्थ जाते हुये जबसे जिनमंदिर दीखने लगे तबसे इसका पाठ करना प्रारंभ कर दे)

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारी भव्यात्मनां विभवसं-भवभूरिहेतुः । दुग्धाब्धिफेनधवलोज्ज्वलकूटकोटीनद्धध्वज-प्रकरराजिविराजमानम् ॥ १ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैक-लक्ष्मीधामर्द्धिवर्द्धितमहामुनिसेव्यमानम् । विद्याधरामरवधूजन-मुक्तदिव्यपुष्पांजलिप्रकरशोभितभूमिभागम् ॥ २ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवनादिवासविख्यात नाकगणिकागणगीयगी-मान् । नानामणिप्रचयभासुररश्मिजालव्यालीढनिर्मलविशाल-गवाक्षजालम् ॥ ३ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं सुरसिद्धयक्षगन्धर्व-किन्नरकरार्पितवेणुवीणा । संगीतमिश्रितनमस्कृतधारनादै-रापूरितांवरतलोरुदिगन्तरालम् ॥ ४ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विलिसद्विलोलमालाकुलालिललितालकविभ्रमाणम् ॥ माधु-र्यवाद्यलयनृत्यविलासनीनां लीलाचलद्वलयनूपुरनादरम्यम् ॥५॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणिरत्नहेमसारोज्ज्वलैः कलशचामरदर्पणा-द्यैः । सन्मंगलैः ससतमष्टशतप्रभेदैर्विभ्राजितं विमलमौक्तिक-

दामशोभम् ॥६॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं वरदेवदारुकर्पूरचन्दनतरुष्कसुगन्धिधूपैः । मेघायमानगगनं पवनाभिघातचंचच्चलद्विमलकेतनतुंगशालम् ॥ ७ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं धवलातपत्रच्छायानिमग्नतनुयक्षकुमारवृन्दैः । दोधूयमानसितचामरपंक्तिभासं भामंडलद्युतियुतप्रतिमाभिरामम् ॥ ८ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विविधप्रकारपुष्पोपहाररमणीयसुरत्नभूमिः । नित्यं वसन्ततिलकश्रियमादधानं सन्मंगलं सकलचन्द्रमुनिन्द्रवन्द्यम् ॥ ९ ॥ दृष्टं मयाद्यमणिकांचनचित्रतुंगसिंहासनादिजिनबिंबविभूतियुक्तम् । चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे सन्मंगलं सकलचन्द्रमुनींद्रवन्द्यम् ॥ १० ॥

इति दृष्टाष्टकस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

९ । मन्दिरजीमें प्रवेश करना आदि

मन्दिरजीकी वेदीगृहमें प्रवेश करते ही "ॐ जय जय जय निःसहि निःसहि निःसहि" इस प्रकार उच्चारण करके नीचे लिखा अद्याष्टक स्तोत्र बोल कर दर्शनपाठादि बोले ।

१० । अद्याष्टकस्तोत्रम् ।

अद्य मे सफलं जन्म नेत्रे च सफले मम । त्वामद्राक्षं यतो देव हेतुमक्षयसंपदः ॥ १ ॥ अद्य संसारगंभीरपारावारः सुदुस्तरः । सुतरोऽयं क्षणेनैव जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ २ ॥ अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमले कृते । स्नातोहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ३ ॥ अद्य मे सफलं जन्म प्रशस्तं सर्वमंगलम् । संसारार्णवतीर्णोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥४॥ अद्य कर्माष्टकज्वालं विधूतं सकषायकम् । दुर्गतेर्विनिवृत्तोऽहं

जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ५ ॥ अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे शुभाश्चैकादशस्थिताः । नष्टानि विघ्नजालानि जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ६ ॥ अद्य नष्टो महाबन्धः कर्मणां दुःखदायकः । सुखसंगं समापन्नो जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥ ७ ॥ अद्य कर्माष्टकं नष्टं दुःखोत्पादनकारकम् । सुखाम्भोधिनिमग्नोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ८ ॥ अद्य मिथ्यान्धकारस्य हन्ता ज्ञानदिवाकरः । उदितो मच्छरीरेऽस्मिन् जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ९ ॥ अद्याहं सुकृती भूतो निर्धूताशेषकल्मषः । भुवनत्रयपूज्योहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥१०॥ अद्याष्टकं पठेद्यस्तु गुणानन्दितमानसः तस्य सर्वार्थसंसिद्धिर्जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ १८ ॥

इति अद्याष्टकं स्तोत्रं संपूर्णम् ।

—'०:—

११ । नमस्कारमंत्रदर्शनपाठादि ।

नमस्कार मंत्र ।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं । सिद्ध मंगलं । साहू मंगलं । केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥ १ ॥ चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा । सिद्ध लोगुत्तमा । साहू लोगुत्तमा । केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥ २ ॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंत सरणं पव्वज्जामि । सिद्ध सरणं पव्वज्जामि । साहु सरणं पव्वज्जामि । केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥ ओं ह्रौं ह्रौं स्वाहा ॥

वर्तमान चौबीस तीर्थंकरोंके नाम ।

कवित्त ३१ मात्रा ।

ऋषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पद्म सुपास प्रभुचंद ।
पुहपदंत शीतल श्रेयांस प्रभु, वासुपूज्य प्रभु विमल सुछंद ॥
स्वामि अनंत धर्म प्रभु शांति सु, कुंथु अरह जिन मल्लि अनंद ।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पास, वीरेश सकल वंदों सुखकंद ॥

श्रीऋषभः १ अजितः २ संभवः ३ अभिनंदनः ४ सुमितः ५ पद्मप्रभः ६ सुपार्श्वः ७ चंद्रप्रभः ८ पुष्पदंतः ९ शीतलः १० श्रेयांसः ११ वासुपूज्यः १२ विमलः १३ अनंतः १४ धर्मः १५ शांतिः १६ कुंथुः १७ अरः १८ मल्लिः १९ मुनिसुव्रतः २० नमिः २१ नेमिः २२ पार्श्वनाथः २३ महावीरः २४ इति वर्तमानकालसंबंधिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः ॥

इसप्रकार बोलकर साष्टांग नमस्कार करना चाहिये । नमस्कारके पश्चात् पूजनके लिये चावल चढाना हो, तो नीचे लिखे पद्य तथा मंत्र पढकर चढावे ।

गीता छंद

यह भवसमुद्रअपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई । अति दृढ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही ॥ उज्जल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं । अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ-नितपूजा रचूं ॥ १ ॥

दोहा ।

तंदुल सालि सुगंध अति, परम अखंडित वीन । जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥ ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

यदि पुष्पोंसे पूजन करना हो तो नीचे लिखे पद्य और मंत्र पढकर चढावे।

जे विनयवंत सुभव्य-उर अंबुज-प्रकाशन भान हैं। जे एक मुखचारित्र भाषत, त्रिजगमाहि प्रधान हैं। लहि कुंदकमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसौं बचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नित पूजा रचूं॥ २॥

विविधभांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन। तासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

यदि किसीको लोंग, बादाम इलायची या कोई प्रासुक फल चढाना हो तो नीचे लिखे पद्य और मंत्र पढकर चढावे।

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साहके करतार हैं। मोपैं न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुण सार हैं॥ सो फल चढावत अर्थ पूरन, सकल अम्रतरस सचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरु निरग्रंथनितपूजा रचूं॥ ३॥

जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण-रसलीन। जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ३॥ ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

यदि किसीको अर्घ चढाना हो, तो नीचे लिखे पद्य व मंत्र बोलकर चढाना चाहिये।

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं। वर धूप निर्मल फल विविध, बहु जनमके पातक हरूं॥ इह भांति अर्घ चढाय नित भवि करत शिवपंकति मचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरु निरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ४॥

वसुविधि अर्घ सँजोयके, अति उछाह मन कीन। जासौं पूजौं परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ४॥ ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

१२। अथ दर्शनदशक।

छप्पय।

देखे श्रीजिनराज, आज सब विघन विलाये। देखे श्रीजिनराज, आज सब मंगल आये॥ देखे श्रीजिनराज, काज करना कछु नाहीं। देखे श्रीजिनराज, हौंस पूरी मनमाहीं॥
तुमदेखे श्रीजिनराजपद, भोजल-अंजुलिजल-भया।
चिंतामनिपारसकल्पतरु, मोहसबनिसों उठि गया॥ १॥

२

देखे श्रीजिनराज, भाज अघ जाहिं दिसंतर। देखे श्रीजिनराज, काज सब होंइ निरंतर॥ देखे श्रीजिनराज, राज मनवांछित करिये। देखे श्रीजिनराज, नाथ दुख कबहु न भरिये॥ तुम देखे श्रीजिनराजपद, रोम रोम सुख पाइए। धनि आज दिवस धनि अब घरी, माथ नाथकौं नाइए॥ २॥

३

धन्य धन्य जिनधर्म, कर्मकौं छिनमैं तोरै। धन्य धन्य जिनधर्म परमपदसों हित जोरै॥ धन्य धन्य जिनधर्म भर्मकौ मूल मिटावै। धन्य धन्य जिनधर्म शर्म[1]की राह बतावै॥ जग धन्य धन्य जिनधर्म यह, सो परगट तुमनैं किया। भवखेत पाप[2]-तप-तपतकौं, मेघरूप ह्वै सुख दिया॥ ३॥

४

तेज सूरसम[3] कहूं, तपत दुखदायक प्रानी। कांति चंदसम कहूं, कलंकित मूरति मानी। वारिधिसम गुणकहूं, खारमैं

१ कल्याणकी, आत्महितकी। २ पापरूपअग्निसे तप्त। ३ सूर्य्यसदृश।

कौन भलप्पन ॥ पारससम जस कहूं, आपसम करै न पर–तन[1]॥ इन आदि पदारथ लोकमें, तुमसमान[2] क्यों दीजिये। तुम महाराज अनुपमदसा, मोहिं अनूपम कीजिये ॥ ४ ॥

५

तब विलंब नहिं कियो, चीर द्रौपदिको बाढ्यो। तब विलंब नहिं कियो, सेठ सिंहासन चाढ्यो ॥ तब विलंब नहिं कियो, सीय पावकतैं टार्‌यो। तब विलंब नहिं कियो, नीरँ[3] मातंग[4] उबार्‌यो ॥ इहिविधि अनेकदुख भगतके, चूर दूर किय सुख अवँनि[5]। प्रभु मोहिं दुःख नासनिविषैं, अब विलंब कारन कवन ॥५॥

६

कियो भौन[6]तैं गौन[7], मिटी आरति संसारी। राह आन तुम ध्यान, फिकर भाजी दुखकारी ॥ देखे श्रीजिनराज, पाप मिथ्यात विलायो। पूजाश्रुति बहु भगति, करत सम्यकगुन आयो ॥ इस मारवाडसंसारमें[8] कल्पवृक्ष तुम दरस है। प्रभु मोहि देहु भौ भौ विषैं, यह वांछा मन सरस है ॥ ६ ॥

७

जै जै श्रीजिनदेव, सेव तुमरी अघनाशक। जै जै श्रीजिनदेव भेव[9] षटद्रव्य प्रकासक ॥ जै जै श्रीजिनदेव एक जो प्रानी ध्यावै जै जै श्रीजिनदेव, टेव अहमेव मिटावै। जै जै श्रीजिनदेव प्रभु, हेय करमरिपु दलनकौं। हूजे सहाय सँघरायजी, हम तयार सिवचलनकौं ॥ ७ ॥

---

१ पराये शरीरको अर्थात दूसरी धातुओंको। २ पटतर, उपमा। ३ जलमेंसे। ४ हाथी। ५ पृथ्वीमें। ६ घरसे। ७ गमन। ८ मारवाडरूपी (वृक्षरहितसूखे देशरूपी)संसारमें। ९ भेद।

८

जै जिनंद आनंदकंद, सुरवृंदवंद्य पद। ग्यानवान सब जान, सुगुन मनिखान आनपद[1]॥ दीनदयाल कृपाल, भविक भौ-जाल निकालक। आप बूझ सब सूझ, गूझ[2] नहिं बहुजन पालक। प्रभु दीनबंधु करुनामयी, जगउधरन तारन तरन। दुखरासनिकास स्वदासकौं, हमैं एक तुमही सरन॥ ८॥

९

देखनीक[3] लखि रूप, वंदिकरि बंदनीक हुव।
पूजनीक पद पूज, ध्यानकरि [4]थावनीक ध्रुव॥
हरष बढाय बजाय, गाय जस अंतरजामी।
दरब चढाय अघाय, पाय संपति निधि स्वामी।
तुमगुण अनेक मुख एकसौं, कौंन भांति बरनन करौं
मनवचनकायबहुप्रीतसौं, एक नामहींसौं तरौं॥९॥

१०

चैत्यालय जो करै, धन्य सो श्रावक कहिये।
तामैं प्रतिमा धरै, धन्य सो भी सरदहिये॥
जो दोनों विसतरै, संघनायक ही जानौं।
बहुत जीवकौं धर्म,-मूलकारन सरधानौं॥
इस दुखमकाल विकराल मैं, तेरो धर्म जहां चलै।
हे नाथ काल चौथो तहां, ईति[4] भीति[5] सबही टलै॥१०॥

---

१ गद ऐसा भी पाठ है। २ गुप्त-छिपा। ३ देखनेलायक। ४अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि सात। ५ इहलोक परलोक भय आदि सात।

११

दर्शनदशक कवित्त, चित्तसों पढै त्रिकालं।
प्रीतम सनमुख होय, खोय चिंता गृहजालं॥
सुखमें निसिदिन जाय, अंत सुरराय कहावै।
सुर कहाय सिवपाय, जनम मृति जरा मिटावै॥
धनि जैनधर्म दीपकप्रगट, पाप तिमिर छयकार है।
लखि साहिवराय सुआंखसों, सरधातारनहार है॥ ११॥

इति दर्शनदशक ॥ २॥

१३। अथ दर्शन स्तुति।

छप्पय।

तुव जिनिंद दिट्ठियो, आज पातक सब भज्जे।
तुव जिनिंद दिट्ठियौ, आज बैरी सब लज्जे॥
तुव जिनिंद दिट्ठियौ, आज मैं सरवस पायौ।
तुव जिनिंद दिट्ठयौ आज चिंतामणि आयौ॥
जै जै जिनिंद त्रिभुवन तिलक, आज काज मेरो सरयो।
कर जोरि भविक विनती करत, आज सकल भव दुख टरयो।
तुव जिनिंद मम देव, सेव मैं तुमरी करिहौं।
तुव जिनिंद मम देव, नाम तुम हिरदै धरिहौं॥
तुव जिनिंद मम देव, तुही साहिब मैं बंदा।
तुव जिनिंद मम देव, मही कुमुदनि तुम चंदा।
जै जै जिनिंद भवि कमल रवि, मेरो दुःख निवारिकै।
लीजै निकाल भव जालतैं, अपनो भक्त विचारकै॥ २॥

—०—

१४। श्रीदौलतरामकृत स्तुति।

सकल ज्ञेयज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरिरजरहसिविहीन ॥ १ ॥

पद्धरि छन्द।

जय वीतराग विज्ञानपूर। जय मोहतिमिरको हरन सूर ॥
जय ज्ञान अनंतानंतधार। दृगसुखवीरजमंडित अपार ॥२॥
जय परम शांतमुद्रासमेत। भविजनको निजअनुभूतिहेत ॥
भविभागनवचजोगेवशाय। तुमधुनि ह्वै सुनि विभ्रम नसाय॥
तुमगुण चिंतत निजपरविवेक। प्रगटैं विघटैं आपद अनेक ॥
तुम जगभूषण दूषणवियुक्त। सब महिमायुक्त विकल्प मुक्त॥
अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप। परमात्म परम पावन अनूप ॥
शुभअशुभविभाव अभाव कीन। स्वाभाविकपरिणतिमयअ-
छीन ॥५॥ अष्टादशदोषविमुक्त धीर। सुचतुष्टयमय राजत
गभीर ॥ मुनिगणधरादि सेवत महंत। नवकेवललब्धिरमा
धरंत ॥ ६ ॥ तुम शासन सेय अमेय जीव। शिव गये जांहिं
जैहैं सदीव ॥ भवसागरमें दुख छार वारि। तारनको अव
रन आप टारि ॥ ७ ॥ यह लखि निज दुखगदहरणकाज।
तुमही निमित्तकारण इलाज ॥ जाने, तातैं मैं शरण आय।
उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥ ८ ॥ मैं भ्रम्यो अपनपो
विसरि आप। अपनाये विधिफल पुण्यपाप। निजको परको
करता पिछान। परमें अनिष्टता इष्टि ठान ॥ ९ ॥ आकुलित
भयो अज्ञान धारि। ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि। तन-
परणतिमें आपो चितार। कबहूं न अनुभयो स्वपदसार ॥१०॥

तुमको विन जाने जो कलेश। पाये सो तुम जानत जिनेश॥ पशुनारकनरसुरगतिमझार। भव धर धर मर्‌यो अनंतवार॥ ११॥ अब काललब्धिबलतैं दयाल। तुम दर्शन पाय भयो खुश्याल॥ मन शांत भयो मिटि सकल द्वंद। चाख्यो स्वातमरस दुखनिकंद॥ १२॥ तातैं अब ऐसी करहु नाथ। बिछुरै न कभी तुअ चरण साथ॥ तुम गुणगणको नहिं छेव देव। जग तारनको तुअ विरद एव॥ १३॥ आतमके अहित विषय कषाय। इनमैं मेरी परिणति न जाय॥ मैं रहूं आपमैं आप लीन। सो करो होउं ज्यों निजाधीन॥ १४॥ मेरे न चाह कछु और ईश। रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश॥ मुझ कारजके कारन सु आप। शिव करहु, हरहु मम मोहताप॥ १५॥ शशि शांतकरन तपहरन हेत। स्वयमेव तथा तुम कुशल देत॥ पीवत पियूष ज्यों रोग जाय। त्यों तुम अनुभवतैं भव नसाय॥ १६॥ त्रिभुवनतिहुंकालमंझार कोय। नहिं तुमविन निज सुखदायहोय॥ मो उर यह निश्चय भयो आज। दुखजलधिउतारन तुम जिहाज॥ १७॥

दोहा।

तुम गुणगणमणि गणपती, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूं त्रियोगसंभार॥ १८॥

इति दौलतरामकृत स्तुति॥

१५। भूधरकृत दर्शन स्तुति।

हरिगीतिका।

पुलकंत नयन चकोर पक्षी, हँसत उर इंदीवरो। दुर्बुद्धि चकवी विलख विछुरी, निबिड मिथ्यातम हरो॥ आनंद अंबुधि उमगि उछस्यो, अखिल आतप निरदले। जिनवदन पूरनचंद्र निरखत, सकल मनबांछित फले॥ १॥ मम आज आतम भयो पावन, आज विघन विनाशिया। संसारसागर नीर निवड्यो, अखिल तत्त्व प्रकाशिया॥ अब भई कमला किंकरी मम, उभय भव निर्मल थये। दुख जस्यो दुर्गतिवास निवस्यो, आज नव मंगल भये॥ २॥ मनहरन मूरति हेरि प्रभुकी, कौन उपमा लाइये। मम सकल तनके रोम हुलसे हर्ष ओर न पाइये॥ कल्याणकाल प्रतच्छ प्रभुको लखें, जे सुरनर घने। तिह समयकी आनंद महिमा, कहत क्यों मुखसों बने॥ ३॥ भर नयन निरखे नाथ तुमको, और बांछा ना रही। मन ठठ मनोरथ भये पूरन, रंक मानो निधि लही॥ अब होऊ भव भव भक्ति तुम्हरी, कृपा ऐसी कीजिये कर जोर भूधरदास विनवै, यही वर मोहि दीजिये॥ ४॥

१६। दर्शनपाठ।

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरन आयो सरनजी। यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मनरजी॥ तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविधप्रकारजी। या बुद्धिसेती निज न जाण्यो, भ्रम गिण्यो हितकारजी॥ १॥ भवविकटवनमें

करम वैरी, ज्ञानधन मेरो हरयो। तव इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्टगति धरतो फिरयो॥ धन घडी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो। अब भाग मेरो उदय आयो दरश प्रभुको लखलयो॥ २॥ छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासापैं धरैं। वसु प्रातिहार्य अनंत गुणजुत, कोटि रवि छविको हरैं॥ मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदयरवि आतम भयो। मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो॥ ३॥ मैं हाथ जोड नवाय मस्तक, वीनऊं तुअ चरनजी। सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन तरनजी॥ जाचूं नहीं सुरवास पुनि नरराज परिजन साथजी। 'बुध' जाचहूं तुअ भक्ति भवभव, दीजिये शिवनाथजी॥

१७। ब्रह्मचारी ज्ञानानन्दकृत दर्शन।

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अवतक तुमको विनजाने, दुख पाये निज गुण हाने॥
पाये अनंते दुःखअवतक, जगतको निज जानकर।
सर्वज्ञभाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर॥
भवबंधकारक सुखप्रहारक, विषयमें सुख मानकर।
निजपर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधिसुधा नहि पानकर॥१॥
तव पद मम उरमें आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निजज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहितमें लागी॥
रुचि लगी हितमें आत्मके, सतसंगमें अब मन लगा।
मनमें हुई अब भावना, तब भक्तिमें जाऊं रँगा॥
प्रियवचनकी हो टेव गुणि गुण गानमें ही चितपगै।

शुभशास्त्रका नितहो मनन, मनदोषवादनतैं भगै ॥ २ ॥
कब समता उरमें लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर ।
ममतामय भूतभगाकर, मुनि व्रत धारूं बन जाकर ॥
धरकर दिगंबररूप कब, अठवीसगुण पालन करूं ।
दो वीस परिसह सह सदा, शुभधर्म दशधारन करूं ॥
तप तपूं द्वादशविधि सुखद, नित बंधआस्त्रव परिहरूं ॥
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्मरिपुकों निर्जरूं ॥ ३ ॥
कब धन्य सुअवसर पाऊं, जबनिजमेंही रम जाऊं ।
कर्त्तादिक भेद मिटाऊं, रागादिक दूर भगाऊं ॥
कर दूर रागादिक निरंतर, आत्मको निर्मलकरूं ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूं ॥
आनंदकंद जिनेंद बन उपदेशको नित उच्चरूं ।
आवै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुखद भवसागरतरूं ॥४॥

इति ज्ञानानंद कृतस्तु ।

१८ । श्रीदर्शनपच्चीसी ।

तुम निरखत मुझको मिली, मेरी संपति आज ।
कहा चक्रवर्ति संपदा, कहा स्वर्ग साम्राज ॥ १ ॥
तुम बंदत जिन देवजी, नित नव मंगल होय ।
विघ्न कोटि ततछिन टरें, लहहिं सुजस सब लोय ॥२॥
तुम जाने विन नाथजी, एक स्वांसके मांहिं ।
जन्म मरण अठरा किये, साता पाई नाहिं ॥ ३ ॥
अन्यदेव पूजत लहे, दुःख नरकके वीच ।
भूख प्यास पशुगति सही, कर्‌यो निरादर नीच ॥ ४ ॥

नाम उचारत सुख लहै, दर्शनसें अघ जाय।
पूजत पावे देव पद, ऐसे हैं जिनराय ॥ ५ ॥
बंदत हूं जिनराज मैं, धर उर समताभाव।
तन धन जन-जगजालतैं, धर विरागता भाव ॥ ६ ॥
सुनो अरज हे नाथजी, त्रिभुवनके आधार।
दुष्ट कर्मका नाश कर, बेगि करो उद्धार ॥ ७ ॥
जाचत हूं मैं आपसे, मेरे जियके मांहि।
राग रोषकी कल्पना, क्यों हू उपजै नांहि ॥ ८ ॥
अति अद्भुत प्रभुता लखी, वीतरागतामांहि।
विमुख होंहिं ते दुख लहैं, सन्मुख सुखी लखाहिं ॥ ९ ॥
कलमल कोटिक नहिं रहैं, निरखत ही जिनदेव।
ज्यों रवि ऊगत जगतमें, हरै तिमर स्वयमेव ॥ १० ॥
परमाणू पुद्गलतणी, परमातमसंयोग।
भई पूज्य सब लोकमें, हरै जन्मका रोग ॥ ११ ॥
कोटि जन्ममें कर्म जो, बांधे हुते अनंत।
ते तुम छवी विलोकितें, छिनमें हो है अंत ॥ १२ ॥
आन नृपति किरपा करै, तब कछु दै धन धान।
तुम प्रभु अपने भक्तको, करल्यो आप समान ॥ १३ ॥
यंत्र मंत्र मणि औषधी, विषहर राखत प्रान।
त्यों जिनछवि सब भ्रम हरै, करै सर्व परधान ॥ १४ ॥
त्रिभुवनपति हो ताहितें, छत्र विराजें तीन।
अमरा नाग नरेश पद, रहैं चरन आधीन ॥ १५ ॥
भवि निरखत भव आपने, तुव भामंडल बीच।

भ्रम मेटै समता गहै, नाहिं लहै गति नीच ॥ १६ ॥
दोइ ओर ढोरत अमर, चौसठ चमर सफेद ।
निरखत भविजनका हरै, भव अनेकका खेद ॥ १७ ॥
तरु अशोक तुव हरत है, भवि जीवनका शोक ।
आकुलता कुल मेटिकें, करै निराकुल लोक ॥ १८ ॥
अंतर बाहिर परिगहन, त्यागा सकल समाज ।
सिंहासन पर रहत हैं, अंतरीक्ष जिनराज ॥ १९ ॥
जीत भई रिपु मोहतैं, यश सूचत है तास ।
देव दुंदुभिनके सदा, बाजे बजैं अकाश ॥ २० ॥
विन अक्षर इच्छारहित, रुचिर दिव्यध्वनि होय ।
सुर नर पशु समझें सबै, संशय रहै न कोय ॥ २१ ॥
वरसत सुरतरुके कुसुम, गुंजत अलि चहुंओर ।
फैलत सुयश सुवासना, हरषत भवि सब ठौर ॥ २२ ॥
समुद बाघ अरु रोग अहि, अर्गल बँध सँग्राम ।
विघ्न विषम सब ही टरै, सुमरत ही जिननाम ॥ २३ ॥
सिरीपाल चंडाल पुनि, अंजन भील कुमार ।
हाथी हरि अहि सब तरे, आज हमारी बार ॥ २४ ॥
बुधजन यह विनती करै, हाथ जोड़ शिर नाय ।
जबलों शिव नहिं होय तुव, भक्ति हृदय अधिकाय ॥ २५ ॥

इस प्रकार एक या दो कोई भी स्तुति पढ़कर पुनः साष्टांग नमस्कार करना चाहिये। तत्पश्चात् नीचे लिखा श्लोक पढ़कर गंधोदक मस्तकपर डालना तथा ललाट हृदयादि उत्तम अंगोंमें भी लगाना चाहिये।

—:०:—

१९। गंधोदक लेनेका मंत्र।

निर्मलं निर्मलीकरं पवित्रं पापनाशकम्।
जिनगन्धोदकं वन्दे कर्माष्टकविनाशकम् ॥ १ ॥

यदि आशिका लेनी हो तो नीचे लिखा दोहा पढ़कर लेना चाहिये।

२०। आशिका लेनेका दोहा।

श्रीजिनवरकी आशिका, लीजे शीस चढ़ाय।
भवभवके पातक कटें, दुःख दूर हो जांय ॥ १ ॥

तत्पश्चात् नीचे लिखे दो कवित्त पढ़कर शास्त्रजी विराजमान हों, वहां शास्त्रजीको (जिनवाणीको) साष्टांग नमस्कार करके शास्त्रजी सुनना चाहिये अथवा थोड़ी बहुत किसी भी शास्त्रकी स्वाध्याय करना चाहिये।

२१। शास्त्रजीको नमस्कार करनेके

कवित्त।

वीरहिमाचलतैं निकरी, गुरुगोतमके मुख-कुंड ढरी है।
मोहमहाचल भेद चली, जगकी जड़तातप दूर करी है ॥
ज्ञानपयोनिधिमाहिं रली, बहुभंगतरंगनिसों उछरी है।
ता शुचि शारद-गंगनदी प्रति, मैं अंजुलिकर शीस धरी है ॥१॥
या जगमंदिरमें अनिवार अज्ञान अँधेर छयो अति भारी ॥
श्रीजिनकी धुनि दीपशिखासम, जो नहिं होत प्रकाशनहारी ॥
तो किसभाँति पदारथपाँति, कहां लहते, रहते अविचारी।
या विधि संत कहैं धनि हैं, धनि हैं, जिनवैन बड़े उपकारी ॥२॥

रात्रिको भी इसी प्रकार दर्शन करके तत्पश्चात् दीप धूपसे नीचे लिखी अथवा जिस पर रुचि हो वह आरती करना चाहिये।

—०—

२२। पंचपरमेष्ठीकी आरती

चाल खडो।

मनवचतनकर शुद्ध पंचपद, पूजैं भविजन सुखदाई।
सबजन मिलकर दीप धूप ले, करहिं आरती गुणगाई ॥टेक॥
प्रथमहि श्रीअरहंत परमगुरु, चौंतिस अतिशयसहित बसैं।
प्रातिहार्य वसु अतुल चतुष्टय, सहित समवसृत मांहिं लसैं॥
क्षुधा[1] तृषा[2] भय[3] जन्म[4] जरा[5] मृति[6], रोग[7] शोक[8] रति[9] अरति[10] महा।
विस्मय[11] खेद[12] स्वेद[13] मद[14] निद्रा[15], राग[16] द्वेष[17] मिल मोह[18] दहा॥
इन अष्टादश दोषरहित नित, इंद्रादिक पूजत आई। सब०
दूजे—सिद्ध सदा सुखदाता, सिद्धशिलापर राजत हैं।
सम्यगदर्शन ज्ञान वीर्य अरु, सूक्ष्मपणाकर छाजत हैं॥
अगुरुलघू अवगहनशक्ति धर, बाधाविन अशरीरा हैं।
तिनका सुमिरण नित्य कियेतैं, शीघ्र नशत भवपीरा हैं॥
या कारण नित चित्तशुद्ध कर, भजहु सिद्ध शिवके राई। सब०
तीजे—श्री आचार्य परमगुरु, छत्तिस गुणके धारी हैं।
दर्शन ज्ञान चरण तप वीरज, पंचाचार—प्रचारी हैं॥
द्वादशतप दशधर्म गुप्ति त्रय, षट् आवश्यक नित पालें।
सब मुनिजनको प्रायश्चित दे, मुनिव्रतके दूषण टालें॥
ऐसे श्रीआचार्य गुरुनकी, पूजा करिये चित लाई। सब०
चौथे—श्रीउवझायचरणपंकजरज, सुखदा भविजनको।
ग्यारह अंग सु पूर्वचतुर्दश, पढैं पढावें मुनिगनको॥
मुनिके सब आचरण आचरें, द्वादश तपके धारी हैं।
स्यादवाद सुखकारी विद्या, सबजगमें विस्तारी हैं॥

ऐसे श्रीउवझाय गुरुनके, चरणकमल पूजहुँ भाई। सब०
पंचमि आरति सर्वसाधुकी, आठवीस गुण मूल धरें।
पंचमहाव्रत पंचसमितिधर इंद्रिय पांचों दमन करें॥
षट्आवश्यक केशलोंच इकबार, खड़े भोजन करते।
दाँतण स्नान त्याग भू सोवत, यथाजात-मुद्रा धरते॥
या विधि "पन्नालाल" पंचपद, पूजत भवदुख नशजाई।
सब जन मिलकर दीप धूप ले, करहिं आरती गुणगाई॥५॥

इस प्रकार आरती बोलकर नीचे लिखा श्लोक, दोहा और मंत्र पढ़कर आरतीको मस्तक चढ़ावें।

ध्वस्तोद्यमांधीकृतविश्वविश्वमोहांधकारप्रतिघातदीपान्।
दीपैःकनत्कांचनभाजनस्थैर् जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं॥

दोहा—स्वपरप्रकाशनज्योति अति, दीपक तमकरहीन।
जासों पूजूं परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ १॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

इसी प्रकार नीचे लिखा श्लोक मंत्र पढ़कर धूप खेना चाहिये।

२३। धूप खेनेका श्लोक मंत्र।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजालसंधूपने भासुरधूमकेतून्।
धूपैर्विधूतान्यसुगंधगंधैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं॥ २॥

दोहा—अगनिमाहि परिमलदहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजूं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन॥ २॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।



२। दूसरा अध्याय।

अभिषेक नित्यपूजादि संग्रह।

२४। अथ पंचमंगल।

(पांचों मंगल अभिषेककी जगह न बोलकर सामग्री बनाते समय बोलना चाहिये)

पणविवि पंच परमगुरु गुरु जिनसासनो।
सकलसिद्धिदातार सु, विघनविनासनो ॥
सारद अरु गुरु गौतम, सुमति प्रकासनो।
मंगलकर चउ-संघहिं, पापपणासनो ॥
पापहिंपणासन गुणहिं गरुआ, दोष अष्टादश-रहिउ।
धरिध्यान करमविनासि केवल-ज्ञान अविचल जिन लहिउ।
प्रभु पंचकल्याणक विराजित, सकल सुर नर ध्यावहीं।
त्रैलोक्यनाथ सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ १ ॥

१। गर्भकल्याण।

जाके गरभकल्याणक धनपति आइयो।
अवधिज्ञान–परवान, सु इंद्र पठाइयो ॥
रचि नव बारह जोजन, नयरि सुहावनी।
कनकरयणमणिमंडित, मंदिर अति बनी ॥
अति बनी पौरि पगारि परिखा, सुवन उपवन सोहये।
नर नारि सुंदर चतुर भेख सु, देख जनमन मोहये।
तहँ जनकगृह छहमास प्रथमहि, रतन धारा बरसियो।
पुनि रुचिकवासिनि जननि-सेवा करहिं सब विधि हरसियो ॥ २
सुर कुंजरसम कुंजर, धवल धुरंधरो।

केहरि-केशरशोभित, नख सिखसुंदरो ॥
कमलाकलस-न्हवन, दुइ दाम सुहावनी ।
रविससि मंडल मधुर, मीन जुग पावनी ॥
थावनि कनक घट जुगम पूरन कमल कलित सरोवरो ।
कल्लोलमालाकुलित सागर, सिंहपीठ मनोहरो ॥
रमणीक अमर विमान फणिपति-भुवन रवि छवि छाजई ।
रुचि रतन रासि दिपंत, दहन सु तेज पुंज विराजई ॥ ३ ॥
ये सखि सोरह सुपने सूती सयनहीं ।
देखे माय मनोहर, पच्छिम-रयनहीं ॥
उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकासियो ।
त्रिभुवनपति सुत होसी, फल तिहँ भासियो ॥
भासियो फल तिहिं चिंत दंपति परम आनंदित भये ।
छह मासपरि नवमास पुनि तहँ, रैन दिन सुखसों गये ॥
गर्भावतार महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं ॥ ४ ॥

२ । जन्मकल्याणक ।

मतिश्रुतअवधिविराजित, जिन जब जनमियो ।
तिहुंलोक भयो छोभित सुरगन भरमियो ॥
कल्पवासिघर घंट, अनाहद बज्जिया ।
जोतिषघर हरिनाद, सहज गल गज्जिया ।
गज्जिया सहजहिं संख भावन, भुवन सबद सुहावने ।
विंतरनिलय पटु पटह बज्जहि, कहत महिमा क्यों बने ॥
कंपित सुरासन अवधि बल जिन-जनम निहचै जानियो ।

धनराज तब गजराज माया-मयी निरमय आनियो ॥ ५ ॥

जोजन लाख गयंद, वदन-सौ निरमए।

वदन वदन वसु दंत, दंत सर संठए ॥

सर सर सौ-पनवीस, कमलिनी छाजहीं।

कमलिनि कमलिनि कमल पच्चीस विराजहीं ॥

राजहिं कमलिनी कमलऽठोतर, सौ मनोहर दल बने।

दल दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हावभाव सुहावने ॥

मणि कनककिंकणि वर विचित्र, सु अमरमंडप सोहये।

घन घंट चँवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहये ॥ ६ ॥

तिहि करि हरि चढि आयउ, सुरपरिवारियो।

पुरिहिं प्रदच्छन दे त्रय, जिन जयकारियो ॥

गुप्त जाय जिन-जननिहिं, सुखनिद्रा रची।

मायामइ सिसु राखि तौ, जिन आन्यो सची ॥

आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृपत न हूजिये।

तब परम हरषित हृदय हरणा सहस लोचन पूजिये[1]।

पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र, उछंग धरि प्रभु लीनऊ।

इसान इंद्र सु चंद्रछवि सिर, छत्र प्रभुके दीनऊ ॥ ७ ॥

सनतकुमार माहेंद्र, चमर दुइ ढारहीं।

सेस सक्र जयकार, सबद उच्चारहीं ॥

उच्छवसहित चतुरविधि, सुर हरषित भये।

जोजन सहस निन्यावै, गगन उलंघि गये ॥

लंघि गये सुरगिर जहां पांडुक, वन विचित्र विराजहीं।

१ पूजिये अर्थात् पूरण किये।

पाँडुकसिला तहँ अर्द्धचंद्रसमान, मणि छवि छाजहीं ॥
जोजन पचास विशाल दुगुणायाम, वसु ऊंची गनी ।
वर अष्ट-मंगल-कनक कलसिन सिंहपीठ सुहावनी ॥ ८ ॥

रचि मणिमंडप सोभित, मध्य सिंहासनो ।
थाप्यो पूरव मुख तहँ, प्रभु कमलासनो ॥
वाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने ।
दुंदुभि प्रमुख मधुरधुनि, अवर जु बाजने ॥
बाजने बाजहिं सची सब मिलि, धवल मंगल गावहीं ।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं ॥
भरि छीरसागर जल जु हाथहि, हाथ सुर गिरि ल्यावहीं ।
सौधर्म अरु ईसानइंद्र सु, कलस ले प्रभु न्हावहीं ॥ ९ ॥

वदन-उदर-अवगाह, कलसगत जानिये ।
एक चार वसु जोजन, मान प्रमानिये ॥
सहस-अठोतर कलसा, प्रभुके सिर ढरैं ।
पुनि सिंगार प्रमुख आ-चार सबै करैं ॥
करि प्रगट प्रभु महिमामहोच्छव, आनि पुनि मातहिं दए ।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गए ॥
जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं ॥ १० ॥

३। तपकल्याणक।

श्रमजलरहित सरीर, सदा सब मलरहिउ ।
छीर-वरन वर रुधिर, प्रथम आकृति लहिउ ॥
प्रथम सार संहनन, सुरूप विराजहीं ।

सहज सुगंध सुलच्छन-मंडित छाजहीं ॥
छाजहिं अतुलबल परम प्रिय हित, मधुर वचन सुहावने ।
दश सहज अतिशय सुभग मूरति, बाललील कहा बने ॥
आबाल काल त्रिलोक पति मन,-रुचिर उचित जु नित नए ।
अमरोपनीत पुनीत अनुपम, सकल भोग विभोगए ॥ ११ ॥
भवतन-भोग-विरत्ति, कदाचित चित्तए ।
धन जोबन पिय पुत्त, कलत्त अनित्तए ॥
कोउ न सरन मरनदिन, दुख चहुंगति भरयो ।
सुख दुख एकहि भोगत, जिय विधिवसपरयो ॥
परयो विधिवस आन चेतन, आन जड़ जु कलेवरो ।
तन असुचि पर तैं होय आस्रव, परिहरतैं संवरो ॥
निरजरा तपबल होय, समकित,-बिन सदा त्रिभुवन भम्यो ।
दुर्लभ विवेक विना न कबहूं, परम धरमविषै रम्यो ॥
ये प्रभु बारह पावन, भावन भाइया ।
लौकांतिक वर देव, नियोगी आइया ॥
कुसुमांजलि दे चरन, कमल सिर नाइया ॥
स्वयंबुद्ध प्रभु थुतिकर, तिन समुझाइया ॥
समुझाय प्रभुको गयो निजपुर, पुनि महोच्छव हरि कियो ।
रुचिरुचिर चित्र विचित्र सिविका, कर सुनंदन-बन लियो ॥
तहँ पंचमुट्ठी लोंच कीनो, प्रथम सिद्धनि थुति करी ।
मंडिय महाव्रत पंच दुद्धर, सकल परिगह परिहरी ॥ १२ ॥
मणिमयभाजन केस, परिट्ठिय सुरपती ।
छीर-समुद-जल खिपकरि, गयो अमरावती ॥

तप संयमबल प्रभुको, मनपरजय भयो।
मौनसहित तप करत, काल कछु तहँ गयो ॥
गयो कछु तहं काल तपबल, रिद्धि वस विधि सिद्धिया।
जसु धर्मध्यानबलेन खयगय, सप्त प्रकृति प्रसिद्धया ॥
खिपि सातयें गुण जतनविन तहँ, तीन प्रकृति जु बुधि बढिउ।
करि करण तीन प्रथम सुकलबल, खिपकसेनी प्रभु चढिउ ॥
प्रकृति छतीस नवें-गुण, थान विनासिया।
दसवें सूच्छमलोभ, प्रकृति तहँ नासिया ॥
सुकल ध्यान पद दूजो, पुनि प्रभु पूरियौ।
बारहवें-गुण सोरह, प्रकृति जु चूरियौ ॥
चूरियौ त्रेसठ प्रकृति इहविधि, घातियाकरमनितणी।
तप कियो ध्यानप्रयंत बारह-विधि त्रिलोकसिरोमणी ॥
निःक्रमण कल्याणक सु महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ १५ ॥

४। ज्ञानकल्याणक।

तेरहवें गुण-थान, सयोगि जिनेसुरो।
अनँतचतुष्टयमंडित, भयो परमेसुरो ॥
समवसरन तब धनपति, बहुविधि निरमयो ॥
आगमजुगतिप्रमान, गगनतल परिठयो ॥
परिठयो चित्र विचित्र मणिमय, सभामंडप सोइए।
तिहिं मध्य बारह बने कोठे, वनक सुरनर मोहए ॥
मुनि कलपवासिनि अरजिका पुनि, ज्योति भौमि-भवनतिया।
पुनि भवन व्यंतर नभग सुर नर, पसुनि कोठे बैठिया ॥१६॥

मध्यप्रदेश तीन, मणिपीठ तहां वने ।
गंधकुटी सिंहासन, कमल सुहावने ॥
तीन छत्र सिर सोहत त्रिभुवन मोहए ।
अंतरीच्छ कमलासन, प्रभुतन सोहए ॥
सोहए चौसठ चमर ढरत, असोकतरु तल छाजए ।
पुनि दिव्यधुनि प्रतिसबदजुत तहँ, देवदुंदुभि बाजए ॥
सुरपुहपवृष्टि सुप्रभामंडल, कोटि रवि छवि छाजए ।
इमि अष्ट अनुपम प्रातिहारज, वर विभूति विराजए ॥ १७ ॥
दुइसै जोजनमान सुभिच्छ चहूं दिसी ।
गगन गमन अरु प्राणी-वध नहिं अहनिसी ।
निरुपसर्ग निरहार, सदा जगदीसए ।
आनन चार चहूंदिसि, सोभित दीसए ॥
दीसय असेस विसेस विद्या, विभव वर ईसुरपना ।
कायाविवर्जित सुद्ध फटिक समान तन प्रभुका बना ॥
नहिं नयन पलक पतन कदाचित, केस नख सम छाजहीं ।
ये घातियाछयजनित अतिसय, दस विचित्र विराजहीं ॥ १८ ॥
सकल अरथमय मागधि-भाषा जानिये ।
सकल जीवगत मैत्री-भाव बखानिये ॥
सकल रितुज फलफूल, वनस्पति मन हरै ।
दरपनसम मनि अवनि, पवन गति अनुसरै ॥
अनुसरै परमानंद सबको, नारि नर जे सेवता ।
जोजन प्रमाण धरा सुमार्जहिं, जहां मारुत देवता ॥
पुनि करहिं मेघकुमार गंधो-दक सुवृष्टि सुहावनी ।

पदकमलतर सुर खिपहिं कमलसु, धरणि ससिसोभा बनी ॥

अमल गगन तल अरु दिसि, तहं अनुहारहीं ।
चतुरनिकाय देवगण, जय जयकारहीं ॥
धर्मचक्र चलै आगे, रवि जहँ लाजहीं
पुनि भृंगार-प्रमुख वसु, मंगल राजहीं ॥
राजहीं चौदह चारु अतिशय, देव रचित सुहावने ।
जिनराज केवलज्ञानमहिमा, अवर कहत कहा बने ॥
तब इंद्र आय कियो महोच्छव, सभा सोभा अति बनी ।
धर्मोपदेश दियो तहां, उच्चरिय वानी जिनतनी ॥ २० ॥

छुधा तृषा अरु राग, द्वेष असुहावने ।
जनम जरा अरु मरण, त्रिदोष भयावने ॥
रोग सोग भय विस्मय, अरु निद्रा घनी ।
खेद स्वेद मद मोह, अरति चिंता गनी ॥
गनिये अठारह दोष तिनकरि, रहित देव निरंजनो ।
नव परमकेवललब्धिमंडित, सिवरमनि-मनरंजनो ॥
श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ २१ ॥

५। निर्वाण कल्याणक ।

केवलदृष्टि चराचर, देख्यो जारिसो[1] ।
भव्यनिप्रति उपदेस्यो, जिनवर तारिसो[2] ॥
भवभयभीत भविकजन, सरणै आइया ।
रत्नत्रयलच्छन सिवपंथ लगाइया ॥

---

१ जारिसो—जैसा २ तारिसो—तैसा ।

लगाइया पंथ जु भव्य पुनि प्रभु, तृतिय-सुकल जु पूरियो।
तजि तेरहें गुणथान जोग, अजोगपथपग धारियो ॥
पुनि चौदहें चौथे सुकलबल, बहत्तर तेरह हती।
इमि घाति वसुविधि कर्म पहुंच्यो, समयमें पंचमगती ॥२२॥

लोकसिखर तनुवात,-बलयमहँ संठियो।
धर्मद्रव्यविन गमन न जिहि आगैं कियो ॥
मयनरहित मूषोदर, अंबर जारिसो।
किमपि हीन निजतनुतैं, भयो प्रभु तारिसो ॥
तारिसो पर्जय नित्य अविचल, अर्थपर्जय छनछयी।
निश्चयनयेन अनंतगुण, विवहार नय वसुगुणमयी ॥
वस्तु स्वभाव विभावविरहित सुद्ध परिणति परिणयो।
चिद्रूप परमानंदमंदिर, सिद्धपरमातम भयो ॥ २३ ॥

तनुपरमाणू दामिनिपर, सब खिर गये।
रहे सेस नखकेश-रूप, जे परिणये ॥
तव हरिप्रमुख चतुरविधि, सुरगण शुभसच्यो।
मायामयि नख केशरहित, जिनतनु रच्यो ॥
रचि अगर चंदन प्रमुख परिमल, द्रव्य जिन जयकारियो।
पदपतित अगनिकुमार मुकुटानल, सुविध सँस्कारियो ॥
निर्वाणकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ २४ ॥

मैं मति हीन भगति बस, भावन भाइया ॥
मंगलगीतप्रबंध, सु, जिनगुण गाइया ॥
जो नर सुनहिं बखानहिं, सुर धरि गावहीं।

मनवांछित फल सो नर, निहचै पावहीं ॥
पावहीं आठौं सिद्धि नवनिधि, मन प्रतीति जो लावहीं ।
भ्रम भाव छूटैं सकल मनके, निजस्वरूप लखावहीं ॥
पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन, सु होहिं मंगल नित नये ।
भणि 'रूपचंद' त्रिलोकपति, जिनदेव चउसंघहिं जये ॥

इति रूपचंदकृत पंचमंगल समाप्त ॥ १७ ॥

२५ । लघुअभिषेकपाठ ।

घृत दुग्ध दधि आदिसे पंचामृत अभिषेक करते समय बोलना । अगर संस्कृत पाठ पढना नहीं आता हो तो आगे छपा हुआ भाषा पंचामृत अभिषेक पाठ करना ।

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशं स्याद्वादनायकमनंत-चतुष्टयार्हम् । श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतुर्जैनेन्द्रयज्ञविधि-रेष मयाभ्यधायि ॥ १ ॥

(इस श्लोकको पढ़कर जिन चरणोंमें पुष्पांजलि छोड़नी चाहिये)

श्रीमन्मन्दरसुंदरे शुचिजलैर्धौतैः सदर्भाक्षतैः
पीठे मुक्तिकरं निधाय रचितं त्वत्पादपद्मस्रजः ।
इन्द्रोऽहं निजभूषणार्थकमिदं यज्ञोपवीतं दधे
मुद्राकंकणशेखरान्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे ॥ २ ॥

(इस श्लोकको पढ़कर अभिषेक करनेवालोंको यज्ञोपवीत तथा नाना प्रकारके सुन्दर आभूषण धारण करना चाहिये ।)

सौगंध्यसंगतमधुव्रतझंकृतेन, संवर्ण्यमानमिव गंधमनिंद्य-मादौ । आरोपयामि विबुधेश्वरवृन्दवंद्यपादारविंदमभिवंद्य जिनोत्तमानां ॥ ३ ॥

इसे पढ़कर अभिषेक करनेवालोंको अङ्गमें चन्दनके नव तिलक करना चाहिये ।

ये संति केचिदिह दिव्यकुलप्रसूता नागाः प्रभूतबलदर्पयुता विबोधाः । संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषां प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम् ॥ ४ ॥

(इसको पढ़कर अभिषेकके लिये भूमि या चौकीका प्रक्षालन करे)

क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः, प्रक्षालितं सुरवरैर्यद-नेकवारम् । अत्युद्धमुद्यतमहं जिनपादपीठं प्रक्षालयामि भव-संभवतापहारि ॥ ५ ॥

(जिस सिंहासन पर विराजमान करके अभिषेक करना हो उसका प्रक्षालन करे)

श्रीशारदासुमुखनिर्गतबीजवर्णं श्रीमंगलीकवरसर्वजनस्य नित्यं । श्रीमत्स्वयं क्षयति तस्य विनाशविघ्नं श्रीकारवर्णलिखितं जिनभद्रपीठे ॥ ६ ॥

(इस श्लोकको पढ़कर पीठपर श्रीकार लिखना चाहिये)

इंद्राग्निदंडधरनैर्ऋतपाशपाणिवायूत्तरेशशशिमौलिफणींद्रचंद्राः । आगत्य यूयमिह सानुचराः सचिह्नाः स्वं स्वं प्रतीच्छत बलिं जिनपाभिषेके ॥ ७ ॥

(नीचे लिखे मंत्रोंको पढ़कर क्रमसे दश दिक्पालोंके लिये अर्घ चढ़ावे)

१ ओं आं क्रौं ह्रीं इंद्र आगच्छ आगच्छ इंद्राय स्वाहा ।
२ ओं आं क्रौं ह्रीं अग्ने आगच्छ आगच्छ अग्नये स्वाहा ।
३ ओं आं क्रौं ह्रीं यम आगच्छ आगच्छ यमाय स्वाहा ।
४ ओं आं क्रौं ह्रीं नैऋत आगच्छ आगच्छ नैऋताय स्वाहा ।
५ ओं आं क्रौं ह्रीं वरुण आगच्छ आगच्छ वरुणाय स्वाहा ।
६ ओं आं क्रौं ह्रीं पवन आगच्छ आगच्छ पवनाय स्वाहा ।
७ ओं आं क्रौं ह्रीं कुबेर आगच्छ आगच्छ कुबेराय स्वाहा ।

८ ओं आं क्रौं ह्रीं ऐशान आगच्छ आगच्छ ऐशानाय स्वाहा।
९ ओं आं क्रौं ह्रीं धरणींद्र आगच्छआगच्छ धरणींद्राय स्वाहा।
१० ओं आं क्रौं ह्रीं सोम आगच्छ आगच्छ सोमाय स्वाहा।

इति दिक्पालमंत्राः।

दध्युज्ज्वलाक्षतमनोहरपुष्पदीपैः पात्रार्पितं प्रतिदिनं महतादरेण
त्रैलोक्यमंगलसुखानलकामदाहमारार्तिकं तव विभोरवतारयामि

दधि अक्षत पुष्प और दीप रकाबीमें लेकर मंगल पाठ तथा अनेक वादित्रोंके साथ त्रैलोक्यनाथकी आरती उतारनी चाहिये।

यं पांडुकामलशिलागतमादिदेवमस्नापयन्सुरवराः सुरशैल-मूर्ध्नि। कल्याणमीप्सुरहमक्षततोयपुष्पैः संभावयामि पुरएव तदीय बिंबं ॥ ९ ॥

जल अक्षत पुष्प क्षेपकर श्रीकार लिखित पीठपर जिनबिंबकी स्थापना करना चाहिये।

सत्पल्लवार्चितमुखान्कलधौतरूप्यताम्रारकूटघटितान्पयसा सुपूर्णान्। संबाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान् संस्थापयामि कलशान् जिनवेदिकांते ॥ १० ॥

जलपूरित सुन्दर पत्तोंसे ढके हुये सुवर्णादि धातुके चार कलश वेदीके चारो कोनोंमें स्थापन करना चाहिये।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना चंदनेन,
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदलचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपैः।
धूपैः प्रायोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं श्रीपरमदेवाय श्रीअर्हत्परमेष्ठिनेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दूरावनम्रसुरनाथकिरीटकोटीसंलग्नरत्नकिरणच्छविधूसरांघ्रिं।
प्रस्वेदतापमलमुक्तमपि प्रकृष्टैर्भक्त्या जलैर्जिनपतिं बहुधाभिषिंचे

ओं ह्रीं श्रीमंतं भगवंतं कृपालसंतं वृषभादिमहावीरपर्यंत-चतुर्विंशति-तीर्थंकर परमदेवं आद्यानां आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे........नाम......नगरे मासानामुत्तमेमासे......मासे......पक्षे......शुभदिने मुनि-आर्यिका-श्रावक-श्राविकाणां सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषिंचे, नमः ।

(इसे पढ़कर श्रीजिनप्रतिमापर जलके कलशसे धारा छोड़नी चाहिये)

यहां प्रत्येक धाराके बाद "उदकचंदन...आदि श्लोक बोलकर अर्घ चढाना चाहिये ।

उत्कृष्टवर्णनवहेमरसाभिरामदेहप्रभावलयसंगमलुप्तदीप्तिम् । धारां घृतस्य शुभगंधगुणानुमेयां वंदेर्हतां सुरभिसंस्नपनोपयुक्तां ॥ १३ ॥

(ऊपर लिखे मंत्रमें 'जलेनाभिषिंचे' की जगह 'घृतेनाभि षिंचे' पढ़कर घृतके कलशसे स्नपन करना चाहिये)

संपूर्णशारदशशांकमरीचिजालस्यंदैरिवात्मयशसामिव सुप्रवाहैः क्षीरैर्जिनाः शुचितरैरभिषिंच्यमानाः संपादयंतु मम चित्तसमीहितानि ॥ १४ ॥

(ऊपरके मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'क्षीरेण' पढ़कर दुग्धके कलशसे अभिषेक करना चाहिये)

दुग्धाब्धिवीचिपयसांचितफेनराशिपांडुत्वकान्तिमवधीरयतामतीव । दध्नां गता जिनपतेः प्रतिमां सुधारा सम्पद्यतां सपदि वांछितसिद्धये नः ॥ १५ ॥

(ऊपर लिखे मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'दध्ना' पढ़कर दधिके कलशसे अभिषेक करना चाहिये)

भक्त्या ललाटतटदेशनिवेशितोच्चैः हस्तैश्च्युताः सुरवराऽसुरमर्त्यनाथैः । तत्कालपीलितमहेक्षुरसस्य धारा सद्यः पुनातु जिनबिंबगतैव युष्मान् ॥ १६ ॥

(ऊपरके मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'इक्षुरसेन' पढ़कर इक्षुरसके कलशसे अभिषेक करना चाहिये)

संस्नापितस्य घृतदुग्धदधीक्षुवाहैः सर्वाभिरौषधिभिरर्हतउज्ज्वलाभिः। उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेकमेलाकालेयकुंकुमरसोत्कटवारिपूरैः ॥१७॥

(ऊपरके मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'सर्वौषधेन' पढ़कर सर्वौषधीके कलशासे अभिषेक करना चाहिये)

द्रव्यैरनल्पघनसारचतुःसमाद्यैरामोदवासितसमस्तदिगंतरालैः मिश्रीकृतेन पयसा जिनपुंगवानां त्रैलोक्यपावनमहं स्नपनं करोमि ॥१८॥

(ऊपरके मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'सुगंधजलेन' पढ़कर केसर कर्पूरादिसे सुगंधित पदार्थोंसे बनाये हुये जलसे स्नपन करना चाहिये)

इष्टैर्मनोरथशतैरिव भव्यपुंसां पूर्णैः सुवर्णकलशैर्निखिलैर्वसानैः संसारसागरविलंघनहेतुसेतुमाप्लावये त्रिभुवनैकपतिं जिनेंद्रम् ॥

(ऊपर लिखे मंत्रसे बचे हुये समस्त कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये)

मुक्तिश्रीवनिताकरोदकमिदं पुण्यांकुरोत्पादकं
नागेंद्रत्रिदशेंद्रचक्रपदवीराज्याभिषेकोदकम् ॥
सम्यग्ज्ञानचरित्रदर्शनलतासंवृद्धिसंपादकम्।
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिन ! स्नानस्य गंधोदकं ॥

(इस श्लोकको पढ़कर गंधोदक अपने अंगमें लगाना चाहिये)

इति श्री लघु अभिषेकविधिः समाप्तः ॥

२६। अथ लघुपंचामृताभिषेक भाषा।

घृत दुग्ध आदिसे पंचामृत अभिषेक करना हो तो यह पाठ बोलना। अथवा उनके अभावमें सिर्फ जलधारासे ही काम लेना।

श्रीजिनवर चौबीस वर, कुनयध्वांतहर भान।
अमितवीर्यदृगबोधसुख, युत तिष्ठौ इह थान ॥ १॥

नाराच छंद।

गिरीश सीस पांडुपै, सचीस ईस थापियो।
महोत्सवो अनंदकंदको, सवै तहां कियो॥
हमैं सो शक्ति नाहिं, व्यक्त देखि हेतु आपना।
यहां करैं जिनेंद्र-चंद्रकी सुविंब थापना॥ २॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके श्रीवर्णपर जिनविम्बकी स्थापना करना)

सुंदरी छंद।

कनकमणिमयकुंभ सुहावने। हरि सुछीर भरे अति पावने।
हम सुवासित नीर यहां भरैं। जगत पावन-पांय तरैं धरैं॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके वेदीके कोनोंमें चार कलशोंकी स्थापना)

हरिगीतिका छंद।

शुद्धोपयोग समान भ्रमहर, परम सौरभ पावनो।
आकृष्टभृंगसमूह गंग-समुद्भवो अति भावनो॥
मणिकनककुंभ निसुंभकिल्विष, विमल शीतल भरि धरौं।
श्रम स्वेद मल निरवार जिन, त्रय धार दे पांयनि परौं॥४॥

(ओं ह्रीं श्रीभगवंतं आदि ५० वें पृष्ठमें छपे मंत्रसे शुद्ध जलकी तीन धारा जिनविंवपर छोड़ना)

अति मधुर जिनधुनिसम सुप्राणित, प्राणिवर्ग स्वभावसौं।
बुधचित्तसम हरिचित्त नित्त, सुमिष्ट इष्ट उछावसौं।
तत्काल इक्षुसमुत्थप्रासुक रतनकुंभविषैं भरौं।
यमत्रासतापनिवार जिन त्रयधार दे पांयनि परौं॥ ५॥

(इक्षुरसकी धारा)

निष्टप्तक्षिप्तसुवर्णमददमनीय ज्यौं विध जैनकी।
आयुप्रदा बलबुद्धिदा रक्षा, सु यौं जिय-सैनकी॥
तत्कालमंथित, क्षीर उत्थित, प्राज्य मणिझारी भरौं।

दीजै अतुलबल मोहि जिन, त्रयधार दे पांयनि परौं ॥ ६ ॥

(घृतरसकी धारा)

शरदभ्र शुभ्र सुहाटकद्युति, सुरभि पावन सोहनो।
क्लीवत्वहर बल धरन पूरन, पयसकल मनमोहनों ॥
कृतउष्ण गोथनतैं समाहृत, घट जटित मणिमैं भरों।
दुर्बल दशा मो मेट जिन त्रयधार दे पांयनि परौं ॥ ७ ॥

(दुग्धकी धारा)

वर विषद जनाचार्य ज्यौं मधुराम्लकर्कशता धरैं।
शुचिकर रसिक मंथन विमंथन नेह दोनों अनुसरैं ॥
गोदधि सुमणि भृंगार पूरन लायकर आगैं धरौं।
दुखदोष कोष निवार जिन त्रयधार दे पांयनि परौं ॥ ८ ॥

(दहीकी धारा)

सर्वौषधी मिलायके, भरि कंचन भृंगार।
जजौं चरण त्रयधार दे, तार तार भवतार ॥ ९ ॥

(सर्वौषधिकी धारा)

इति पंचामृताभिषेक भाषा पाठ।

२७। अथ जलाभिषेक वा प्रक्षाल करनेका पाठ।

[प्रक्षाल करते समय बोलना]

जय जय जयवंते सदा, मंगलमूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौं जोरि जुगपान ॥

ढाल मंगलकी छंद अडिल्ल और गीता।

श्रीजिन जगमें ऐसो, को बुधवंत जू। जो तुम गुणवरननि
करि पावै अंतजू ॥ इंद्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनी।
कहि न सकै तुम गुणगण, हे त्रिभुवनधनी ॥

अनुपम अमित तुम गुणनि वारिध, ज्यों अलोकाकाश है।
किमि धरैं हम उर-कोशमें सो अकथ गुणमणिराश है॥
पै जिन प्रयोजनसिद्धिकी तुम नामहीमें शक्ति है।
यह चित्तमैं सरधान यातैं नामहीमें भक्ति है॥ १॥

ज्ञानावरणी दर्शनआवरणी भने। कर्ममोहनी अंतराय चारों हने॥ लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञानमें। इंद्रादिकके मुकुट नये सुरथानमें॥

तब इंद्र जान्यो अवधितैं, उठि सुरनयुत बंदत भयो।
तुम पुन्यको प्रेर्यो हरी ह्वै, मुदित धनपतिसौं चयो॥
अब बेगि जाय रचौ समवसृति सफल सुरपदको करौ।
साक्षात श्रीअरहंतके दर्शन करौ कल्मष हरौ॥ २॥

ऐसे वचन सुने सुरपतिके धनपती। चल आयो तत काल, मोद धारै अती॥ वीतराग छवि देखि शब्द जय जय चयौ। दै प्रदक्षिणा बार बार बंदत भयो॥

अति भक्तिभीनो नम्रचित ह्वै, समवसरण रच्यौ सही।
ताकी अनूपम शुभगतीको, कहन समरथ कोउ नही॥
प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजही।
नग-जडित गंधकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं॥ ३॥

सिंहासन तामध्य बन्यो अदभुत दिपै। तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै॥ तीन छत्र सिर शोभित चौसठ चमरजी। महाभक्तियुत ढोरत है तहां अमरजी॥

प्रभु तरन तारन कमल ऊपर, अंतरीच्छ विराजिया।
यह वीतरागदशा प्रतच्छ विलोकि भविजन सुख लिया॥

मुनि आदि द्वादश सभाके, भवि जीव मस्तक नायकैं।
वहुभांति बारंबार पूजें, नमैं गुणगण गायकैं ॥ ४ ॥

परमौदारिक दिव्य देह पावन सही। छुधा तृषा चिंता भय गद दूषण नही ॥ जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नसे। राग रोष निद्रा मद मोह सबै खसे ॥

श्रम विना श्रमजलरहित पावन अमल जोतिस्वरूपजी।
शरणागतनिको अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी ॥
ऐसे प्रभूकी शांति मुद्राको न्हवन जलतैं करैं।
'जस' भक्ति वश मन उक्तितैं हम, भानु ढिंग दीपक धरैं ॥५॥

तुम तौ सहज पवित्र यही निश्चय भयो।
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो ॥
मैं मलीन रागादिक मलतैं ह्वै रह्यो।
महा मलिन तनमैं वसुविधिवश दुख सह्यो ॥
वीत्यो अनंतौ काल यह, मेरी अशुचिता ना गई।
तिस अशुचिताहर एक तुम ही भरहु बांछा चित ठई ॥
अव अष्ट कर्म विनास सब मल-रोसरागादिक हरौ।
तन रूप कारागेहतैं उद्धार शिववासा करौ ॥ ६ ॥

मैं जानत तुम अष्ट कर्म हरि शिव गये।
आवागमनविमुक्त रागवर्जित भये ॥ ॥
पर तथापि मेरो मनरथ पूरत सही।
नय प्रमानतैं जानि महा साता लही ॥
पापाचरण तजि न्हवन करतौ चित्तमें ऐसे धरूं।
साक्षात श्रीअरहंतका मानों न्हवन परसन करूं ॥

ऐसे विमल परिणाम होतैं अशुभ नसि शुभबंधतैं।
विधि अशुभ नसि शुभबंधतैं ह्वै शर्म सब विधि तासतैं ॥७॥
पावन मेरे नयन, भये तुम दरसतैं।
पावन पानि भये तुम-चरननि परसतैं ॥
पावन मन ह्वै गयो, तिहारे ध्यानतैं।
पावन रसना मानी, गुणगण गानतैं ॥
पावन भई परजाय मेरी, भयौ मैं पूरणधनी।
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्ण भक्ति नहीं बनी ॥
धन धन्य ते बडभागि भवि, तिन नींव शिवघरकी धरी।
वर क्षीरसागर आदि जलमणि,-कुंभभरि भक्ती करी ॥८॥
विघनसघनवनदाहन-दहन प्रचंड हो।
मोह महातम दलन, प्रबल मारतंड हो ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश, आदि संज्ञा धरो।
जगविजयी जमराज, नाश ताको करो ॥
आनंद कारण दुखनिवारण, परम मंगल मय सही।
मोसौ पतित नहिं और तुमसौ, पतिततार सुन्यो नहीं ॥
चिंतामणी पारस कलपतरु, एक भव सुखकार ही।
तुम भक्तिनवका जे चढें ते, भये भवदधि पार ही ॥ ९ ॥

दोहा।

तुम भवदधितैं तरि गये, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्तिको, हमें उतारो पार ॥ १० ॥

इति हरजसराय कृत अभिषेकपाठ ॥

२८। विनयपाठ दोहावली।

इहिविधि ठाडो होयके, प्रथम पढै जो पाठ। धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ ॥ १ ॥ अनँत चतुष्टयके धनी तुमही हो शिरताज ॥ मुक्ति बधूके कंथ तुम, तीन भुवनके राज ॥ २ ॥ तिंहु जगकी पीड़ा हरण, भवदधि शोषनहार ॥ ज्ञायक हो तुम विश्वके, शिव सुखके करतार ॥ ३ ॥ हरता अघ अँधियारके, करता धर्म प्रकाश ॥ थिरतापद दातार हो, धरता निजगुण रास ॥ ४ ॥ धर्मामृत उर जलधिसों, ज्ञान-भानु तुम रूप। तुमरे चरण सरोजको, नावत तिहुं जग भूप ॥ ५ ॥ मैं वंदौं जिनदेवकौं, कर अतिनिरमल भाव ॥ कर्म-बंधके छेदने, और न कछू उपाव ॥ ६ ॥ भविजनकों भवि कूपतैं, तुमही काढन हार ॥ दीनदयाल अनाथ पति, आतम गुण भंडार ॥ ७ ॥ चिदानंद निर्मल कियो, धोय कर्म रज मैल ॥ सरल करी या जगतमें, भविजनको शिव गैल ॥ ८ ॥ तुम पद पंकज पूजतैं, बिघ्नरोग टर जाय ॥ शत्रु मित्रता को धरें, विष निरविषता थाय। चक्री खग धर इंद्र पद, मिलैं आपतैं आप ॥ अनुक्रम कर शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप ॥ १० ॥ तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल विन मीन। जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन ॥ ११ ॥ पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव। अंजनसे तारे कुधी जय जय जय जिनदेव ॥ १२ ॥ थकी नाव भविदधिविषैं, तुम प्रभु पार करेय। खेवटिया तुम हो प्रभू, जय जय जय जिनदेव ॥ १३ ॥ राग सहित जगमें रुल्यौ, मिले सरागी देव।

वीतराग भेट्यो अबै, मेटो राग कुटेव ॥ १४ ॥ कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यंच अज्ञान। आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान ॥ १५ ॥ तुमको पूजैं सुरपति, अहिपति नरपति देव। धन्य भाग मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव ॥१६॥ अशरणके तुम शरण हो, निराधार आधार ॥ मैं डूबत भव-सिंधुमें, खेओ लगाओ पार ॥ १७ ॥ इंद्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान। अपनों विरद निहारिके, कीजे आप समान ॥ १८ ॥ तुमरी नेक सुदृष्टिमें, जग उतरत है पार। हाहा डूब्यो जात हों, नेक निहार निकार ॥ १९ ॥ जो मैं कहहूं औरसों, तो न मिटै उर झार। मेरी तो तोसों बनी तातैं करौं पुकार ॥ २० ॥ वंदों पाचौं परमगुरु, सुरगुरु वंदत जास। विघन हरन मंगल करन, पूरन परम प्रकाश ॥ २१ ॥

२९। नित्य-नियमपूजा।

अथ देव-शास्त्रगुरुपूजा संस्कृत।

ओं जय जय जय। नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।

गाथा-आर्या।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आयरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

ओं आनादिमूलमंत्रभ्यो नमः। (पुष्पांजलि क्षेपण करना)

चत्तारि मंगलं—अरहंतमंगलं सिद्ध मंगलं साहुमंगलं केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंतलोगुत्तमा, सिद्धलोगुत्तमा, साहुलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मोलोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंतसरणं पव्वज्जामि सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥ ओं नमोऽर्हते स्वाहा ।

(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना ।)

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा । ध्यायेत्पंचनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यंतरे शुचिः ।
अपराजितमंत्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः । मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥ ३ ॥ एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो । मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं ॥ ४ ॥ अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः । सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहं ॥ ५ ॥ कर्माष्टकविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिकेतनं । सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहं ॥ ६ ॥ विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः । विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥ ७ ॥ (पुष्पांजलि)

(यदि पर्वके दिन हो वा अवकाश हो, तो यहांपर सहस्रनाम पढ़कर दश अर्घ देना चाहिये । नहीं तो नीचे लिखा श्लोक पढ़कर एक अर्घ चढ़ाना चाहिये ।)

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाममहं यजे ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीमज्जिनेंद्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशं स्याद्वादनायकमनंतचतुष्टयार्हं । श्रीमूलसंघ सुदृशां सुकृतैकहेतुर्जैनेंद्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥ ८ ॥ स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुंगवाय, स्व-

स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय । स्वस्ति प्रकाशसहजोर्ज्जित-दृङ्मयाय, स्वस्ति प्रसन्नललितादृभुतवैभवाय ॥९॥ स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय, स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय, स्वस्ति त्रिकालसकलायत विस्तृताय ॥ १० ॥ द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं, भावस्य शुद्धिमधिकामधिगंतुकामः । आलंबनानि विविधान्यवलंव्यवल्गन् भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञं ॥ ११ ॥ अर्हत्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि, वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेकएव। अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ, पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ।

(पुष्पांजलि क्षेपण करना)

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः । श्रीसंभवः स्वस्ति स्वति श्रीअभिनंदनः । श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः । श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति स्वस्ति श्रीचंद्रप्रभः । श्रीपुष्पदंतः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः । श्रीश्रेयान्सि स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्यः । श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति, श्रीअनन्तः । श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशांतिः । श्रीकुंथुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः । श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः । श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः। श्रीपार्श्वः स्वस्ति स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः ।

(पुष्पांजलिक्षेपण)

नित्याप्रकंपादृभुतकेवलौघाः स्फुरन्मनःपर्ययशुद्धबोधाः ।
दिव्यावधिज्ञानवलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१॥

पुष्पांजलि क्षेपणा आगे भी प्रत्येक श्लोकके अन्तमें पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये)

कोष्ठस्थधान्योपममेकबीजं संभिन्नसंश्रोतृपदानुसारि ।

चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥२॥
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादनघ्राणविलोकनानि ।
दिव्यान्मतिज्ञानबलाद्वहंतः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥
प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः ।
प्रवादिनोऽष्टांगनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।
जंघावलिश्रेणिफलांबुतंतुप्रसूनबीजांकुरचारणाह्वाः ।
नभोंऽगणस्वैरविहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥
अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि । मनोवपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ६ ॥ सकामरूपित्ववशित्वमैश्यं प्राकाम्यमंतर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः । तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयोः न ॥ ७ ॥ दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः । ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरंतः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥८॥ आमर्षसर्वौषधयस्तथाशीर्विषंविषादृष्टिविषंविषाश्च । सखिल्ल विड्जल्लमलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमषयो नः ॥

क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतो मधु स्रवंतोऽप्यमृतं स्रवंतः ।
अक्षीणसंवासमहानसाश्च स्वतिक्रियासु परमर्षयो नः ॥१०॥

इति स्वति मंगलविधानं ।

सार्वः सर्वज्ञनाथः सकलतनुभृतां पापसंतापहर्ता ।
त्रैलोक्याक्रांतकीर्तिः क्षतमदनरिपुर्घातिकर्मप्रणाशः ।
श्रीमान्निर्वाणसंपद्वरयुवतिकरा लीढकंठः सुकंण्ठैर्
देवेंद्रैर्वंद्यपादो जयति जिनपतिः प्राप्तकल्याणपूजः ॥ १ ॥

जय जय जय श्रीसत्कांतिप्रभो जगतां पते !
जय जय भवानेव स्वामी भवांभसि मज्जताम् ।
जय जय महामोहध्वांतप्रभातकृतेऽर्चनं
जय जय जिनेश त्वं नाथ प्रसीद करोम्यहम् ॥ २ ॥

ओं ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् (इत्याह्वानम्)
ओं ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । (इतिस्थापनम्)
ओं ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् (इति सन्निधिकरणं)

देवि श्रीश्रुतदेवते भगवति ! त्वत्पादपंकेरुह-
द्वंदे यामि शिलीमुखित्वमपरं भक्त्या मया प्रार्थ्यते ।
मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिनमुखोद्भूते सदा त्राहि मां
दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं संपूजयामोऽधुना ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशांगश्रुतज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

संपूजयामि पूज्यस्य पादपद्मयुगं गुरोः ।
तपःप्राप्तप्रतिष्ठस्य गरिष्ठस्य महात्मनः ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

जिनको केवल भाषाष्टक परसे भाषा पूजा करना हो, वे यहांसे ही भाषाष्टक बोल कर पूजा करें ।

देवेंद्रनागेंद्रनरेंद्रवंद्यान् शुंभत्पदान् शोभितसारवर्णान् ।
दुग्धाब्धिसंस्पर्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेहम् ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामि०
ताम्यत्त्रिलोकोदरमध्यवर्तिसमस्तसत्त्वाहितहारिवाक्यान् ।

श्रीचंदनैर्गंधविलुब्धभृंगैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामि०

अपारसंसारमहासमुद्रप्रोत्तारणे प्राज्यतरीन् सुभक्त्या ।
दीर्घाक्षतांगैर्धवलाक्षतौघैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन्यजेऽहं ॥३॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि०

विनीतभव्याब्जविवोधसूर्यान्वर्यान् सुचर्याकथनैकधुर्यान् ।
कुंदारविंदप्रमुखः प्रसूनैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥४॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि०

कुदर्पकंदर्पविसर्प्पसर्प्पप्रसह्यनिर्णाशनवैनतेयान् ।
प्राज्याज्यसारैश्चरुभी रसाढ्यैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥५॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामि०

ध्वस्तोद्यमांधीकृतविश्वविश्वमोहांधकारप्रतिघातदीपान् ।
दीपैः कनत्कांचनभाजनस्थैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥६॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामि०

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजालसंधूपने भासुरधूमकेतून ।
धूपैर्विधूतान्यसुगंधगंधैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेहं ॥ ७ ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योअष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामिस्वाहा

क्षुभ्यद्विलुभ्यन्मनसाप्यगम्यान् कुवादिवादाऽस्खलितप्रभावान्
फलैरलं मोक्षफलाभिसारैर्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन् यजेहं ॥ ८ ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामि०

सद्वारिगंधाक्षतपुष्पजातैर्नैवेद्यदीपामलधूपधूम्रैः ।
फलैर्विचित्रैर्घनपुण्ययोगान् जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥९॥
ओं ह्रीं देवशास्त्र गुरुभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामि०

ये पूजां जिननाथशास्त्रयमिनां भक्त्या सदा कुर्वते
त्रैसंध्यं सुविचित्रकाव्यरचनामुच्चारयंतो नराः ।
पुण्याढ्या मुनिराजकीर्तिसहिता भूत्वा तपोभूषणा-
स्ते भव्याः सकलावबोधरुचिरां सिद्धिं लभन्ते पराम् ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पाजलि क्षेपण करना)

वृषभोऽजितनामा च संभवश्चाभिनंदनः । सुमतिः पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥ १ ॥ चंद्राभः पुष्पदंतश्च शीतलो भगवान्मुनिः । श्रेयांश्च वासुपूज्यश्च विमलो विमलद्युतिः ॥२॥ अनंतो धर्मनामा च शांतिःकुन्थुर्जिनोत्तमः । अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमितीर्थकृत् ॥ ३ ॥ हरिवंशसमुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः । ध्वस्तोपसर्गदैत्यारिः पार्श्वो नागेंद्रपूजितः । कर्मांतकृन्महावीरः सिद्धार्थकुलसंभवः । एते सुरासुरौघेण पूजिता विमलत्विषः ॥ ५ ॥ पूजिता भरताद्यैश्च भूपेंद्रैर्भूरिभूतिभिः । चतुर्विधस्य संघस्य शांतिं कुर्वंतु शाश्वतीं ॥६॥ जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदास्तु मे । सम्यक्त्वमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥ ७ ॥ (पुष्पांजलि क्षेपण करना)

श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुतेभक्तिः सदाऽस्तु मे ।
सज्ज्ञानमेव संसारवारणं मोक्षकारणं ॥ ८ ॥ पुष्पांजलिम्०
गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिः सदाऽस्तु मे ।
चारित्रमेव संसारवारणं मोक्षकारणं ॥ ९ ॥ पुष्पांजलिम्०

अथ देवजयमाला प्राकृत ।

वत्ताणुट्ठाणे जणधणुदाणे पइपोसिउ तुहु खत्तधरु ।
तुहु चरण विहाणे केवलणाणे तुहु परमप्पउ परमपरु ॥१॥

जय रिसहरिसीसर मणियपाय । जय अजिय जियंगमरोसराय
जय संभव संभवकयवियोय । जय अहिणंदण णंदियपओय
जय सुमइ सुमइसम्मयपयास । जय पउमप्पह पउमाणिवास
जय जयहि सुपास सुपासगत्त । जय चंदप्पह चंदाहवत्त ॥३॥
जय पुप्फयंत दंतंतरंग । जय सीयल सीयलवयणभंग ।
जय सेय सेयकिरणोहसुज्ज । जय वासुपुज्ज पुज्जाणपुज्ज ॥४॥
जय विमल विमलगुणसेढिठाण । जय जयहि अणंताणंतणाण
जय धम्म धम्मतित्थयर संत । जय सांति सांति विहियायवत्त
जय कुंथु कुंथुपहुअंगिसदय । जय अर अर माहर विहियसमय
जय मल्लि मल्लिआदामगंध । जय मुणिसुव्वयसुव्वयणिबंध ॥
जय णमि णमियामरणियरसामि । जय णेमि धम्मरहचक्कणेमि ।
जय पास पासछिंदणकिवाण । जय बड्ढमाण जसबड्ढमाण ।७।

घत्ता ।

इह जाणिय णामहिं दुरियबिरामहिं परहिंवि णमिय सुरावलिहिं
अणहणहिं अणाइहिं समियकुवाइहिं पणविवि अरंहतावलिहिं ॥
ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरांत चतुर्विंशतिजिनेभ्यो निर्वपामीति स्वाहा ।

अथ शास्त्रजयमाला ।

संपइसुहकारण कम्मवियारण भवसमुद्दतारणतरणं ।
जिणवाणि णमस्समि सत्तिपयासमि सग्गमोक्खसंगमकरणं ॥
जिणंदमुहाओ विणिग्गयतार । गणिंदविगुंफिय गंथपयार ।
तिलोयहिमंडण धम्मह खाणि । सयापणमामि जिणिंदह वाणि
अवग्गह ईह अवाय जु एहिं । सुधारण भेयहिं तिण्णि सएहिं ।
मई छत्तीस बहुप्पमुहाणि । सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥

सुदं पुण दोण्णि अणेयपयार। सुवारह भेय जगत्तयसार ॥
सुरिंदणरिंदसमुच्चि ओ जाणि। सया पणमामि जिणिंदहवाणि।
जिणिंदगणिंदणरिंदह रिद्धि। पयासइ पुण्ण पुराकिउलद्धि ॥
णिउग्गुपहिल्लउ एहु वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि
जु लोय अलोयह जुत्ति जणेइ। जु तिण्णि वि कालसरूव भणेइ
चउग्गइ लक्खण दुज्जउ जाणि। सयापणमामि जिणिंदह वाणि
जिणिंदचरित्तविचित्त मुणेइ। सुसावइधम्मह जुत्ति जणेइ ॥
णिउग्गु वि तिज्जउ इत्थु वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि
सुजीव अजीवह तच्चह चक्खु। सुपुण्ण विपाव विबंध विमुक्खु
चउत्थुणिउग्गुविभासिय जाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि
तिभेयहिं ओहिविणाणविचित्तु। चउत्थु रिजोविउलं मइउत्तु ॥
सुखाइय केवलणाण वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि
जिणिंदह णाणु जगत्तयभाणु। महातमणासिय सुक्खणिहाणु
पयच्चउ भत्तिभरेण वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि
पयाणि सुवारहकोडि सयेण। सुलक्खतिरासिय जुत्तिभरेण
सहस अट्ठावण पंच वियाणि। सया पणमाणि जिणिंदह वाणि
इक्कावण कोडिउ लक्ख अठेव। सहसचुलसीदिसया छक्केव।
सढाइगवीसह गंथपयाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि।

घत्ता।

इह जिणवरवाणि विसुद्धमई। जो भवियण णियमण धरई।
सो सुरणरिंद संपइ लहई। केवलणाण वि उत्तरई ॥ १३ ॥
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानायार्घं

अथ गुरु जयमाला प्राकृत।

भवियह भवतारण, सोलहकारण, अज्जवि तित्थयरत्तणहं।
तवकम्म असंगइ दयधम्मंगइ पालवि पंच महव्वयहं ॥ १ ॥
वंदामि महारिसि सीलवंत। पंचेंदियसंजम जोगजुत्त ॥
जे ग्यारह अंगह अणुसरंति। जे चउदह पुव्वह मुणि थुणंति ॥
पादाणुसारवर कुट्ठबुद्धि। उप्पण्णु जाह आयासरिद्धि ॥
जे पाणाहारी तोरणीय। जे रुक्खमूल आतावणीय ॥ ३ ॥
जे मोणिधाय चंदाहणीय जे जत्थतत्थवणि णिवासणीय ॥
जे पंचमहव्वय धरणधीर। जे समिदिगुत्ति पालणहि वीर ॥
जे वड्ढहिं देहविरत्तचित्त। जे रायरोसभयमोहचत्त ॥
जे कुगइहि संवरु विगयलोह। जे दुरियविणासणकामकोह ॥
जे जल्लमल्लतणलित्त गत। आरंभपरिग्गह जे विरत्त ॥
जे तिण्णकाल बाहर गमंति। छट्ठट्ठम दसमउ तउ चरंति ॥६॥
जे इक्कगास दुइगास लिंति, जे णीरसभोयण रइ करंति ॥
ते मुणिवर वंदउं ठियमसाण। जे कम्मडहइ वर सुक्कझाण ॥
बारह विह संजम जे धरंति। जे चारिउ विकहा परिहरंति ॥
वावीस परीसह जे सहंति। संसारमहण्णउ ते तरंति ॥ ८ ॥
जे धम्मबुद्धि महियलि थुणंति। जे काउस्सग्गो णिस गमंति
जे सिद्धविलासणि अहिलसंति। जे पक्खमास आहार लिंति ॥
गोदूहण जे वीरासणीय। जे धणुहसेज वज्जासणीय ॥
जे तववलेण आयास जंति। जे गिरिगुहकंदर विवर थंति ॥
जें सत्तुमित्त समभाव चित्त। ते मुनिवर वंदउं दिढचरित्त ॥
चउवीसहं गंथह जे विरत्त। ते मुनिवर वंदउं जगपवित्त ॥११॥

जे सुज्झाणिज्झा एक चित्त। वंदामि महारिसि मोखपत्त॥
रणयत्तयरंजिय सुद्ध भाव। ते मुणिवर वंदउं ठिदिसहाव॥
घत्ता-जे तपसूरा, संजमधीरा. सिद्धवधू अणुराईया।
रयणत्तयरंजिय, कम्मह गंजिय, ते ऋषिवर मइ झाईया॥

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो महार्घं०

३०। अथ देवशास्त्रगुरुकी भाषा पूजा।

अडिल्ल छंद।

प्रथमदेव अरहंत सुश्रुतसिद्धांतजू। गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुरपंथजू॥ तीन रतन जगमाहिं सो ये भवि ध्याइये। तिनकी भक्ति प्रशाद परमपद पाइये॥ १॥

दोहा-पूजों पद अरहंतके, पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती, नितप्रति अष्टप्रकार॥ २॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्रावतरावतर। संवौषट्। ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

गीता छंद

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, बंदनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्जल, देख छबि मोहित सभा॥
वर नीर क्षीरसमुद्रघटभरि, अग्र तसु बहुविधि नचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नित पूजा रचूं॥१॥

दोहा-मलिन वस्तु हरलेत सब, जल स्वभाव मलछीन।
जासौं पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ १॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वहा॥१॥

जे त्रिजग उदरमझार प्रानी, तपतअति दुद्धर खरे।
तिन अहितहरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे॥

तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घिसि सचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नित पूजा रचूं॥ २॥
दोहा—चंदन शीतलता करै, तपतवस्तु परवीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ २॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥२॥

यह भवसमुद्र अपार तारण,—के निमित्त सु विधि ठई।
अति दृढ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही॥
उज्जल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥३॥
दोहा—तंदुल सालि सुगंधिअति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥३॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

जे विनयवंत सुभव्यउरअंबुजप्रकाशन भान हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषत, त्रिजगमांहिं प्रधान हैं।
लहि कुंदकमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥४॥
दोहा—विविधभांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ४॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

अतिसबल मदकंदर्प जाको, क्षुधाउरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशनको सु गरुडसमान है॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित नैवेद्य करि घृतमें पचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ५॥

दोहा-नानाविधि संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन ।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरुतीन ॥५॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने, मोहतिमिर महाबली ।
तिहि कर्मघातीज्ञानदीपप्रकाशजोति प्रभावली ॥
इह भांति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूं ।
अरहंत श्रुत सिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥६॥
दोहा-स्वपरप्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन ।
जासों पूजों परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन ॥ ६ ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै ।
वर धूप तासु सुगंधताकरि सकल परिमलता हंसै ॥
इह भांति धूप चढाय नित, भवज्वलनमाहिं नहीं पचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥७॥
दोहा-अग्निमांहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ७ ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

लोचन सुरसना घ्रान उर, उत्साहके करतार हैं ।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकलफलगुणसार हैं ॥
सो फल चढावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ८ ॥
दोहा-जो प्रधानफल फलविषै, पंचकरण-रसलीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥८॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं।
वर धूप निरमल फल विविध, बहुजनमके पातक हरूं॥
इहभांति अर्घ चढाय नित भवि, करत शिवपंकतिमचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ १॥

दोहा—वसुविधि अर्घ सँजोयके, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥९॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

दोहा—देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीनरतनकरतार।
भिन्न भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुणविस्तार ॥ १ ॥

पद्धरि छन्द।

छहकर्मकि त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादशदोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनँत धीर, कहवतके छ्यालिस गुण गँभीर॥
शुभ समवसरणशोभा अपार, शत इंद्र नमत कर सीस धार।
देवाधिदेव अरहंत देव, बंदों मनवचतनकरि सु सेव ॥ ३ ॥
जिनकी धुनि है ओंकाररूप, निरअक्षरमय महिमा अनूप।
दश अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत॥ ४॥
सो स्यादवादमय सप्तभंग, गणधर गूंथे बारह सु अंग।
रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय
गुरु आचारज उवझाय साधु, तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध।
संसारदेहवैराग धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥ ६ ॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस, भवतारनतरन जिहाज ईस।
गुरुकी महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपों मनवचनकाय ।७।

सोरठा—कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति विना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमरपद भोगवै ॥८॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सूचना—आगे जिस भाईको निराकुलता स्थिरता हो, वह नीचे लिखे अनुसार वीस तीर्थंकरोंकी भाषा पूजा करै। यदि स्थिरता नहीं हो, तो इस पूजाके आगे पृष्ठ ७५ में जो अर्घ लिखा है उसको पढ़कर अर्घ चढ़ादेवें।

३१। श्रीवीस तीर्थंकरपूजा भाषा।

दीप अढाई मेरु पन, अब तीर्थंकर वीस।
तिन सबकी पूजा करूं, मनवचतन धरि सीस ॥ १ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र अवतरत अवतरत। संवौषट्।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत। वषट्।

इंद्र फनींद्र नरेंद्र वंद्य, पद निर्मल धारी।
शोभनीक संसार, सारगुण हैं अविकारी ॥
क्षीरोदधि सम नीरसों (हो), पूजों तृषा निवार ॥
सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेहमंझार ॥
श्रीजिनराज हो भव, तारणतरण जहाज ॥ १ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

(इस पूजामें वीस पुंज करना हो, तो इस प्रकार मंत्र बोलना चाहिये।

ओं ह्रीं सीमंधर-युगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजातक-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनंतवीर्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चंद्रानन-भद्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरषेण-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्येति विंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

तीनलोकके जीव, पाप आताप सताये।
तिनकों साता दाता, शीतल बचन सुहाये ॥

बावन चंदनसों जजूं (हो) भ्रमनतपत निरवार। सीमं०॥२॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

(इसके स्थानमें यदि इच्छा हो, तो बड़ा मंत्र पढ़े)

यह संसार अपार, महासागर जिनस्वामी।
तातैं तारे बडी भक्ति–नौका जगनामी॥
तंदुल अमल सुगंधसों (हो) पूजों तुम गुणसार। सीमं० ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

भविक-सरोज-विकाश, निंद्यतमहर रविसे हो।
जति श्रावक आचार, कथनको, तुमही बडे हो॥
फूलसुवास अनेकसों (हो), पूजों मदन प्रहार। सीमं०॥४॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

कामनाग विषधाम,-नाशको गरुड कहे हो।
छुधा महादवज्वाल, तासुको मेघ लहे हो॥
नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो), पूजों भूखविडार। सीमं० ॥५

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० स्वाहा ॥५॥

उद्यम होन न देत, सर्व जगमाहिं भर्यो है।
मोह महातम घोर, नाश परकाश कर्यो है॥
पूजों दीपप्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योतिकरतार। सीमं० ॥६॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामिति स्वाहा

कर्म आठ सब काठ,–भार विस्तार निहारा।
ध्यान अगनिकर प्रगट, सरव कीनो निरवारा॥
धूप अनूपम खेवतें (हो), दुःख जलैं निरधार। सीमं॥७॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं।

सबको छिनमें जीत, जैनके मेर खरे हैं ॥
फल अति उत्तमसों जजों (हो), वांछितफलदातार। सीमं० ।८।

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आठों दर्व, अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर इंद्रनिहूते, थुति पूरी न करी है।
'द्यातन' सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार। सीमं० ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अथ जयमाला आरती।

सोरठा—ज्ञानसुधाकर चंद, भविकखेतहित मेघ हो।
भ्रमतमभान अमंद, तीर्थंकर बीसों नमों ॥१॥

चौपई १६ मात्रा।

सीमंधर सीमंधर स्वामी। जुगमंधर जुगमंधर नामी।
बाहु बाहु जिन जगजन तारे। करम सुबाहु बाहुबल दारे ॥१॥
जात सुजात केवलज्ञानं। स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं।
ऋषभानन ऋषि भानन दोषं। अनंतवीरज वीरजकोषं ॥ २ ॥
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं। सुगुण विशाल विशाल दयालं।
वज्रधार भवगिरिवज्जर हैं। चंद्रानन चंद्रानन वर हैं ॥ ३ ॥
भद्रबाहु भद्रनिके करता। श्रीभुजंग भुजंगम हरता।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं। नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं ॥ ४ ॥
वीरसेन वीरं जग जानै। महाभद्र महभद्र बखानैं ॥
नमों जसोधर जसधरकारी। नमों अजितवीरज बलधारी ॥
धनुष पांचसै काय विराजै। आव कोडिपूरव सब छाजै ॥
समवसरण सोभित जिनराजा। भवजलतारनतरन जिहाजा ॥

सम्यक रत्नत्रयनिधिदानी । लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी ॥
शत इंद्रनिकरि वंदित सोहैं । सुरनर पशु सबके मन मोहैं ॥

दोहा—तुमको पूजै बंदना, करै धन्य नर सोय ।
'द्यानत' सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

३२। अथ विद्यमान वीस तीर्थंकरोंका अर्घ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवल मंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनराजमहं यजे ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीमंधरयुग्मंधरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभऋषभानन अनन्तवीर्य सूरप्रभ-विशालकीर्तिवज्रधरचंद्राननभद्रबाहुभुजंगमईश्वरनेमिप्रभवीरसेनमहाभद्रदेवयशअजित-वीर्येति विंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्योऽर्घं निर्वपामीतिस्वाहा ।

३३। अकृतिम चैत्यालयोंके अर्घ।

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यंत्रिलोकीं गतान् ।
वंदे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् स्वर्गामराबासगान् ॥
सद्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैर्
द्रव्यैर्नीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शांतये ॥ १ ॥

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबंधिजिनबिंबेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

वर्षेषु वर्षांतरपर्वतेषु नंदीश्वरे यानि च मंदरेषु ।
यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानां ॥२॥
अवनितलगतानां कृत्तिमाकृत्रिमाणां ॥
वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानां ॥
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां ।
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥ ३ ॥

जंबूधातकिपुष्करार्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवाँश्
चंद्रांभोजशिखंडिकंठकनकप्रावृड्घना भाजिनाः ॥
सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धनाः ।
भूतानागतवर्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥४॥

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचिके कुंडले मानुषांके ।
इष्वाकारेंऽजनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥५॥

द्वौ कुंदेन्दुतुषारहारधवलौ द्वाविंद्रनीलप्रभौ ।
द्वौ बंधूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ ।
शेषाः षोडश जन्ममृत्युरहिताः संतप्तहेमप्रभास्
ते संज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छंतु नः ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं त्रिलोकसंबंधि-कृत्याकृत्रिमचैत्यालयेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

इच्छामि भंते चेइयभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ अहलोय तिरियलोय उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिण चेयाणि ताणि सव्वाणि, तीसुवि लोयेसु भवणवासिय-वाणविंतरजोयसियकप्पवासयत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धुव्वेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ह्राणेण णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति बंदंति णमस्संति । अहमवि इहसंतो तत्थसंताइ णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि बंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं

(इत्याशीर्वादः । परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अथ पौर्वाह्लिक-माध्याह्लिक-आपराह्लिकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं श्री पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥
तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

३४ । अथ सिद्धपूजा द्रव्याष्टक ।

ऊर्ध्वाधो रयुतं सविंदु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं ।
वर्गापूरितदिग्गतांबुजदलं तत्संधितत्वान्वितं ॥
अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं ।
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् । ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

निरस्तकर्मसंबंधं, सूक्ष्मं नित्यं निरामयम् ।
वंदेऽहं परमात्मानममूर्तमनुपद्रवम् ॥ १ ॥

(सिद्धियंत्रकी स्थापना)

जिनको विना द्रव्य चढाये भावोंके द्रव्योंसे ही पूजा करना हो, वे आगे पृष्ठ ८१ में भावाष्टक है उसको बोलकर करें ।

द्रव्याष्टक ।

सिद्धौ निवास मनुगं परमात्मगम्यं हान्यादिभावरहितं भव-

वीतकायं। रेवापगावरसरोयमुनोद्भवानां नीरैर्यजे कलशगैर्वर-सिद्धचक्रं ॥१॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति०

आनंदकंदजनकं घनकर्ममुक्तं सम्यक्त्वशर्मगरिमं जननार्ति वीतं। सौरभ्यवासितभुवं हरिचंदनानां गंधैर्यजे परिमलैर्वरसिद्ध चक्रं ॥ २ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामि०

सर्वावगाहनगुणं सुसमाधिनिष्ठं, सिद्धं स्वरूपनिपुणं कमलं विशालं। सौगंध्यशालिवनशालिवराक्षतानां, पुंजैर्यजे शशि निभैर्वरसिद्धचक्रम् ॥३॥

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि०

नित्यं स्वदेहपरिमाणमनादि संज्ञं, द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्य-तीतम्। मंदारकुंदकमलादिवनस्पतीनां, पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वर सिद्धचक्रम् ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि०

उर्ध्वस्वभावगमनं सुमनोव्यपेतं, ब्रह्मादिबीजसहितं गगनाव-भासम्। क्षीरान्नसाज्यवटकै रसपूर्णगर्भैर्नित्यं यजे चरुवरै-र्वरसिद्धचक्रं ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुद्रोगविध्वंसनाय नैवेद्यं निर्वपामि०

आतंकशोकभयरोगमदप्रशांतं, निर्द्वंद्वभावधरणं महिमानिवेशं कर्पूरवर्तिबहुभिः कनकावदातै,-र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वरसिद्धचक्रम्

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपा०

पश्यन्समस्तभुवनं युगपन्नितांतं, त्रैकाल्यवस्तु विषये निविड-

प्रदीपम् । सद्द्रव्यगंधघनसारविमिश्रितानां, धूपैर्यजे परिमलै-
र्वरसिद्धचक्रम् ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं सिद्ध चक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामि० ॥

सिद्धासुरादिपतियक्षनरेंद्रचक्रैर्ध्येयंशिवं सकलभव्यजनैःसुबंद्यं ।
नारिंगपूगकदलीफलनारिकेलैः सोऽहं यजे वरफलैर्वरसिद्धचक्रं

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामि० ॥

गंधाढ्यं सुपयो मधुव्रतगणैः संगं वरं चंदनं ।
पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकं ॥
धूपं गंधयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये ।
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांछितं ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनंतवीर्यं
कर्मौघकक्षदहनं सुखशस्यबीजं वंदे सदा निरुपमं वरसिद्धचक्रं

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

त्रैलोक्येश्वरबंदनीयचरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं
यानाराध्य निरुद्धचंडमनसः संतोऽपि तीर्थंकराः ।
सत्सम्यक्त्वविबोधवीर्यविशदाऽव्याबाधताद्यैर्गुणैर्
युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान् ॥

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अथ जयमाला ।

विराग सनातन शांत निरंश । निरामय निर्भय निर्मल हंस ॥
सुधाम विबोधनिधान विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह १
विदूरितसंसृतिभाव निरंग । समामृतपूरित देव विसंग ।

अबंध कषाय विहीनविमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ।
निवारितदुष्कृतकर्मविपास । सदामलकेवलकेलिनिवास ॥
भवोदधिपारग शांत विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥
अनंतसुखामृतसागर धीर । कलंकरजोमलभूरिसमीर ॥
विखंडितकाम विराम विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥
विकारविवर्जित तर्जितशोक । विबोधसुनेत्रविलोकितलोक
विहार विराव विरंग विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥
रजोमलखेदविमुक्त विगात्र । निरंतर नित्य सुखामृतपात्र ॥
सुदर्शन राजित नाथ विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥
नरामरवंदित निर्मलभाव । अनंत मुनीश्वरपूज्य विहाव ॥
सदोदय विश्वमहेश विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥७॥
विदंभ वितृष्ण विदोष विनिद्र । परापरशंकर सार वितंद्र ॥
विकोप विरूप विशंक विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥
जरामरणोज्झित वीतविहार । विचिंतित निर्मल निरहंकार ॥
अचिंत्यचरित्र विदर्प विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥९॥
विवर्ण विगंध विमान विलोभ । विमाय विकाय विशब्दविशोभ
अनाकुल केवल सर्व विमोह प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥

घत्ता ।

असमसमयसारं चारुचैतन्यचिह्नं, परपरणतिमुक्तं पद्मनंदींद्रवंद्यं
निखिलगुणनिकेतं सिद्धचक्रं विशुद्धं, स्मरति नमति यो वा
स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिं ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अथाशीर्वाद । अडिल्ल छंद ।

अविनाशी अविकार परमरसधाम हो । समाधान सर्वज्ञ सहज

अभिराम हो। शुद्धबोध अविरुद्ध अनादि अनंत हो, जगत-शिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो ॥ १ ॥ ध्यानअगनिकर कर्म कलंक सबै दहे, नित्य निरंजनदेव सरूपी ह्वै रहे। ज्ञायकके आकार ममत्वनिवारिकैं, सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकैं ॥ २ ॥

दोहा—अविचलज्ञानप्रकाशतैं, गुण अनंतकी खान।
ध्यान धरै सो पाइए, परम सिद्ध भगवान ॥ ३ ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

३५। अथ सिद्धपूजाका भावाष्टक।

निजमनोमणिभाजनभारया, समरसैकसुधारसधारया।
सकलबोधकलारमणीयकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ जलं ॥
सहजकर्मकलंकविनाशनैरमलभावसुवासितचंदनैः।
अनुपमानगुणावलिनायकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ चंदनं ॥
सहजभावसुनिर्मलतंदुलैः सकलदोषविशालविशोधनैः।
अनुपरोध सुबोधनिधानकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये। अक्षतान्
समयसारसुपुष्पसुमालया सहजकर्मकरेण विशोधया।
परमयोगबलेन वशीकृतं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ पुष्पं ॥
अकृतबोधसुदिव्यनिवेद्यकैर्विहितजातजरामरणांतकैः।
निरवधिप्रचुरात्मगुणालयं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ नैवेद्यं ॥
सहजरत्नरुचिप्रतिदीपकैः रुचिविभूतितमःप्रविनाशनैः।
निरवधिस्वविकाशप्रकाशनैः सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ दीपं ॥
निजगुणाक्षयरूपसुधूपनैः स्वगुणघातिमलप्रविनाशनैः।
विशदबोधसुदीर्घसुखात्मकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ धूपं ॥

परमभावफलावलिसंपदा, सहजभावकुभावविशोधया ।
निजगुणास्फुरणात्मनिरंजनं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥फलं॥
नेत्रोन्मीलिविकाशभावनिवहैरत्यंतबोधाय वै ।
वार्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैः ।
यश्चिंतामणिशुद्धभावपरमज्ञानात्मकैरर्चयेत् ।
सिद्धं स्वादुमगाधबोधमचलं संचर्चयामो वयं ॥१॥ अर्घं ।

३६ । सोलहकारणका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनहेतुमहं यजे ॥ १ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

३७ । दशलक्षणधर्मका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनधर्ममहं यजे ॥ २ ॥

ओं ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्भूतोत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्य्यदशलाक्षणिकधर्मेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

३८ । रत्नत्रयका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनरत्नमहं यजे ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधाचारसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशप्रकारसम्यक्चारित्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

—:०:—

३९। अथ पंचपरमेष्ठि जयमाला आरती (प्राकृत)

मणुय-णाइंद-सुरधरियछत्तत्तया, पंचकल्लाणसुक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं॥
जेहिं झाणग्गिवाणेहिं अइथट्टयं, जम्मजरमरणणयरत्तयं दट्टयं
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महादिंतु सिद्धा वरं णाणयं॥
पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया, बारसंगाइ सुयजलहिं अवगाहया
मोक्खलच्छी महंती महं ते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खं गयासंगया
घोरसंसारभीमाडवीकाणणे, तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया, बंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया
उग्गतवयरणकरणेहिं झीणं गया, धम्मवरझाणसुक्केक्कझाणं गया
णिब्भरंतवसिरीएसमालिंगया, साहओतेमहामोक्खपहमग्गया
एण थोत्तेण जो पंचगुरु बंदए। गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए
लहइ सो सिद्धसुक्खाइवरमाणणं, कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं

आर्या।

अरिहा सिद्धाइरिया, उवज्झाया साहु पंचपरमट्ठी।
एयाण णमुक्कारो, भवे भवे मम सुहं दिंतु॥ १॥

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अथाशीर्वादः।

इच्छामि भंते पंचगुरुभत्ति काओसग्गो कओ, तस्सालोचेओ अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं। अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं। अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं। आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं। तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं

अर्चेमि पूजेमि बंदामि णमस्सामि, दुःक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं। इत्याशीर्वाद। [पुष्पांजलिं क्षिपेत्]

४०। अथ शांतिपाठः, स्तुति।

[शांतिपाठ बोलते समय दोनों हाथोंसे पुष्पवृष्टि करते रहना चाहिये।]

दोधकवृत्तं।

शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं, शीलगुणव्रतसंयमपात्रं।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तममंबुजनेत्रं ॥ १ ॥
पंचममीप्सितचक्रधराणां, पूजितमिंद्रिनरेन्द्रगणैश्च।
शांतिकरं गणशांतिमभीप्सुः षोडषतीर्थकरं प्रणमामि ॥ २ ॥
दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुंदुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मंडलतेजः ॥ ३ ॥
तं जगदर्चितशांतिजिनेंद्रं शांतिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं मह्यमरं पठते परमां च ॥ ४ ॥

वसंततिलका छंद।

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुंडलहाररत्नैः
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः॥
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपास्
तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु ॥ ५ ॥

इंद्रवज्रा।

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतींद्रसामान्यतपोधनानां।
स्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांतिं भगवन् जिनेंद्रः ॥६॥

स्रग्धरा वृत्तम् ।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः,
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यांतु नाशं ।
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्म भूज्जीवलोके,
जैनेंद्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥ ७ ॥

अनुष्टुप् ।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः ।
कुर्वंतु जगतः शांतिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥ ८ ॥
प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

अथेष्टप्रार्थना ।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनं ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्वे
संपद्यंतां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ ९ ॥

आर्यावृत्तं ।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं ।
तिष्ठतु जिनेंद्र ! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः ॥ १० ॥
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुःक्खक्खयं दिंतु ॥ ११ ॥
दुःक्खखओ कम्मखओ समाहिमरणं च बोहिलाहो य ।
मम होउ जगतबंधव तव जिणवर चरणसरणेण ॥ १२ ॥

संस्कृतप्रार्थना ।

त्रिभुवनगुरो ! जिनेश्वर ! परमानंदैककारण कुरुष्व ।
मयि किंकरेऽत्र करुणां यथा तथा जायते मुक्तिः ॥१३॥

निर्विण्णोहं नितरामर्हन् बहुदुक्खया भवास्थित्या ।
अपुनर्भवाय भवहर ! कुरु करुणामत्र मयि दीने ॥ १४ ॥
उद्धर मां पतितमतो विषमाद् भवकूपतः कृपां कृत्वा ।
अर्हन्नलमुद्धरणे त्वमसीत्ति पुनः पुनर्वच्मि ॥ १५ ॥
त्वं कारुणिकः स्वामी त्वमेव शरणं जिनेश ! तेनाहं ।
मोहरिपुदलितमानं फूत्करणं तव पुरः कुर्वे ॥ १६ ॥
ग्रामपतेरपि करुणा, परेण केनाप्युपद्रुते पुंसि ।
जगतां प्रभो ! न किं तव, जिन ! मयि खलु कर्मभिः प्रहते ॥
अपहर मम जन्म दयां, कृत्वेत्येकवचेसि वक्तव्ये ।
तेनातिदग्ध इति मे देव ! बभूव प्रलापित्वं ॥ १८ ॥
तव जिनवर ! चरणाब्जयुगं, करुणामृतशीतलं यावत् ।
संसारतापतप्तः करोमि हृदि तावदेव सुखी ॥ १९ ॥
जगदेकशरण ! भगवन् ! नौमि श्रीपद्मनंदितगुणौघ ।
किं बहुना ? कुरु करुणामत्र जने शरणमापन्ने ॥ २० ॥

(परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

४१ । अथ विसर्जनं ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ।
आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनं ।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥ २ ॥
मंत्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्षजिनेश्वर ॥ ३ ॥

आहुता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमं ।
ते मयाभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यांतु यथास्थितिं ॥ ४ ॥

इति नित्यपूजाविधानं समाप्तं ।

४२ । अथ भाषास्तुतिपाठ ।

तुम तरणतारण भवनिवारण, भविकमन आनंदनो ।
श्रीनाभिनंदन जगतवंदन,आदिनाथ निरंजनो ॥१॥
तुम आदिनाथ अनादि सेऊं, सेय पदपूजा करूं ।
कैलासगिरिपर रिषभजिनवर, पदकमल हिरदै धरूं ॥२॥
तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महाबली ।
इह विरुद सुनकर सरनआयो, कृपा कीजे नाथजी ॥३॥
तुम चंद्रवदन सु चंद्रलच्छन, चंद्रपुरी परमेश्वरो ।
महासेननंदन, जगतवंदन चंद्रनाथ जिनेश्वरो ॥ ४ ॥
तुम शांति पांचकल्याण पूजों, शुद्धमनवचकायजू ।
दुर्भिक्ष चोरी पापनाशन, विघन जाय पलायजू ॥ ५ ॥
तुम बालब्रह्म विवेकसागर, भव्यकमलविकाशनो ।
श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापतिमिर विनाशनो ॥ ६ ॥
जिन तजी राजुल राजकन्या, कामसेन्या वश करी ।
चारित्ररथ चढि होय दूलह, जाय शिवरमणी वरी ॥७॥
कंदर्प दर्प सुसर्पलच्छन, कमठ शठनिर्मद कियो ।
विश्वसेननंदन जगतवंदन, सकलसँग मंगल कियो ॥ ८ ॥
जिन धरी बालकपणे दीक्षा, कमठमानविदारकैं ।
श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्रके पद, मैं नमों शिरधारकैं ॥ ९ ॥
तुम कर्मघाता मोक्षदाता, दीन जानि दया करो ।

सिद्धार्थनंदन जगतबंदन, महावीर जिनेश्वरो ॥ १० ॥
छत्र तीन सोहैं सुर नर मोहैं, वीनती अवधारिये ।
कर जोड़ि सेवक वीनवै प्रभु, आवागमन निवारिये ॥११॥
अब होउ भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहों ।
कर जोड यो वरदान मांगूं, मोक्षफल जावत लहों ॥१२॥
जो एकमाहीं एक राजै, एकमाहिं अनेकनो ।
इक अनेककि नहीं संख्या, नमों सिद्ध निरंजनो ॥१३॥
चौ०—मैं तुम चरणकमलगुणगाय । बहुविध भक्ति करी मनलाय
जनम जनम प्रभु पाऊं तोहि । यह सेवाफल दीजे मोहि ॥१४॥
कृपा तिहारी ऐसी होय । जामन मरन मिटावो मोय ।
बारबार मैं बिनती करूं । तुम सेयाँ भवसागर तरूं ॥ १५ ॥
नाम लेत सब दुख मिटजाय । तुम दर्शन देख्यो प्रभु आय ।
तुम हो प्रभु देवनके देव । मैं तो करूं चरण तव सेव ॥१६॥
मैं आयो पूजनके काज । मेरो जन्म सफल भयो आज ।
पूजाकरके नवाऊं शीश । मुझ अपराध क्षमहु जगदीश ॥१७॥
दोहा—सुखदेना दुख मेटना, यही तुम्हारी बान ।
मो गरीबकी बीनती, सुन लीज्यो भगवान ।
पूजन करते देवकी, आदिमध्य अवसान ।
स्वर्गनके सुख भोगकर, पावै मोक्ष निदान ॥ १९ ॥
जैसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय ।
जो सूरजमें जोति है, तारनमें नहिं सोय ॥ २० ॥
नाथ तिहारे नामतैं, अघ छिनमांहिं पलाय ।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अंधकार विनशाय ॥ २१ ॥

बहुत प्रशंसा क्या करूं, मैं प्रभु बहुत अजान।
पूजाविधि जान्यों नहीं, सरन राखि भगवान ॥ २२ ॥

इति भाषास्तुतिपाठ समाप्त।

—o—

तीसरा अध्याय।

देवशास्त्रगुरु स्तुति संग्रह।

४३। नामावली स्तुति।

छन्द १६ मात्रा।

जय जिनंद सुखकंद नमस्ते। जय जिनंद जितफंद नमस्ते ॥ जय जिनंद वरबोध नमस्ते। जय जिनंद जितक्रोध नमस्ते ॥ १ ॥ पापतापहर इंदु नमस्ते। अर्हंवरनजुतबिंदु नमस्ते ॥ शिष्टाचारविशिष्ट नमस्ते। इष्ट मिष्ट उत्कृष्ट नमस्ते ॥ २ ॥ पर्म धर्म वर शर्म नमस्ते। मर्मभर्मघन धर्म नमस्ते ॥ दृगविशाल वर भाल नमस्ते। हृददयाल गुनमाल नमस्ते ॥ ३ ॥ शुद्धबुद्ध अविरुद्ध नमस्ते। रिद्धिसिद्धि वरवृद्धि नमस्ते ॥ वीतराग विज्ञान नमस्ते। चिद्विलास धृत ध्यान नमस्ते ॥ ४ ॥ स्वच्छ गुणांबुधि रत्न नमस्ते। सत्त्व हितंकर यत्न नमस्ते ॥ कुनयकरीमृगराज नमस्ते। मिथ्याखगवर-बाज नमस्ते ॥ ५ ॥ भव्यभवोदधिपार नमस्ते। शर्मामृत सिवसार नमस्ते ॥ दरश-ज्ञान-सुखवीर्य नमस्ते। चतुरानन धर धीर्य नमस्ते ॥ ६ ॥ हरिहर ब्रह्मा विष्णु नमस्ते। मोह मर्द मनु जिष्णु नमस्ते ॥ महादान महभोग नमस्ते। महाज्ञान

महजोग नमस्ते ॥७॥ महाउग्रतपसूर नमस्ते। महामौनगुण भूरि नमस्ते ॥ धरम चक्रि वृषकेतु नमस्ते। भवसमुद्रशतसेतु नमस्ते ॥ ८ ॥ विद्याईश मुनीश नमस्ते। इंद्रादिकनुतशीस नमस्ते ॥ जय रत्नत्रय राय नमस्ते। सकल जीव सुखदाय नमस्ते ॥९॥ अशरणशरणसहाय नमस्ते। भव्यसुपंथलगाय नमस्ते ॥ निराकार साकार नमस्ते। एकानेकअधार नमस्ते ॥ १० ॥ लोकालोकविलोक नमस्ते। त्रिधा सर्वगुण थोक नमस्ते ॥ सल्लदल्लदलमल्ल नमस्ते। कल्लमल्लजितछल्ल नमस्ते ॥११॥ भुक्तिमुक्तिदातार नमस्ते। उक्तिसुक्तिशृंगार नमस्ते। गुणअनंत भगवंत नमस्ते। जै जै जै जयवंत नमस्ते ॥ १२ ।

४४। जिनेंद्र स्तुति।

गीता छंद।

मंगल सरूपी देव उत्तम तुम शरण्य जिनेशजी। तुम अधम तारण अधम मम लखि मेट जन्मकलेश जी ॥ टेक ॥ म मोह जीत अजीत इच्छातीत शर्मामृत भरे। रजनाश म वरभास दृग नभ ज्ञेय सब इक उडुचरे ॥ रटरास क्षति अति अमित वीर्य सुभाव अटल सरूप हो। सब रहित दूषण त्रिजगभूषण अज अमल चिद्रूप हो ॥१॥ इच्छा बिना भवि-भाग्यतैं तुम ध्वनि सुहोय निरक्षरी। षटद्रव्यगुणपर्यय अखिल युत एक छिनमें उच्चरी ॥ एकांतवादी कुमत पक्ष-विलिप्त इम ध्वनि मद हरी। संशय तिमिरहर रविकला भविशस्यकों अमरितझरी ॥२॥ वस्त्राभरण बिन शांतिमुद्रा सकल सुरनरमन हरै। नाशाग्रदृष्टि विकारवर्जित निरखि

छवि संकट टरै ॥ तुम चरणपंकज नखप्रभा नभकोटि सूर्यप्रभा धरै । देवेंद्र नाग नरेंद्र नमत सु मुकुटमणिद्युति विस्तरै ॥ ३ ॥ अंतर बहिर इत्यादि लक्ष्मी तुम असाधारण लसै । तुम जाप पापकलापनासै ध्यावते शिवथल बसै ॥ मैं सेय कुदृग कुवोध अव्रत चिर भ्रम्यो भववन सबै ॥ दुख सहे सर्व प्रकार गिरसम सुख न सर्पपसम कबै ॥४॥ परचाहदाहदह्यो सदा कबहूं न साम्यसुधा चख्यो । अनुभव अपूरव स्वादु विन नित विषयरसचारो भख्यो ॥ अब बसो मोउरमें सदा प्रभु तुम चरण सेवक रहों । वर भक्ति अतिदृढ़ होहु मेरे अन्य विभव नहीं चहों ॥५॥ एकेंद्रियादिक अंतग्रीवक तक तथा अंतर घनी । पर्याय पाय अनंतबार अपूर्व सो नहिं शिवधनी ॥ संसृतभ्रमणतैं थकित लखि निज दासकी सुन लीजिये । सम्यकदरश वर ज्ञानचारितपथ विहारी कीजिये ॥

४५ । अथ दुःखहरण स्तुति ।

(शेर की रीतिमें तथा और २ रागिनियोंमें भी बनती हैं)

श्रीपति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तुमारा बाना है ।
मत मेरी बार अवार करो, मोहि देहु विमल कल्याना है ।टेक।
त्रैकालिक वस्तु प्रत्यक्ष लखो, तुमसौं कछु बात न छाना है ।
मेरे उर आरत जो वरतै, निहचै सब सो तुम जाना है ॥
अवलोक विथा मत मौन गहो, नहिं मेरा कहीं ठिकाना है ।
हो राजिवलोचन सोचविमोचन, मैं तुमसौं हित ठाना है ॥
श्री० ॥ १ ॥ सब ग्रंथनिमैं निरग्रंथनिने, निरधार यही गणधार कही । जिननायक ही सब लायक हैं, सुखदायक छायक

ज्ञान मही ॥ यह बात हमारे कान परी, तब आन तुमारी सरन गही । क्यों मेरी बार विलंब करो, जिननाथ कहो वह बात सही ॥ श्री० ॥ २ ॥ काहूको भोग मनोग करो, काहूको स्वर्गविमाना है । काहूको नागनरेशपती, काहूको ऋद्धि निधाना है ॥ अब मोपर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है। इनसाफ करो मत देर करो, सुखवृंद भरो भगवाना है ॥ श्री० ॥ ३ ॥ खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुमसों आन पुकारा है । तुम ही समरत्थ न न्याव करो तब बंदेका क्या चारा है । खल-घालक पालक बालकका, नृपनीति यही जगसारा है । तुम नीतिनिपुन त्रैलोकपती, तुमही लगि दौर हमारा है ॥ श्री० ॥ ४ ॥ जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसे तुमहीको माना है । तुमरे ही शासनका स्वामी, हमको शरना सरधाना है ॥ जिनको तुमरी शरनागत है, तिनसौं जमराज डराना है । यह सुजस तुम्हारे सांचेका, जस गावत वेद पुराना है ॥ श्री० ॥ ५ ॥ जिसने तुमसे दिलदर्द कहा तिसका तुमने दुख हाना है । अघ छोटा मोटा नाशि तुरित, सुख दिया तिन्हें मनमाना है ॥ पावकसों शीतल नीर किया, औ चीर बढा असमाना है । भोजन था जिसके पास नहीं, सो किया कुवेर समाना है ॥ ॥ श्री ॥ ६ ॥ चिंतामन पारस कल्पतरू सुखदायक ये परना है । तब दासनके सबदास यही, हमरे मनमें ठहराना है । तुव भक्तनको सुरइंदपदी, फिर चक्रपतीपद पाना है । क्या बात कहों विस्तार बडी, वे पावैं मुक्ति ठिकाना है ॥श्री०॥

॥ ७ ॥ गतिचार चुरासी लाख विषैं, चिन्मूरत मेरा भटका है। हो दीनबंधु करुणानिधान, अबलौं न मिटा वह खटका है ॥ जब जोग मिला शिव साधनका, तब विघन कर्मने हटका है। तुम विघन हमारे दूर करो, सुख देहु निराकुल घटका है ॥ श्री० ॥ ८ ॥ गजग्राह ग्रसित उद्धार लिया, ज्यों अंजन तस्कर तारा है। ज्यों सागर गोपद रूप किया, मैनाका संकट टारा है। ज्यों सूलीतैं सिहासन औ वेडीको काट विडारा है। त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोको आस तुमारा है। ॥ श्री० ॥ ९ ॥ ज्यों फाटक टेकत पांय खुला औ सांप सुमन कर डारा है। ज्यों खड्ग कुसुमका मालकिया बालकका जहर उतारा है ॥ ज्यों सेठ विपत चकचूर पूर, घर लक्ष्मी सुख विस्तारा है। त्यों मेरा संकट दूर करो प्रभु मोको आस तुमारा है ॥ श्री० ॥ १० ॥ यद्यपि तुमको रागादि नहीं यह सत्य सर्वथा जाना है। चिन्मूरति आप अनंत गुनी, नित शुद्धदशा शिवथाना है ॥ तद्दपि भक्तनकी भीड हरो सुख देत तिन्हें जु सुहाना है। यह शक्ति अचिंत तुम्हारीका क्या पावै पार सयाना है ॥ श्री० ॥ ११ ॥ दुखखंडन श्रीमुख मंडनका, तुमरा प्रन परम प्रमाना है। वरदान दया जस कीरतका, तिहुलोकधुजा फहराना है ॥ कमलाधरजी ! कमलाकरजी करिये कमला अमलाना है। अब मेरि विथा अवलोकि रमापति, रंच न बार लगाना है ॥ श्री० ॥ १२ ॥ हो दीनानाथ अनाथ हितू, जन दीन अनाथ पुकारी है। उदयागत कर्मविपाक हलाहल, मोह विथा विस्तारी है ॥ ज्यों

आप और भवि जीवनकी ततकाल विथा निरवारी है। त्यों 'वृंदावन' यह अर्ज करै प्रभु आज हमारी बारी है ॥ १३ ॥

इति वृन्दावनकृत स्तुति । ७ ।

४६ । जिनेन्द्रस्तुति ।

चौपाई (सोलह मात्रा)

जै जगपूज परमगुरु नामी । पतितउधारन अंतरजामी ॥ दास दुखी तुम अति उपगारी । सुनिये प्रभु ! अरदास हमारी ॥ यह भव घोर समुद्र महा है । भूधर-भ्रम-जल-पूर रहा है ॥ अंतर दुख दुःसह बहुतेरे । ते बडवानल साहिब मेरे ॥ जनमजरा-गद मरन जहां है । ये ही प्रबल तरंग तहां है ॥ आवत विपति नदीगन जामैं । मोह महान मगर इक तामैं ॥ तिहमुख जीव पर्यो दुख पावै । हे जिन ! तुम विन कौन छुडावै ॥ अशरनशरन अनुग्रह कीजे यह दुख मेटि मुकति मुहि दीजे दीरघ काल गयौ विललावैं । अब ये सूल सहे नहिं जावैं ॥ सुनियत यों जिनशाशनमाहीं । पंचमकालपरमपद नाहीं ॥ कारन पांच मिलैं जब सारे । तब शिव सेवक जाहिं तिहारे । तातैं यह विनती अब मेरी । स्वामी ! शरण लई हम तेरी । प्रभु आगैं चितचाह प्रकासौं । भव भव श्रावककुल अभिलाषौं ॥ भव भव जिन आगम अवगाहौं । भव भव भक्ति चरणकी चाहौं ॥ भव भवमें सतसंगति पाऊं । भव भव साधनके गुन गाऊं ॥ परनिंदा मुख भूलि न भाखूं । मैत्रीभाव सबनसौं राखूं ॥ भव भव अनुभव आतम केरा । होहु समाधिमरण नित मेरा जबलौं जनम जगतमें लाधौं काललब्धिबल लहि शिवसाधौं

तबलौं ये प्रापति मुझ हूजौ। भक्ति प्रताप मनोरथ पूजौ ॥ प्रभु सब समरथ हम यह लोरैं। 'भूधर' अरज करत कर जोरैं ॥

४७। करुणाष्टक।

करुणा ल्यो जिनराज हमारी, करुणाल्यो० ॥टेक॥ अहो जगतगुरु जगपतीजी, परमानंदनिधान। किंकरपर कीजे दया जी दीजे अविचल थान। हमारी० ।१। भव दुखसौं भयभीत हौंजी शिवपदवांछा सार। करौ दया मुझ दीनपैजी, भव-बंधन निरवार। हमारी० ॥२॥ पर्यो विषम भवकूपमेंजी, हे प्रभु! काढौं मोंहिं। पतित उधारण हो तुम्हींजी, फिर फिर विनऊं तोहि ।हमारी० ।३। तुम प्रभु परम दयाल होजी, अशरनके आधार। मोहि दुष्ट दुख देत हैंजी, तुमसों करहुँ पुकार हमारी० ।४। दुःखित देखि दया करैजी, गांवपती इक होय। तुम त्रिभुवनपति कर्मतैंजी, क्यों न छुडावो मोय। हमारी०।५। भव-आताप तबै बुझैजी, जब राखौं उर धोय। दया-सुधारक सीयराजी, तुमपदपंकज दोय ॥ हमारी० ॥६॥ येहि एक मुझ वीनतीजी, स्वामी! हर संसार। बहुत धज्यौ हूं त्रासतैंजी, विलख्यो बारंबार ॥ हमारी० ॥७॥ पदमनंदिको अर्थ लैजी, अरज करी हितकाज। शरणागत भूधरतणीजी, राखहु जगतपति लाज ॥ हमारी० ॥ ८ ॥

४८। पार्श्वनाथ स्तुति।

सोरठा।

पारसप्रभुको नाउँ, सार सुधारस जगतमें।
मैं वाकी बलि जाउँ, अजर अमरपदमूल यह ॥ १ ॥

हरिगीता (१८ मात्रा)

राजत उतंग अशोक तरुवर, पवनप्रेरित थरहरै। प्रभु निकट पाय प्रमोद नाटक, करत मानौं मनहरै॥ तस फूल गुच्छन भ्रमर गुंजत, यही तान सुहावनी। सो जयौ पार्श्व-जिनेंद्र पातकहरन जगचूडामनी॥२॥ निज मरन देखि अनंग डरप्यो, सरन ढूंढत जग फिर्यो। कोई न राखै चोर प्रभुको, आय पुनि पाँयन गिर्यो॥ यौं हार निज हथियार डारें पुहुपवर्षा मिस भनी। सो जयौ०॥३॥ प्रभुअंगनीलउतंगगिरितैं, वानि शुचि सरिता ढली। सो भेदि भ्रमगजदंतपर्वत, ज्ञानसागरमें रली नय सप्त भंग-तरंग-मंडित, पापतापविध्वंसनी। सोजयो०॥४॥ चंद्रार्चिचयछवि चारु चंचल, चमरवृंद सुहावने। ढोलैं निरंतर यक्षनायक, कहत क्यों उपमा बने॥ यह नील गिरिके शिखर मानौं, मेघझरि लागी घनी।सोजयौ०।५। हीरा जवाहिर खचित बहुविध, हेमआसन राजए। तहँ जगत जनमनहरन प्रभु तन नीलवरन विराजए। यह जटित वारिजमध्यमानौं, नीलमणिकलिका बनी।सोजयौ०।६। जगजीत मोह महान जोधा जगतमें पटहादियो। सो शुकलध्यानकृपान बल, जिन विकट वैरी वश कियौ॥ ये बजत विजय निशान दुंदुभि, जीत सूचैं प्रभुतनी।सो जयौ०।७। छद्मस्थपदमें प्रथम दर्शन, ज्ञानचारित आदरे। अब तीन तेई छत्र छलसौं, करत छाया छवि भरे॥ अति धवलरूप अनूप उन्नत, सोमबिंबप्रभा हनी।सो जयौ०।८। दुति देखि ज्ञाकी चंद सरमैं, तेजसौं रवि लाजई। तव प्रभा-मंडलजोग जगमें कौन उपमा छाजई॥ इत्यादि अतुलविभूति

मंडित सोहिये त्रिभुवनधनी ।सो जयौ०॥९॥ यौं असम महिमासिंधु साहब, शक्र पार न पावहीं । तजि हासमय तुम दास 'भूधर' भगतिवश यश गावहीं ॥ अब होउ भवभव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौं । कर जोरि यह बरदान माँगौं, मोखपद यावत लहौं ॥ १० ॥

न्यायालंकार पं० मक्खनलालजी कृत

४९। श्रीमहावीर प्रार्थना।

हे सर्वज्ञ वीर जिनदेवा, चरन शरन हम आते हैं।
ज्ञान अनंतगुणाकर तुमको चरनन सीस नवाते हैं॥ १ ॥
कथन तुम्हारा सबको प्यारा, कहीं विरोध नहीं पाता।
अनुभवबोध अधिक जिनके है, उन पुरुषोंके मन भाता ॥२॥
दर्शनज्ञानचरित्रस्वरूपी, मारग तुमने दिखलाया।
यही मार्ग हितकारी सबका, पूर्व ऋषीगणने गाया ॥ ३ ॥
रत्नत्रयको भूल न जावें, इसीलिये उपनयन करें।
ब्रह्मचर्यको दृढतम पालें, सप्तव्यसनका त्याग करें ॥ ४ ॥
नीतिमार्गपर नित्य चलें हम, योग्याहार विहार करें।
पालें योग्याचार सदा हम, वर्णाचार विचार करें ॥ ५ ॥
धर्ममार्ग अरु वैधमार्गसे, देशोद्धार विचार करें।
आर्षवचन हम दृढतम पालें, सत्सिद्धांतप्रचार करें ॥ ६ ॥
श्रीजिनधर्म बढै दिनदूनो, पंच आप्तनुति नित्य करें।
सत्संगतिको पाकर स्वामिन्, कर्मकलंक समूल हरें ॥ ७ ॥
फलें भाव ये सभी हमारे, यही निवेदन करते हैं।
'लाल' बालमिल मालवीरके, चरनोंमें हम धरते हैं ॥ ८ ॥

५० । शारदाष्टक ।

नमो केवल नमोकेवल रूप भगवान । मुख ओंकार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै । रचि आगम उपदिसै भविक जीव संशय निवारैं ॥ सो सत्यारथ शारदा, तासु भक्ति उर आन । छंद भुजंगप्रयातमैं, अष्टक कहौं बखान ॥ १ ॥

जिनादेश जाता जिनेंद्रा विख्याता । विशुद्धप्रबुद्धा नमों लोकमाता ॥ दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी । नमों देवि वागीश्वरी जैनवानी ॥ २ ॥ सुधाधर्म संसाधनी धर्मशाला । क्षुधातापनिर्नाशिनी मेघमाला ॥ महामोह विध्वंसनी मोक्षदानी । नमों देवि० ॥३॥ अखै वृक्षशाखा व्यतीताभिलाषा । कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा ॥ चिदानंदभूपालकी राजधानी ।नमो०॥४॥ समाधान रूपा अनूपा अछुद्रा । अनेकांतधा स्यादवादांक मुद्रा ॥ त्रिधा सप्तधा द्वादशांगी बखानी । नमो देवि० ॥५॥ अकोपा अमाना अदंभा अलोभा । श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञान शोभा ॥ महापावनी भावना भव्यमानी ।नमोदेवि०॥६॥ अतीता अजीता सदा निर्विकारा । विषै वाटिका खंडिनी खड्ग धारा ॥ पुरापापविक्षेपकर्त्री कृपाणी ॥ नमोदेवि०॥७॥ अगाधा अबाधा निरंभ्रा निराशा । अनंता अनादीश्वरी कर्म नाशा ॥ निशंका निरंका चिदंका भवानी ॥ नमोदेवि० ॥८॥ अशोका मुदेका विवेका विधानी । जगज्जंतु मित्रा विचित्रावसानी ॥ समस्ता विलोका निरस्ता निदानी ॥ नमोदेवि० ॥९॥

वास्तुछंद ।

जैनवानी जैनवानी सुनहिं जे जीव ।

जे आगमरुचि धार, जे प्रतीत मनमाहिं आनहिं।
अब धारहि जे पुरुष समर्थ पद अर्थ जानहिं॥
जे हितहेतु बनारसी, देहिं धर्म उपदेश।
ते सब पावहिं परम सुख, तज संसार कलेश॥ १०॥

इति शारदाष्टक।

५१। शारदास्तवन प्रभाती।

केवलिकन्ये वाङ्मय गंगे, जगदंबे अघनाश हमारे।
सत्य स्वरूपे मंगलरूपे, मनमंदिरमें तिष्ठ हमारे॥टेक॥
जंबू स्वामी गौतम गणधर, हुये सुधर्मा पुत्र तुम्हारे।
जगतें स्वयं पार ह्वै करके, दे उपदेश बहुत जन तारे॥ १॥
कुंद कुंद अकलंक देव अरु, विद्यानंदिआदिमुनि सारे।
तवकुलकुमुद चंद्रमा ये शुभ, शिक्षामृत दे स्वर्ग सिधारे॥२॥
तूने उत्तम तत्त्वप्रकाशे, जगके भ्रम सब क्षयकर डारे।
तेरी ज्योति निरख लज्जावश, रविशशि छिपते नित्य विचारे॥
भव भय पीडित व्यथितचित्त जन, जब जो आये सरन तिहारे।
छिनभरमें उनके तब तुमने, करुणाकरि संकट सब टारे॥४॥
जबतक विषय कषाय नशै नहिं, कर्मशत्रु नहिं जाय निवारे।
तबतक 'ज्ञानानंद' रहै नित, सब जीवनतैं समता धारे॥५॥

५२। शास्त्र-भक्ति।

(शास्त्रजी वाचनेके बाद बोलनेकी)

शिखरिणी छंद।

अकेला ही हूं मैं, करम सब आये सिमटिकैं। लिया है मैं तेरा शरण अब माता सटकिकैं॥ भ्रमावत है मोकों, करम दुख

देता जनमका । करों भक्तीतेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥१॥ दुखी हूआ भारी, भ्रमत फिरता हूँ जगतमें । सहा जाता नाहीं अकल घबरानी भ्रमनमें । करों क्या मा मोरी, चलत वश नाहीं मिटनका । करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥२॥ सुनो माता मोरी, अरज करता हूं दरदमें । दुखी जानो मोंको, डरप कर आयो शरनमें । कृपा ऐसी कीजे, दरद मिटजावै मरनका । करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥ ३ ॥ पिलावै जो मोकों, सुबुधि कर प्याला अमृतका । मिटावै जो मेरा सरब दुख सारा फिरनका । परों पावां तेरे, हरो दुख सारा फिकरका । करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥४॥

सवैया ।

मिथ्या-तम नाशवेको ज्ञानके प्रकाशवेको, आपा-परभासवेको भानुसी बखानी है । छहों द्रव्यजानवेको बंधविधिभानवेको स्वपरपिछानवेको परम प्रमानी है ॥ ५ ॥ अनुभौ बतायबेकी जीवके जतायवेको, काहू न सतायवेको भव्य उर आनी है जहांतहां तारवेको पारके उतारवेको, सुख विसतारवेको येही जिनवानी है ॥ ६ ॥

दोहा

यह जिनवानीकी थुती, अल्प बुद्धि परवान ।
पनालाल विनती करै, दे माता मोहि ज्ञान ॥ ७ ॥
हे जिनवानी भारती, तोहि जपों दिन रैन ।
जो तेरा शरना गहै, सो पावै सुख चैन ॥ ८ ॥
जा वानीके ज्ञानतें, सूझै लोकालोक ।
सो वानी मस्तक चढो, सदा देत हों धोक ॥ ९ ॥

५३ । अथ बडी साधुवंदना ।

दोहा ।

श्रीं जिनभाषित भारती, सुमरि आन मुखपाठ ।
कहूं मुलगुणसाधुके, परमित विंशति आठ ॥१॥
पंचमहाव्रत आदरन, समिति पंच परकार ।
प्रबल पंचइंद्रिय,विजय, षट अवशिक आचार ॥२॥
भूमिशयन मंजनतजन, वसन त्याग कचलोंच ।
एकबार लघुअसन थिति-असन दंतवनमोच ॥ ३ ॥

चौपाई ।

थावर जंतु पंचपरकार । चार भेद जंगमतनधार ॥
जो सबजीवनको रछपाल । सो सुसाधु वंदहुं तिरकाल ॥४॥
संतत सत्यवचन मुख कहै । अथवा मौनविरत धर रहै ॥
मृषावाद नहिबोलै रती । सो जिनमारग सांचा जती ॥ ५ ॥
कौडी आदि रतनपरजंत । घटित अघट धनभेद अनंत ॥
दत्त अदत्त न फरसै जोइ । तारण तरण मुनीश्वर सोय ॥ ६ ॥
पशु पंछी नर दानव देव । इत्यादिक रमणी-रति-सेव ॥
तजहिं निरंतर मदनविकार । सो मुनिनमहुं जगतहितकार ॥
द्विविधपरिग्रह दशविध जान । संखअसंख अनंत बखान ॥
सकल संगतज होय निरास । सो मुनि लहै मोखपद बास ॥
अधोदृष्टि मारग अनुसरै । प्रासुक भूमि निरखि पग धरै ॥
सदय हृदय साधै शिवपंथ । सो तपीश निरभय निरग्रंथ ॥९॥
निरभिमान निरवद्य अदीन । कोमल मधुर दोष दुखहीन ॥
ऐसे सुवचन कहै स्वभाव । सो रिषिराज नमहुं धरि भाव ॥१०॥

उत्तम कुल श्रावक संचार । तास गेह प्रासुक आहार ॥
भुंजै दोष छियालिस टाल । सो मुनि वंदौं सुरति सँभाल ॥
उचित वस्तु निजहित परहेत । तथा धरम उपकरण अचेत ॥
निरख जतनसों गहै जु कोय । सो मुनि नमहुँ जोर कर दोय ॥
रोग विकृति पूरब आदान । नव दुवार मल अंग उठान ॥
डारै प्रासुक भूमि निहार । सो मुनि नमहुँ भगति उरधार ॥
कोमल कर्कस हरुव सँभार । रूक्षसचिक्कण तपत तुसार ॥
इनको परसन सुखदुख लहैं । सोमुनिराज जिनेश्वर कहैं ॥
आमलकटुककषायल मिष्ट । तिक्त क्षार रस इष्ट अनिष्ट ॥
इनहिं स्वाद रति अरति न वेव । सो ऋषिराज नमहिं तिहँ देव ॥
शुभ सुगंध नानापरकार । दुखदायक दुर्गंध अपार ॥
नासा विषय गनहिं सम तूल । सो मुनि जिन सासनतरुमूल ॥
श्याम हरित सित लोहित पीत । वर्ण विवर्ण मनोहर भीत ॥
ए निरखै तज राग विरोध । सो मुनि करै कर्ममल शोध ॥१७॥
शब्द कुशब्द हि समरससाद । श्रवणसुनत नहिं हरषं विषाद ॥
थुति निंदा दोऊ सम सुणै । सो मुनिराज परम पद मुणै ॥१८॥
सामाइक साधै तिहुं काल । मुकति पंथकी करै सँभाल ॥
शत्रु मित्र दोऊ सम गिणै । सो मुनिराज करमरिपु हणै ॥१९॥
अरहत सिद्ध सूरि उवझाय । साधु पंच पद परम सहाय ॥
इनके चरणनिमैं मनलाय । तिस मुनिवरके वंदों पाय ॥२०॥
पावनपंच परमपद इष्ट । जगतमाहिं जानै उतकिष्ट ॥
ठानै गुण थुति बारंबार । सो मुनिराज लहै भवपार ॥ २१ ॥
क्रियागुण धारै चित्त । दोष विलोकि करै प्राछित्त ॥

नित प्रतिक्रमण क्रिया रसलीन। सो सुसाधु संजम परवीन ॥
श्रीजिनवचनरचन विस्तार। द्वादशांग परमागम सार ॥
निज मति मान करै सज्झाउ[1]। सो मुनिवर बंदहु धर भाव ॥
काउसग्ग मुद्रा धरि नित्त। शुद्ध स्वरूप विचारै चित्त ॥
त्यागै त्रिविध जोग ममकार। सो मुनिराज नमों निरधार।२४।
प्राशुक शिला उचित भू खेत। अचलअंग समभाव समेत ॥
पच्छिमरैन अलप निद्राल। सो योगीश्वर बंचै काल ॥२५॥
धर्म ध्यानयुत परम विचित्र। अंतर बाहिज सहज पवित्र ॥
न्हानविलेपन तजै त्रिकाल। वंदों सो मुनि दीन दयाल ॥२६॥
लोकलाज विगलित भय हीन। विषयवासना रहित अदीन ॥
नगन दिगंबर मुद्राधार। सोमुनिराज जगतसुखकार ॥२७॥
सघन केश गर्भित मल कीच। त्रस असंख्यउतपति तसुवीच ॥
कच लुंचै यह कारण जान। सो मुनि नमहुं जोर जुग पान ॥
छुधावेदनी उपमशमहेत। रस अनरस सम भाव समेत ॥
एकबार लघु भोजन करै। सो मुनिमुकतिपंथ पगधरै ॥२९॥
देहसहारो साधन मोख। तबलों उचित काय बलपोख ॥
यह विचार थितिलेहिं अहार। सोमुनि परम धरम धनधार ॥
जहँजहँ नवदुवार मलपात। तहँ तहँ अमिति जीव उतपात ॥
यह लख तजहिं दंतवनकाज। सो शिवपथसाधक ऋषिराज ॥
दोहा—ये अट्ठाविस मूलगुण, जो पालहिं निरदोख।
सो मुनि कहत बनारसी, पावै अविचल मोख ॥३२॥

इति साधुवंदना।

---

१ स्वाध्याय।

५४ । अथ भूधरकृत गुरुस्तुति ।

बंदौं दिगंबर गुरुचरन जग,-तरन तारन जान । जे भरमभारी रोगको, हैं राजवैद्य महान ॥ जिनके अनुग्रह बिनकभी, नहिं कटै कर्मजँजीर । ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥ १ ॥ यह तन अपावन अथिर है, संसार सकल असार । ये भोग विषपकवानसे, इहभांति शोच विचार । तपविरचि श्रीमुनि वनवसे, सब छाड़ि परिगह भीर । ते साधु मेरे मन बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥ २ ॥ जे काच कंचन सम गिनहिं, अरि मित्र एक सरूप । निंदा बड़ाई सारिखी, वनखंड शहर अनूप ॥ सुखदुःख जीवनमरनमें, नहिं खुशी नहिं दिलगीर । ते साधु मेरे उरबसो, मम हरहु पातक पीर ॥ ३ ॥ जे बाह्य परवत वनबसैं, गिरि गुफा महल मनोग । सिल सेज, समतासहचरी, शशिकिरनदीपकजोग । मृगमित्र, भोजन तपमई, विज्ञान निरमल नीर । ते साधुमेरे मन बसो, मम हरहु पातक पीर ॥ ४ ॥ सूखहिं सरोवर जलभरे, सूखहिं तरंगिनि-तोंय । बाटहि बटोही ना चलैं, जहँ घाम गरमी होय । तिहँकालमुनिवरतपतपहिं, गिरिशिखरठाड़े धीर । ते साधु मेरे उर बसो, मम हरहु पातक पीर ॥५॥ घनघोर गरजहिं घनघटा, जलपरहिं पावसकाल । चहुंओर चमकइ बीजुरी, अति चलैसीरी ब्याल ॥ तरुहेठ तिष्ठहिं तब जती, एकांत अचलशरीर । ते साधु मेरे मन बसो, मम हरहु पातक पीर ॥६॥ जब शीतमास तुषारसों, दाहै सकल बन-

१ । नदी, २ । रास्ता, ३ । रास्तगीर ।

राय। जब जमैं पानी पोखरां, थरहरै सबकी काय॥ तब नगन निवसैं चौहटे, अथवा नदीके तीर। ते साधु मेरे उर बसो, मम हरहु पातक पीर॥७॥ करजोर 'भूधर' बीनवै, कबमिहिं वे मुनिराज। यह आश मनकी कब फलै, मम सरहिं सगरे काज। संसार विषम विदेसमें, जे विना कारण वीर। ते साधु मेरे उर बसो, मम हरहु पातक पीर॥ ८॥

इति भूधरकृत गुरुस्तुति॥

५५। अथ भूधरकृत दूसरी गुरुस्तुति।

राग भरतरी—दोहा।

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जिहाज। आप तिरहिं पर तारहीं, ऐसे श्रीऋषिराज॥ तेगुरु० १॥ मोहमहा रिपु जानिकैं, छाड्यो सब घरवार। होय दिगंबर वन बसे, आतमशुद्ध विचार॥ तेगुरु० २॥ रोग उरग-विलवपु गिण्यो, भोग भुजंग समान। कदलीतरुसंसार है, त्याग्यो सब यह जान॥ ते गुरु० ३॥ रतत्रयनिधिउरधरै, अरु निरग्रंथ त्रिकाल। मार्‍यो कामखबीसको, स्वामी परम दयाल॥ ते गुरु०॥ पंच महाब्रत आदरैं, पांचों सुमति समेत। तीन गुपति पालैं सदा, अजरअमरपदहेत॥ ते गुरु० ५॥ धर्मधरैं दशलाछनी, भावैं भावना सार। सहैं परीषह बीस द्वै, चारित-रतन-भँडार॥ ते गुरु०॥ जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर नीर। शैल-शिखर मुनि तप तपैं, दाझैं नगन शरीर॥ ते गुरु० ७॥ पावस रैन डरावनी, बरसै जलधरधार। तरुतल निवसैं तब यती,

१। तालाओंमें।

बाजै झंझा व्यार ॥ ते गुरु० ८ ॥ शीत पडै कपि-मद गलै, दाहै सब वनराय। तालतरंगनिके तटैं, ठाडे ध्यान लगाय ॥ ते गुरु० ९ ॥ इहिंविधि दुद्धर तप तपैं, तीनोंकालमझार। लागे सहज सरूपमैं, तनसों ममत निवार ॥ ते गुरु० ॥ पूरव भोग न चिंतवैं, आगम बांछैं नाहिं। चहुंगतिके दुखसों डरैं, सुरति लगी शिव माहिं ॥ ते गुरु० ११ ॥ रंगमहलमें पौढते, कोमल सेज विछाय। ते पच्छिम निशि भूमिमें सोवें संवरि काय ॥ते गुरु० १२॥ गजचढि चलते गरबसों, सेना सजि चतुरंग। निरखि निरखि पग वे धरैं, पालैं करुणा अंग ॥ ते गुरु० १३॥ वे गुरु चरण जहां धरैं, जगमें तीरथ जेह। सो रज मम मस्तक चढो, भूधर मांगै एह ॥ ते गुरु० १४ ॥

इति भूधरकृत दूसरी गुरुस्तुति ॥ ११ ॥

५६। अथ गुर्वावली लिख्यते।

शैर।

जैवंत दयावंत सुगुरु देव हमारे। संसारविषमखारसों जिनभक्त उधारे ॥ टेक ॥ जिनवीरके पीछें यहां निर्वानके थानी। वासठ वरषमें तीन भये केवलज्ञानी। फिर सौवरसमें पांच श्रुतकेवली भये। सर्वांग द्वादशांगके उमंग रस लये ॥ ।जैवंत० १॥ तिस वाद वर्ष एकशतक और तिरासी। इसमें हुये दशपूर्व ग्यारै अंगके भाषी। ग्यारै महामुनीश ज्ञानदानके । गुरुदेव सोई देहिंगे भविवृंदको साता। जैवंत० २ ॥ तिसवाद वर्ष दोय शतक बीसके मांही। मुनि पांच ग्यारैअंगके पाठी हुये यांहीं ॥ तिसवाद वरष एकसौ अठारमें जानी।

मुनि चार हुये एक आचारांगके ज्ञानी। जैवंत० ३॥ तिसवाद हुये हैं जु सुगुरु पूर्वके धारक। करुणानिधान भक्तको भव-सिंधु उधारक॥ करकंजतैं गुरु मेरे उपर छांह कीजिये। दुख द्वंदको निकंदके आनंद दीजिये॥ जैवंत० ४॥ जिनवीरके पीछेसों वरष छहसौं तिरासी। तबतक रहे इक अंगके गुरुदेव अभ्यासी॥ तिसवादकोई फिर न हुये अंगके धारी। पर होते भये महा सुविद्वान उदारी॥ जैवंत० ५॥ जिनसों रहा इस कालमें जिनधर्मका शाका। रोपा है सात भंगका अभंग पताका॥ गुरुदेव नयंधरको आदि दे वडे नामी। निर ग्रंथ जैनपंथके गुरुदेव जो स्वामी॥ जैवंत० ६॥ भाषों कहां लों नाम वडी वार लगैगा। परनाम करों जिस्मे बेडा पार लगैगा॥ जिसमेंसे कछुइक नाम सूत्रकारके कहों। जिन नामके प्रभावसे परभावकों दहों॥ जैवंत० ७॥ तत्वार्थसूत्र नामि उमास्वामी किया है। गुरुदेवने संक्षेपसे क्या काम किया है। जिसमें अपार अर्थने विश्राम किया है। बुधवृंद जिसे ओरसे परनाम किया है॥ जैवंत० ८॥ वह सूत्र है इस कालमें जिनपंथकी पूंजी। सम्यक्त्व ज्ञानभाव है जिस सुत्रकी कूंजी॥ लडते हैं उसी सूत्रसों परवादके मूंजी। फिर हारके हट जाते हैं इक पक्षके लूंजी॥ जैवंत० ९॥ स्वामी समंतभद्र महाभाष्य रचा है। सर्वंग सात भंगका उमंग मचा है॥ परवादियोंका सर्व गर्व जिस्से पचा है। निर्वान संदकका सोई सोपान जचा है॥ जैवंत० १०॥ अकलंकदेव राजवारतीक बनाया। परमान नयनिच्छेपसों सब वस्तु बताया। श्लोक वारतीक

विद्यानंदजी मंडा। गुरुदेवने जडमूलसों पाखंडको खंडा ॥जैं०॥ गुरु पूज्यपादजी हुये मरजादके धोरी। सर्वार्थसिद्धि सूत्रकी टीका जिन्हों जोरी ॥ जिसके लखेसों फिर न रहे चित्तमें भरम सबजीवको भाषै है सुपरभावका मरम ॥ जैवंत० १२ ॥ धरसेंन गुरूजी हरो भवि वृंदकी व्यथा। अग्रायणीयपूर्वमें कुछ ज्ञान जिन्हे था ॥ तिनके हुये दो शिष्य पुष्पदंत भुतबली धवलादिकोंका सूत्र किया जिस्से मग चली ॥जैवंत० १३॥ गुरु औरने उस सूत्रका सब अर्थ लहा है। तिन धवल महाधवल जयसुधवल कहा है ॥ गुरु नेमिचंद्रजी हुए धवलादिके पाठी। सिद्धांतके चक्रीशकी पदवी जिन्हों गांठी ॥ जैवंत०॥ तिन तीनोंहीं सिद्धान्तके अनुसारसों प्यारे। गोमट्टसार आदि सुसिद्धांत उचारे ॥ यह पहिले सुसिद्धांतका विरतंत कहा है। अब और सुनों भावसों जो भेदमहा है ॥जैवंत० १५ ॥ गुण धर मुनीशने पढा था तीजा पराभृत। ज्ञानप्रवाद पूर्वमें जो भेद है आश्रित। गुरु हस्तिनागजीने सोई जिनसों लहा है। फिर तिनसों यतीनायकने मूल गहा है। जैवंत० १६ ॥ तिन चूर्णिका स्वरूप तिस्से सूत्र बनाया। परमान छै हजार यों सिद्धांतमें गाया ॥ तिसका किया उद्धरण समुद्धरण जु टीका। बारह हजारके प्रमान ज्ञानकी ठीका ॥जैवंत० १७॥ तिसहीसे रचा कुंदकुंदजीने सुशासन। जो आत्मीक पर्म धर्मका है प्रकाशन ॥ पंचास्तिकाय समयसार सारप्रवचन। इत्यादि सुसिद्धांत स्यादवादका रचन ॥ जैवंत० १८ ॥ सम्यक्त्वज्ञान दर्श सुचारित्र अनूपा ॥ गुरुदेव अमीइंदुने तिनकी करी टीका ॥

झरता है निजानंद अमीवृन्द सरीका ॥ जैवंत० १९ ॥ रच-नानुवेदभेदके निवेदके करता । गुरुदेव जे भये हैं पापतापके हरता ॥ श्रीबट्टकेर देवजी वसुनंदजी चक्री । निरग्रंथ ग्रंथ पंथके निरग्रंथके शक्री ॥जैवंत० २०॥ योगीन्द्रदेवने रचा परमात्मा प्रकाश । शुभचंद्रने किया है ज्ञान आरणव विकाश ॥ की पद्म-नंदजीने पद्मनंदिपच्चीसी । शिवकोटिने आराधना सुसार रचीसी ॥ जैवंत० २१ ॥ दोसंध तीनसंध चारसंध पांचसंध । षटसंध सातसंधलों गुरु रचा है प्रबंध । गुरु देवनंदिने किया जैनेंद्रव्याकरन । जिस्से हुआ परवादियोंके मानका हरन ॥जै०॥ गुरुदेवने रची है रुचिर जैनसंहिता । वरनाश्रमादिकी क्रिया कहें हैं संहिता । वसुनंदि वीरनंदि यशोनंदि संहिता । इत्यादि बनी हैं दशों प्रकार संहिता ॥ जैवंत० २३ ॥ परमेयकमल मारतंडके हुये कर्ता । प्रभेन्दु माणिक्यनंदि नयप्रमाणके भर्ता ॥ जैवंत सिद्धसेन सुगुरु देव दिवाकर । जै वादिसिंह देवसिंह जैति यशोधर ॥जैवंत० २४॥ श्रीदत्त काणभिक्षु और पात्र केशरी । श्रीवज्रसूर महासेन श्रीप्रभाकरी ॥ शिरीजटाचार गुरु वीरसेन हैं । जैसेन शिरीपाल मुझे कामधेन हैं ॥ जै० ॥ इन एक एक गुरुने जो ग्रंथ बनाया । कहि कौन सके नाम कोइ पार ना पाया ॥ जिनसेन गुरूने महापुराण रचा है । मरजाद क्रियाकांडका सब भेद खचा है ॥ जैवंत० २६ ॥ गुणभद्र गुरूने रचा उत्तर पुरानको । सो देव गुरुदेवजी कल्यान थानको ॥ रविसेन गुरूजीने रचा रामका पुरान । जो मोहतिमर भाननेको भानुके समान ॥ जैवंत० २७ ॥

पुन्नाटगणविषै हुये जिनसेन दूसरे। हरिवंशको बनाके दास आसको भरे॥ इत्यादि जे वसुवीस सुगुण मूलके धारी। निर्ग्रंथ हुये हैं गुरू जिनग्रंथके कारी॥जैवंत०२८॥ वंदौं तिन्हें मुनि जे हुये कवि काव्य करैया। वंदामि गमक साधु जो टीकाके धरैया॥ वादी नमों मुनिवादमें परवाद हरैया। गुरु बागमीकको नमो उपदेश करैया॥जैवंत० २९॥ ये नाम सु गुरु देवका कल्याण करे है। भवि वृंदका ततकालही दुख द्वंद हरे है॥ धनधान्य ऋद्धि सिद्धि नवों निद्धि भरे हैं। आनंद कंद देहि सबी विघ्न टरै हैं॥जैवंत० ३०॥ इह कंठमें धारै जो सुगुरु नामकी माला। परतीतसों उरप्रीतिसों ध्यावै जु त्रिकाला। इह लोकका सुख भोग सो सुर लोकमें जावै। नरलोकमें फिर आयके निरवानको पावै॥ ३१॥ जैवंत दयावंत सुगुरु देव हमारे। संसार विषम खारसों जिन भक्त उधारे॥ इति०॥

५७। मंगलाष्टक।

कवित्त (३१ मात्रा)

संघसहित श्रीकुंदकुंदगुरु, वंदनहेत गये गिरनार। वाद पर्‌यो तहँ संशयमतिसों, साक्षी वदी अंबिकाकार[1]॥ 'सत्य पंथ निरग्रंथ दिगंबर', कही सुरी तहँ प्रगट पुकार। सो गुरु-देव वसौ उर मेरे, विघन हरण मंगलकरतार॥१॥ स्वामि समंतभद्र मुनिवरसों, शिवकोटी हठ कियो अपार। वंदन करो शंभुपिंडीको, तब गुरु रच्यौ स्वयंभू भार॥ वंदन करत

१। अंबिकादेवीकी मूर्तिको।

पिंडिका फाटी, प्रगट भये जिनचंद्र उदार। सो०॥ २॥ श्री अकलंकदेव मुनिवरसौं, वाद रच्यौ जहँ बौद्ध विचार। तारा देवी घटमें थापी, पटके ओट करत उच्चार॥ जीत्यो स्यादवाद-बल मुनिवर, बौद्धबोध तारामदटार। सो० ॥ ३॥ श्रीमत विद्यानंदि जबै, श्रीदेवागमथुति सुनी सुधार। अर्थहेत पहुँच्यौ जिनमंदिर, मिल्यो अर्थ तहँ सुखदातार॥ तब व्रत परमदिगंबरको धर, परमतको कीनो परिहार॥ सो०॥ ४॥ श्रीमत मानतुंग मुनिवरपर, भूप कोप जब कियौ गँवार। बंद कियौ तालोंमें तबही, भक्तामर गुरु रच्यौ उदार॥ चक्रेश्वरी प्रगट तब ह्वैके, बंधन काट कियौ जयकार।सो०॥ ५॥ श्रीमत वादिराज मुनिवरसौं, कह्यो कुष्ठि भूपति जिहँबार। श्रावक सेठ कह्यो तिह अवसर, मेरे गुरु कंचनतनधार॥ तबही एकीभाव रच्यौ गुरु, तन सुवरणदुति भयौ अपार। सो०॥ ६॥ श्रीमत कुमुदचंद्र मुनिवरसों, वाद पर्‌यो जहँ सभामझार। तब ही श्रीकल्यानधामथुति, श्रीगुरु रचना रची अपार॥ तब प्रतिमा श्रीपार्श्वनाथकी, प्रगट भई त्रिभुवन जयकार।सो०।७। श्रीमत अभयचंद्र गुरुसों जब, दिल्लीपति इमि कही पुकार। कै तुम मोहि दिखावहु अतिशय, कै पकरौ मेरो मत सार॥ तब गुरु प्रगट अलौकिक अतिशय, तुरत हर्‌यो ताको मद भार। सो गुरुदेव वसौ उर मेरे, विघन हरण मंगल करतार॥८॥

दोहा।

विघन हरण मंगल करण, वांछित फलदातार।
'वृंदावन' अष्टक रच्यो, करौ कंठ सुखकार॥

५८। आचार्यवर्य रविषेण स्तुति।

रविसे रविसेन अचारज हैं, भविवारिजके विकसावन-हारे। जिन पद्मपुराण बखान कियौ, भवसागरतैं जगजंतु उधारे॥ सियरामकथा सु जथारज भाखि, मिथ्यातसमूह समस्त विदारे। भवि 'वृंद' विथा अब क्यों न हरौ, गुरुदेव तुम्हीं मम प्राण अधारे॥ १॥

५९। आचार्यवर्य जिनसेन स्तुति।

भगवज्जिनसेन कविंद नमों, जिन आदि जिनिंदके छंद सुधारे। प्रथमानुसुवेद निवेदनमें जिनको परधान प्रमान उचारे॥ जगमें सुदमंगल भूरि भरे, दुख दूर करे भवसागर तारे। भव 'वृंद' विथा अब क्यों न हरो गुरुदेव तुम्हीं मम प्रान अधारे॥ २॥

६०। आचार्य श्रीशांतिसागरमहाराजकी स्तुति।

वंदू दिगंबर शांतिसागर सूरिवर मुनिराज। शांतिप्रदायक सुख विधायक चरन जिनके आज॥ तिन चरन सरन विना न कटिहैं अष्टकर्मजंजीर। वे शांतिसागर मन बसहु मम हरहु पातकपीर॥ १॥ जिन तन अपावन अथिर लखि, संसार सिन्धु अपार॥ अरु भोग विषपकवान सम लखि विरक्ती चित धार॥ तपधरनकी इच्छासु चितधर, तजी परी जन भीर॥ वे शांति० २॥ इम विरचि गृहतें ग्राम तजि निज गये उत्तुर ग्राम। तहँ स्वामि श्रीदेवेन्द्रकीर्ति, रहहिं चारितधाम। निर्ग्रंथ मुनिकी कठिन दीक्षा, चही तिनपदतीर

॥ वे शांति० ३ ॥ यह वचन सुनि तब स्वामिने निज, वचन उचरे सार । मुनिकी जु दीक्षा कठिन है, तू क्षुल्लकी पद धार ॥ तब भये क्षुल्लक ऐलकीव्रत, चरत हैं नित धीर । वे शांति०॥ इम धार क्षुल्लकपद त्रिवत्सर, विहरि कर निज देश । बोधें अनेकन भव्यजन करके जु वृष-उपदेश ॥ पुनि गये पुरकुंभोज ढिग-बाहूबली गिरि तीर । वे शांति० ॥५॥ तहँ मुनि विराजहिं आदिसागर, तिन चरन ढिंग सार । धारे जु ऐलकके सु व्रत, पुनि वंदि श्रीगिरनार ॥ आये तहाँतैं गिरि जु कुंडल, वंदि श्रीजिनवीर । सो शांति०॥६॥ फिर ग्राम नसलापुर गये तहँ कियो चातुर मास । तहँतैं विहरि बाबानगरके वंदिकर जिन पास ॥ फिर गए ऐनापुर तहांपर, मुनि विराजे धीर । सो शांति० ॥७॥ तहँतें चले मुनि साथ ही, यरनाल है इक ग्राम । तहँ पंचकल्याणक महोत्सव, हो रहा सुखधाम ॥ तहँ पायसागर भी विराजे, स्वामि गुणगंभीर । सो शांति० ८॥ तव आपने मुनिकी जु दीक्षा, ग्रहणके सु विचार । कीनें प्रगट मुनिचरनाढिंग, तिन कह्यो कठिन अपार ॥ तौ भी जु मुनिव्रत गहे रुचिसों, जान सुचल शरीर । सो शांति० ९ ॥ तुम सातगोड़ा नाम धारी, शांतिसागर सोय । कीनी तपस्या घोर परिसह, सहनकर शुचि होय ॥ फिर बिहरि तहँतैं कोगनोली ग्राम आये धीर । सो शांति० ॥१०॥ कियो कोगनोलीं ग्राममें ही चतुरमासा सार । तहंपर सही अति घोर परिसह तनममत परिहार ॥ पुनि बिहरि कर समडोलि आये, फिर नसलपुरतीर । सो शांतिं० ॥११॥ इम तप करत परिसह

सहत, उपदेश दे सविवेक। कोन्नूरपुर आये जहां गिरिगुफा हैं जु अनेक॥ तहँ चतुरमासा किया जबही, भविनकी भइ भीर। सो शांति०॥१२॥ तिन चरनढिंग पा शांति भविजन, तजा गृहका भार। प्रतिमा धरी जु अनेक भवि गुरुवचन चित् मैं धार॥ जब ध्यान धर तिष्ठे गुफामें, फणि चढ्यो जु शरीर। सो शांति०॥ १३॥ फणि देखि तुम तन पर भविकजन कियो सोच विचार। किंहविध जु यह उपसर्ग टरि है, किये बहु उपचार॥ तौ भी न फणिका मन भरा तजता, न तुमतन तीर। सो शांति० ॥१४॥ जब ध्यान पूरनका समय आया, तबहिं तज दर्प। स्वयमेव मनमें धार मुनितन, तज गया वह सर्प॥ यह लखि महातम भविकजन, सब शांति पा चित धीर। सो शांति० १५॥ पुनिजाय नांदणि ग्राममें, शुभ चतुर मासा थाप। मुनि वीरसागर चंद्रसागर, आदि जुत श्री आप॥ तहं भव्यजन आये बहुत व्रत, धरे तुमपद तीर। सो शांति० ॥१६॥ पुनिकर विहार प्रचार जिनवृष, आठ मास मझार। कुंभोजढिंग गिरि, बाहुबलिपर, चतुरमासा धार॥ चहुंसंघने उपदेश पाकर, निकट की, भवतीर। सो शांति० १७॥ तहँ सेठ घासीलाल पूनमचंद नयकर माथ। सम्मेदगिरिको संघ लेकर, चलहु श्रीमुनिनाथ॥ यह प्रार्थना मुनि संघसह, चाले तहांतें धीर। सो शांति० ॥१८॥ तहंतैं चले चउसंघ सहित जु करत वृष-उपदेश। तुम चरनरजसों किये पावन सबहिं उत्तर देश॥ सम्मेदगिरपर लक्ष भविजन, पाय दर्शन वीर। सो शांति०॥१९॥ फाल्गुन सुदी तृतीया दिवस, चौवीस

चौपन शाल। तुम चरन दर्शन पाय पावन, भयो 'पन्नालाल'। नित मिलो तुम-पद-सेव येही, चाह चितमें धीर। सो शांति-सागर मन बसहु मम, हरहु पातक पीर ॥ २० ॥ इति ॥

—:::—

चौथा अध्याय।

स्तोत्रसंग्रह संस्कृत और भाषा।

भगवज्जिनसेनाचार्यकृतं

६१। श्रीजिनसहस्रनाम स्तोत्रं।

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि। स्वात्मनैव तथोद्भूतवृत्तये ऽचिंत्यवृत्तये ॥ १ ॥ नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमो नमः। विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांवर ॥२॥ कामशत्रुहणं देवमामनन्ति मनीषिणः। त्वामानमत्सुरेण्मौलिभामालाभ्यर्चितक्रमम् ॥ ३ ॥ ध्यानदुर्घणनिर्भिन्नघनघातिमहातरुः। अनन्तभवसंतानजयोप्यासीरनन्तजित् ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यनिर्जयाव्याप्तदुर्दर्पमतिदुर्जयम्। मृत्युराजं विजित्यासीज्जन्ममृत्युञ्जयो भवान् ॥५॥ विधूताशेषसंसारो बन्धुर्नो भव्यबान्धवः। त्रिपुरारिस्त्वमीशोसि जन्ममृत्युजरान्तकृत् ॥ ६ ॥ त्रिकालविजयाशेषतत्त्वभेदात् त्रिधोच्छिदम्। केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोसि त्वमीशिता ॥७॥ त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धासुरमर्दनात्। अर्द्धन्ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोस्युत ॥ ८॥ शिवः शिवपदाध्यासाद् दुरितारिहरो हरः। शंकरः कृतशं लोके संभवस्त्वं भवन्सुखे ॥९॥ वृषभोसि जगज्ज्येष्ठः गुरुर्गुरु।

गुणोदयैः नाभेयो नाभिसंभूतेरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥ १० ॥
त्वमेकःपुरुषस्कंन्धस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने । त्वं त्रिधाबुधसन्मार्गे स्त्रिज्ञस्त्रिज्ञानधारकः ॥११॥ चतुःशरणमांगल्यमूर्तिस्त्वं चतुरः सुधीः। पञ्चब्रह्ममयो देवः पावनस्त्वं पुनीहि माम् ॥ १२ ॥
स्वर्गावतारिणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नमः । जन्माभिषेक-वामाय वामदेव नमोस्तु ते ॥ १३ ॥ सुनिःक्रांताय घोराय परं प्रशममीयुषे। केवलज्ञानसंसिद्धावीशानाय नमोस्तु ते ॥१४॥
पुरुस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्तपदभागिने । नमस्तत्पुरुषावस्थां भावनानर्घ बिभ्रते ॥ १५ ॥ ज्ञानावरणनिर्हास नमस्तेऽनन्त-चक्षुषे। दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदर्शिने ॥ १६ ॥ नमो दर्शनमोहादिक्षायिकामलदृष्टये। नमश्चारित्रमोहघ्ने विरागाय महौजसे ॥ १७ ॥ नमस्तेऽनन्तवीर्याय नमोनंतसुखाय ते नमस्तेऽनंतलोकाय लोकालोकविलोकिने ॥१८॥ नमस्तेऽनंत-दानाय नमस्तेऽनंतलब्धये। नमस्तेऽनंतभोगाय नमोऽनंताय भोगिने ॥ १९ ॥ नमः परमयोगाय नमस्तुभ्यमयोनये । नमः परमपूताय नमस्ते परमर्षये ॥ २० ॥ नमः परमविद्याय नमः परमवच्छिदे। नमः परमतत्त्वाय नमस्ते परमात्मने ॥ २१ ॥
नमः परमरूपाय नमः परमतेजसे। नमः परममार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥ २२ ॥ परमर्द्धिजुषे धाम्ने परमज्योतिषे नमः। नमः पारेतमःप्राप्तधाम्ने ते परमात्मने ॥ २३ ॥ नमः क्षीण-कलंकाय क्षीणबंध नमोस्तु ते । नमस्ते क्षीणमोहाय क्षीण-दोषाय ते नमः ॥ २४ ॥ नमः सुगतये तुभ्यं शोभनागतमी-युषे। नमस्तेऽतीन्द्रियज्ञानसुखायानिन्द्रियात्मने ॥ २५ ॥

कायवंधननिर्मोक्षादकायाय नमोस्तु ते। नमस्तुभ्यमयोगाय योगिनामपि योगिने ॥ २६ ॥ अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायाय ते नमः। नमः परमयोगीन्द्रवंदितांघ्रिद्वयाय ते ॥२७॥ नमः परमविज्ञान नमः परमसंयम। नमः परमदृग्दृष्टपरमार्थाय ते नमः ॥२८॥ नमस्तुभ्यमलेश्याय शुक्ललेश्यांशकस्पृशे। नमो भव्येतरावस्थाव्यतीताय विमोक्षणे ॥ २९ ॥ संज्ञासंज्ञिद्वयावस्थातिरिक्तामलात्मने। नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये ॥ ३० ॥ अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे। व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धे पारमीयुषे ॥३१॥ अजराय नमस्तुभ्यं नमस्तेऽतीतजन्मने। अमृत्यवे नमस्तुभ्यमचलायाक्षरात्मने ॥३२॥ अलमास्तां गुणस्तोत्रमनंन्तास्तावका गुणाः। त्वन्नामस्मृति मात्रेण परमं शं प्रशास्महे ॥ ३३ ॥

इति प्रस्तावना

प्रसिद्धाष्टसहस्रेद्धलक्षणस्त्वं गिरां पतिः। नाम्नामष्टसहस्रेण त्वां स्तुमोऽभीष्टसिद्धये ॥ १ ॥ एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्यापरमया सुधीः। पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पापशान्तये ॥ श्रीमान्स्वयंभूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः। स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥ २ ॥ विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः। विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनीश्वरः ॥ ३ ॥ विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः। विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥ ४ ॥ विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः। विश्वदृक् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥ ५ ॥ जिनो जिष्णुरमेयात्मा जगदीशो जगत्पतिः। अनंतचिदचिंत्यात्मा

भव्यबंधुरबंधनः ॥ ६ ॥ युगादिपुरुषो ब्रह्मा पंचब्रह्ममयः शिवः । परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥ ७ ॥ स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः । मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥ ८ ॥ प्रशांतारिरनंतात्मा योगी योगीश्वरार्चितः । ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मेद्याविद्यतीश्वरः ॥ ९ ॥ शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः । सिद्धः सिद्धांतविद् ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥१०॥ सहिष्णुरच्युतोनंतः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः । प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥ ११ ॥ विभावसुरसंभूष्णुः स्वयंभूष्णुः पुरातनः । परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीमदादिशतम् ॥ १ ॥

(यहां उदकचंदनतंदुल……आदि श्लोक पढ़कर अर्घ चढ़ाना चाहिये)

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः । पूतात्मा परमज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥ १ ॥ श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा विरजाः शुचिः । तीर्थकृत्केवली शान्तः पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥ २ ॥ अनंतदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः । मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥ ३ ॥ निरंजनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिर्निरामयः अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ॥ ४ ॥ अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत् । शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥ ५ ॥ वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः । वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभांको वृषोद्भवः ॥ ६ ॥ हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद्भूतभावनः । प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवांतकः ॥ ७ ॥ हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोद्भवः । स्वयंप्रभुः प्रभूतात्मा

भूतनाथो जगत्प्रभुः। सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः। सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित्सर्वलोकजित् ॥ ९ ॥ सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुक् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः। विश्रुतो विश्वतःपादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ॥ १० ॥ सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात्। भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्यामहेश्वरः ॥ ११ ॥

इति दिव्यादिशतम् ॥ २ ॥ अर्घं।

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः पृष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः। स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठो निष्ठो गरिष्ठगीः ॥ १ ॥ विश्वभृद्विश्वसृट् विश्वेट् विश्वभुग्विश्वनायकः। विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितांतकः ॥२॥ विभवो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन्। विरागो विरतोऽसंगो विविक्तो वीतमत्सरः ॥ ३ ॥ विनेयजनताबंधुर्विलीनाशेषकल्मषः। वियोगो योगविद्विद्वान्विधाता सुविधिः सुधीः ॥ ४ ॥ क्षांतिभाक्पृथिवीमूर्तिःशांतिभाक् सलिलात्मकः। वायुमूर्तिरसंगात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधृक् ॥५॥ सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सुत्रामपूजितः। ऋत्विग्यज्ञपतिर्यज्ञो यज्ञांगममृतं हविः ॥६॥ व्योममूर्त्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः। सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्त्तिर्महाप्रभः ॥७॥ मंत्रविन्मंत्रकृन्मंत्री मंत्रमूर्तिरनंतकः। स्वतंत्रस्तंत्रकृत्स्वांतः कृतांतांतः कृतांतकृत् ॥८॥ कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः। नित्यो मृत्युंजयो मृत्युरमृतात्मामृतोद्भवः ॥ ९ ॥ ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसंभवः। महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेट् महाब्रह्मपदेश्वरः ॥ १० ॥ सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्म-

द्मप्रभुः । प्रशमात्मा प्रशांतात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ॥ ११ ॥

इति स्थविष्ठादिशतम् ॥ ३ ॥ अर्घं ।

महाशोकध्वजोऽशोकः कः स्रष्टा पद्मविष्टरः । पद्मेशः पद्मसंभूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ॥१॥ पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः । स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ॥ २ ॥ गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः । गुणाकरो गुणांभोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः ॥ ३ ॥ गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः । शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥ ४ ॥ अगण्यः पुण्यधीर्गण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः । धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥ ५ ॥ पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः । निर्द्वंद्वो निर्मदः शांतो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥ ६ ॥ निर्निमेषो निराहारो निःक्रियो निरुपप्लवः । निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतांगो निराश्रयः ॥ ७ ॥ विशालो विपुलज्योतिरतुलोचिंत्यवैभवः । सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुवृत्सुनयतत्त्ववित् ॥८॥ एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः । धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतांतकः ॥९॥ पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः । त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥१०॥ कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः । प्रतिष्ठाप्रसवो हेतुर्भुवनैकपितामहः ॥ ११ ॥

इति महाशोकध्वजादिशतम् ॥ ४ ॥ अर्घं ।

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः । निरक्षः पुंडरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः ॥ १ ॥ सिद्धिदः सिद्धसंकल्पः

सिद्धात्मा सिद्धिसाधनः । बुद्धबोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो मह-र्द्धिकः ॥२॥ वेदांगो वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदांवरः । वेदवेद्यः स्वयंवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥ ३ ॥ अनादिनिधनो व्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः । युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥४॥ अतींद्रोऽतींद्रियो धींद्रो महेंद्रोऽतींद्रियार्थदृक् । अनिंद्रियोऽहमिंद्रार्च्यो महेंद्रमहितो महान् ॥ ५ ॥ उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भवतारकः । अग्राह्यो गहनं गुह्यं परार्ध्यं परमेश्वरः ॥६॥ अनंतर्द्धिरमेयर्द्धिरचिंत्यर्द्धिः समग्रधीः । प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्र्यः प्रत्यग्रोग्र्योग्रिमोग्रजः ॥ ७ ॥ महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः । महायशो महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥ ८ ॥ महाधैर्यो महावीर्यो महासंपन्महाबलः । महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युतिः ॥ ९ ॥ महामतिर्महानीतिर्महा क्षांतिर्महोदयः । महाप्राज्ञो महाभागो महानंदो महाकविः ॥ १० ॥ महामहामहाकीर्तिर्महाकांतिर्महावपुः । महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥ ११ ॥ महामहपतिः प्राप्तमहाकल्याणपंचकः । महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीवृक्षादिशतम् ॥ ५ ॥ अर्घ ।

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादमः । महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥ १ ॥ महाव्रतपतिर्मह्यो महाकांतिधरोऽधिपः । महामैत्रीमयोऽमेयो महोपायो महोदयः ॥ २ ॥ महाकारुण्यको मंता महामंत्रो महायतिः । महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः ॥ ३ ॥ महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महे-

श्वाक्। महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदयः ॥ ४ ॥ महा-
क्लेशांकुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः। महापराक्रमोऽनंतो महा-
क्रोधरिपुर्वशी ॥५॥ महाभवाब्धिसंतारिर्महामोहाद्रिसूदनः।
महागुणाकरः क्षांतो महायोगीश्वरः शमी ॥ ६ ॥ महाध्यान-
पतिर्ध्याता महाधर्मा महाव्रतः। महाकर्मारिरात्मज्ञो महादेवो
महेशिता ॥ ७ ॥ सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥ ८ ॥ सर्वयोगी-
श्वरोऽचिंत्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः। दांतात्मा दमतीर्थेशो
योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥९॥ प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमो-
दयः। प्रक्षीणबंधः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ॥ १० ॥ प्रणवः
प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः। प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणो-
ऽध्वर्युरध्वरः ॥ ११ ॥ आनंदो नंदनो नंदो वंद्योऽनिंद्योऽभिनं-
दनः। कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिंजयः ॥ १२ ॥

इति महामुन्यादिशतम् ॥ ६ ॥ अथ।

असंस्कृतःसुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतांतकृत्। अंतकृत्कांतिगुः
कांतश्चिंतामणिरभीष्टदः ॥१॥ अजितो जितकामारिरमितोऽमि-
तशासनः। जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितांतकः
॥ २ ॥ जिनेंद्रः परमानंदो मुनींद्रो दुंदुभिस्वनः। महेंद्रवंद्यो
योगींद्रो यतींद्रो नाभिनंदनः ॥ ३ ॥ नाभेयो नाभिजो जातः
सुव्रतो मनुरुत्तमः। अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः
सुधीः ॥ ४ ॥ सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः।
विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥ ५ ॥ क्षेमी
क्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी। अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो

ध्यानगम्यो निरुत्तरः ॥ ६ ॥ सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्च-
तुराननः। श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥७॥ सत्या-
त्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः। सत्याशीः सत्यसंधानः
सत्यः सत्यपरायणः ॥८॥ स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान्दूर-
दर्शनः। अणोरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसां ॥ ९ ॥ सदा-
योगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः। सदागतिः सदासौख्यः
सदाविद्यः सदोदयः ॥ १० ॥ सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः
सुहितः सुहृत्। सुगुप्तो गुप्तिभृद्गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥११॥

इति असंस्कृतादिशतम् ॥ ७ ॥ अर्घं।

वृहन्वृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः। मनीषी धिषणो
धीमांञ्छेमुषीशो गिरांपतिः ॥ १ ॥ नैकरूपो नयस्तुंगो नैका-
त्मा नैकधर्मकृत्। अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः
॥ २ ॥ ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः। पद्मगर्भो जग-
द्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥ लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानि-
न ईशिता। मनोहरो मनोज्ञांगो धीरो गंभीरशासनः ॥ ४ ॥
धर्मयूपो दयायागो: धर्मनेमिर्मुनीश्वरः। धर्मचक्रायुधो देवः
कर्महा धर्मघोषणः ॥ ५ ॥ अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघ-
शासनः। सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥ ६ ॥
सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः। अलेपो
निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥ ७ ॥ वश्येंद्रियो
विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेंद्रियः। प्रशांतोऽनंतधामर्षिः
मंगलं मलहानघः ॥ ८ ॥ अनीदृगुपमाभूतो दृष्टिर्दैवमगो-
चरः। अमूर्त्तो मूर्त्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥९॥ अध्या-

त्मगम्यो गम्यात्मा योगविद्योगिवंदितः। सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥१०॥ शंकरः शंवदो दांतो दमी क्षांति-परायणः। अधिपः परमानंदः परात्मज्ञः परात्परः ॥ ११ ॥ त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मंगलोदयः। त्रिजगत्पतिपूजांघ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥ १२ ॥

इति बृहदादिशतम् ॥ ८ ॥ अर्घं।

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः। सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः ॥ १ ॥ पुराणपुरुषः पूर्वः कृतपूर्वांगविस्तरः। आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥ २ ॥ युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः। कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥ ३ ॥ कल्याणः प्रकृतिर्दीप्तः कल्याणात्मा विकल्मषः। विकलंकः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥ ४ ॥ देवदेवो जगन्नाथो जगद्बंधुर्जगद्विभुः। जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥ ५ ॥ चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः। सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः ॥ ६ ॥ आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः। सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥७॥ तपनीयनिभस्तुंगो बालार्काभोऽनलप्रभः। संध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ॥८॥ निष्टप्तकनकच्छायः कनत्कांचनसन्निभः। हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुंभनिभप्रभः ॥९॥ द्युम्नभाजातरूपाभो दीप्तजांबूनदद्युतिः। सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥ १० ॥ शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरक्षमः। शत्रुघ्नोप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥११॥

शांतिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः । शांतिदः शांतिकृच्छांतिः कांतिमान्कामितप्रदः ॥ १२ ॥ श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः । सुस्थितः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥ १३ ॥

इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ॥ ६ ॥ अथ ।

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रंथेशो निरंबरः । निष्किंचनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥ १ ॥ तेजोराशिरनंतौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः । तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोपहः ॥ २ ॥ जगच्चूडामणिर्दीप्तः सर्वविघ्नविनायकः । कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः ॥ ३ ॥ अनिद्रालुरतंद्रालुर्जागरूकः प्रभामयः । लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥ ४ ॥ मुमुक्षुर्बंधमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः । प्रशांतरसशैलूषो भव्यपेटकनायकः ॥ ५ ॥ मूलकर्ताखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणः । आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥ ६ ॥ प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित् । सुतनुस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥ ७ ॥ श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयंकरः । उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ॥ ८ ॥ लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः । धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥ ९ ॥ प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेंद्रियः । भदंतो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥ १० ॥ समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः । कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेयविचक्षणः ॥ ११ ॥ अनंतशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः । त्रिनेत्रस्त्र्यंबकस्त्र्य-

क्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥ १२ ॥ समंतभद्रः शांतारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः। सूक्ष्मदर्शी जितानंगः कृपालुर्धर्मदेशकः ॥ १३॥ शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशिरनामयः। धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ॥ १४ ॥

इति दिग्वासादि शतं ॥ १०॥ इत्यष्टाधिकसहस्रनामावली समाप्ता ।

अर्घं ।

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः। समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ॥ १ ॥ गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः। स्तोता तथाप्यसंदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं लभेत् ॥ २ ॥ त्वमतोऽसि जगद्बंधुस्त्वमतोऽसि जगद्भिषक्। त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः ॥ ३ ॥ त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक् । त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यंगं सोत्थानंतचतुष्टयः ॥४॥ त्वं पञ्चब्रह्मतत्त्वात्मा पञ्चकल्याणनायकः। षड्भेदभावतत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः ॥५॥ दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवललब्धिकः। दशावतारनिर्धार्यो-मां पाहि परमेश्वरः ॥६॥ युष्मन्नामावलीदृब्धाविलसत्स्तोत्रमालया। भवंतं वरिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः ॥७॥ इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः । यः सपाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनं ॥ ८ ॥ ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधीः । पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ॥ ९ ॥ स्तुत्वेति मघवा देवं चराचरजगद्गुरुं । ततस्तीर्थविहारस्य व्यधात्प्रस्तावनामिमां ॥ १० ॥ स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः। निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखं ॥ ११ ॥

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः स्तोता स्वयं कस्यचित्
ध्येयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित् ॥
यो नेतॄन् नयते नमस्कृतिमलं नंतव्यपक्षेक्षणः
स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरुः पावनः ॥ १२ ॥
तं देवं त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानंतरं
प्रोत्थानंतचतुष्टयं जिनमिमं भव्याब्जनीनामिनं ।
मानस्तंभविलोकनानतजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं
प्राप्ताचिंत्यबहिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवंदामहे ॥ १३ ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

इतिश्रीभगवज्जिनसेनाचार्यविरचितजिनसहस्रनामस्तवनं समाप्तम् ।

६२। श्रीमानतुंगाचार्यविरचित आदिनाथस्तोत्र।

भक्तामर स्तोत्र।

वसंततिलका।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणामुद्योतकं दलितपापतमोवितानं । सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-वालंबनं भवजले पततां जनानां ॥ १ ॥ यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधादुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः । स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः, स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेंद्रं ॥ २ ॥ बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहं । बालं विहाय जलसंस्थितमिंदुबिंबमन्यः क इच्छति जनः सहसा गृहीतुं ॥ ३ ॥ वक्तुं गुणान्गुणसमुद्र शशांककांतान्, कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या । कल्पांतकालपवनोद्धतनक्रचक्रं, को वा तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्यां ॥ ४ ॥ सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश, कर्तुं स्तवं विगतश-

क्तिरपि प्रवृत्तः। प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेंद्रं, नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थं ॥ ५ ॥ अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम, त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्मां। यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति, तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतु ॥ ६ ॥ त्वत्संस्तवेन भवसंततिसन्निबद्धं पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजां। आक्रांतलोकमलिनीलमशेषमाशु, सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमंधकारं ॥ ८ ॥ मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेदमारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात्। चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु, मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिंदुः ॥ ८ ॥ आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं, त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हंति। दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव, पद्माकरेषु जलजानि विकासभांजि ॥ ९ ॥ नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ ! भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवंतः। तुल्या भवंति भवतो ननु तेन किं वा, भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥ १० ॥ दृष्ट्वा भवंतमनिमेषविलोकनीयं, नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः। पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिंधोः क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत् ॥ ११ ॥ यैः शांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं, निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत। तावंत एव खलु तेप्यणवः पृथिव्यां यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥ १२ ॥ वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि, निश्शेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानं। बिंबं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य, यद्वासरे भवति पांडुपलाशकल्पं ॥ १३ ॥ संपूर्णमंडलशशांककलाकलापशुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयंति। ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं, कस्तान्नि-

वारयति संचरतो यथेष्टं ॥ १४ ॥ चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभिर्, नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गं । कल्पांतकालमरुता चलिताचलेन, किं मंदराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥ १५ ॥ निर्धूमवर्त्तिरपवर्जिततैलपूरः, कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि । गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां, दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥ नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगंति । नांभोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः सूर्यातिशायिमहिमासि मुनींद्र लोके ॥ १७ ॥ नित्योदयं दलितमोहमहांधकारं, गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानां । विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकांति, विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिंबं ॥ १८ ॥ किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा, युष्मन्मुखेंदुदलितेषु तमस्सु नाथ । निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके, कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥ १९ ॥ ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं, नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु । तेजःस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं, नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥ २० ॥ मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा, दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति । किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः, कश्चिन्मनो हरति नाथ भवांतरेऽपि ॥ २१ ॥ स्त्रीणां शतानि शतशो जनयंति पुत्रान्, नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता । सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं, प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालं ॥ २२ ॥ त्वामामनंति मुनयः परमं पुमांसमादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् । त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयंति मृत्युं, नान्यः

शिवश्शिवपदस्य मुनींद्र पंथाः ॥२३॥ त्वामव्ययं विभुमचिंत्य-
मसंख्यमाद्यं, ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुं। योगीश्वरं विदि-
तयोगमनेकमेकं, ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदंति संतः ॥ २४ ॥
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्, त्वं शंकरोऽसि भुवनत्र-
यशंकरत्वात्। धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानाद् व्यक्तं
त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २५ ॥ तुभ्यं नमस्त्रिभुवना-
र्त्तिहराय नाथ, तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय। तुभ्यं
नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय, तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोष
णाय। ॥ २६ ॥ को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषैस्त्वं सं
श्रितो निरवकाशतया मुनीश। दोषैरुपात्तविविधाश्रयजात
गर्वैः, स्वप्नांतरे पि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥ २७ ॥
उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूखमाभाति रूपममलं भवतो नि
तांतं। स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं, बिंबं रवेरिव
पयोधरपार्श्ववर्ति ॥ २८ ॥ सिंहासने मणिमयूखशिखा-
विचित्रे विभ्राजते तव वपुः कनकावदातं। बिंबं वियद्विलस-
दंशुलतावितानं तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥ २९ ॥
कुंदावदातचलचामरचारुशोभं, विभ्राजते तव वपुः कलधौत-
कांतं। उद्यच्छशांकशुचिनिर्झरवारिधारमुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव
शातकौंभं ॥ ३० ॥ छत्रत्रयं तव विभाति शशांककांतमुच्चैः
स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापं। मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं,
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वं ॥ ३१ ॥ गंभीरताररवपूरि-
तदिग्विभागस्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः। सद्धर्मराज-
जयघोषणघोषकः सन्, खे दुंदुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी

॥ ३२ ॥ मंदारसुंदरनमेरुसुपारिजातसंतानकादिकुसुमोत्कर-वृष्टिरुद्धा । गंधोदबिंदुशुभमंदमरुत्प्रयाता, दिव्या दिवः पतति ते वयसां ततिर्वा ॥३३॥ शुंभत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते, लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपंती । प्रोद्यद्दिवाकरनिरंतरभूरिसंख्या, दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसोम्यां ॥ ३४ ॥ स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः, सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः । दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्वभाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥ ३५ ॥ उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकांती, पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ । पादौ पदानि तव यत्र जिनेंद्र ! धत्तः, पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयंति ॥ ३६ ॥ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेंद्र, धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य । यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा, तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोपि ॥ ३७ ॥ श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपं । ऐरावताभमिभमुद्धतमापतंतं, दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानां ॥ ३८ ॥ भिन्नेभकुंभगलदुज्ज्वलशोणिताक्तमुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः । बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि, नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३९॥ कल्पांतकालपवनोद्धतवह्निकल्पं, दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगं । विश्वं जिघित्सुमिव संमुखमापतंतं, त्वन्नामकीर्त्तनजलं शमयत्यशेषं ॥ ४० ॥ रक्तेक्षणं समदकोकिलकंठनीलं, क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतंतं । आक्रामति क्रमयुगेण निरस्तशंकस्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥ ४१ ॥ बल्गत्तुरंगगजगर्जितभीमनादमाजौ बलं बल-

वतामपि भूपतीनां । उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं, त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥ कुंताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाहवेगावतारतरणातुरयोधभीमे । युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षास्, त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभंते ॥ ४३ ॥ अंभोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र, पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ । रंगत्तरंगशिखरस्थितयानपात्रास् त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजंति ॥ ४४ ॥ उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः । त्वत्पादपंकजरजोमृतदिग्धदेहा, मर्त्या भवंति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४५॥ आपादकंठमुरुशृंखलवेष्टितांगा, गाढं वृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघाः । त्वन्नाममंत्रमनिशं मनुजाः स्मरंतः, सद्यः स्वयं विगतबंधभया भवंति ॥४६॥ मत्तद्विपेंद्रमृगराजदवानलाहिसंग्रामवारिधिमहोदरबंधनोत्थं । तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव, यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥ ४७ ॥ स्तोत्रस्रजं तव जिनेंद्र गुणैर्निबद्धां, भक्त्या मया विविधवर्णविचित्रपुष्पां । धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं, तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥ ४८ ॥

इति श्रीमानतुंगाचार्यविरचितमादिनाथस्तोत्रं समाप्तं ॥

६३ । अथ भक्तामर भाषा ।

(स्वर्गीय पं० हेमराजकृत)

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधिकरतार
धरमधुरंधर परमगुरु, नमोंआदि अवतार ॥ १ ॥
सुरनत मुकुट रतन छवि करें । अंतर पापतिमिर सब

हरें ॥ जिनपद बंदों मनवचकाय । भवजलपतित-उधरनसहाय
॥ १ ॥ श्रुतपारग इंद्रादिक देव । जाकी थुति कीनी कर सेव ॥
शब्द मनोहर अरथ विशाल । तिस प्रभुकी बरनों गुनमाल ॥
विबुधवंद्यपद मैं मतिहीन । हो निलज्ज थुति-मनसा कीन ।
जलप्रतिबिंब बुद्ध को गहै । शशिमंडल बालक ही चहै ॥६॥
गुनसमुद्र तुमगुन अविकार । कहत न सुरगुरु पावै पार ॥ प्रल-
यपवनउद्धत जलजंतु । जलधि तिरै को भुजबलवंतु ॥ ४ ॥
सो मैं शक्तिहीन थुति करूं । भक्तिभाववस कछु नहिं डरूं ॥
ज्यों मृग निज सुत पालन हेत । मृगपतिसन्मुख जाय अचेत ॥
मैं शठ सुधीहँसनको धाम । मुझ तव भक्ति बुलावै राम ॥ ज्यों
पिक अंबकली परभाव । मधुऋतु मधुर करै आराव ॥ ६ ॥
तुमजस जंपत जन छिनमाहिं । जनमजनमके पाप नशाहिं ॥
ज्यों रवि उगै फटै ततकाल । अलिवत नील निशातमजाल ॥
तव प्रभावतैं कहूं विचार । होसी यह थुति जनमनहार ॥ ज्यों
जल कमलपत्रपै परै । मुक्ताफलकी दुति विस्तरै ॥ ८ ॥ तुम
गुन महिमा हतदुखदोष । सो तो दूर रहो सुखपोष ॥ पाप
विनाशक है तुमनाम । कमलविकाशी ज्यों रविधाम ॥ ९ ॥
नहिं अचंभ जो होंहिं तुरंत । तुमसे तुमगुण बरनत संत ॥
जो अधनीको आपसमान । करै न सो निंदित धनवान ॥१०॥
इकटक जन तुमको अविलोय । और विषै रति करै न सोय ॥
को करि छीरजलधिजलपान । क्षारनीर पीवै मतिमान ॥११॥
प्रभु तुम वीतराग गुनलीन । जिन परमानु देह तुम कीन ॥
हैं तितने ही ते परमानु । यातैं तुमसम रूप न आनु ॥ १२ ॥

कहँ तुम मुख अनुपम अविकार। सुरनरनागनयनमनहार।
कहां चंद्रमंडल सकलंक। दिनमें ढाक पत्रसम रंक॥ १३ ॥
पूरनचंद जोति छबिवंत। तुमगुन तीनजगत लंघंत॥ एक
नाथ त्रिभुवन आधार। तिन विचरत को करै निवार ॥१४॥
जो सुरतिय विभ्रम आरंभ। मन न डिग्यो तुम तौ न अचंभ॥
अचल चलावै प्रलय समीर। मेरुशिखर डगमगैं न धीर ॥१५॥
धूमरहित बाती गतनेह। परकाशै त्रिभुवन घर येह॥ बात
गम्य नाहीं परचंड। अपर दीप तुम बलो अखंड॥ १६ ॥
छिपहु न लुपहु राहुकी छाँहिं। जगपरकाशक हो छिनमाहिं॥
घन अनवर्त्त दाह विनिबार। रवितैं अधिक धरो गुणसार॥
॥ १५ ॥ सदा उदित विदलित मनमोह। विघटित मेघ राहु
अविरोह॥ तुम मुखकमल अपूरब चंद। जगत विकाशी
जोति अमंद॥ १८ ॥ निशदिन शशिरविको नहिं काम।
तुम मुखचंद हरै तमधाम॥ जो स्वभावतैं उपजै नाज। सजल
मेघ तो कौनहु काज॥ १९ ॥ जो सुबोध सोहै तुममाहिं।
हरि हर आदिकमें सो नाहिं॥ जो दुति महारतनमें होय।
काचखंड पावै नहिं सोय॥ २० ॥

नाराच छंद।

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया। स्वरूप जाहिं देख
वीतराग तू पिछानिया॥ कछू न तोहिं देखके जहां तुही विशेखि-
या। मनोग चित्तचोर और भूलहू न पेखिया॥२१॥ अनेक पुत्र-
वंतिनी नितंबिनी सपूत हैं। न तोसमान पुत्र और माततैं प्रसूत
है॥ दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै। दिनेश तेज-

वंत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥२२॥ पुरान हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो । कहैं मुनीश अंधकारनाशको सुभान हो ॥ महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके । न और मोहि मोखपंथ देय तोहि टालके ॥ २३ ॥ अनंत नित्य चित्तकी अगम्य रम्य आदि हो । असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ॥ महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो । अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ॥ २४ ॥ तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धिके प्रमानतैं । तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतैं ॥ तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतैं । नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं ॥ २५ ॥ नमों करूं जिनेश तोहि आपदा निवार हो । नमो करूं सुभूरि भूमिलोकके सिंगार हो ॥ नमो करूं भवाब्धिनीरराशिशोषहेतु हो । नमो करूं महेश तोहि मोखपंथ देतु हो ॥ २६ ॥

चौपई १५ मात्रा ।

तुम जिन पूरनगुनगन भरे । दोष गर्वकरि तुम परिहरे ॥ और देवगण आश्रय पाय । स्वप्न न देखे तुम फिर आय ॥ २७ ॥ तरुअशोकतर किरन उदार । तुमतन शोभित है अविकार ॥ मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत । दिनकर दिपै तिमिर निहनंत ॥ २८ ॥ सिंहासन मनिकिरनविचित्र । तापर कंचनवरन पवित्र ॥ तुमतन शोभित किरनविथार । ज्यों उदयाचल रवितमहार ॥ २९ ॥ कुंदपुहुपसितचमर ढुरंत । कनक वरन तुमतन शोभंत ॥ ज्यों सुमेरुतट निर्मल कांति । झरना झरै नीर उमगांति ॥ ३० ॥ ऊंचे रहैं सूर दुति लोप ।

तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ॥ तीन लोककी प्रभुता कहैं । मोती झालरसों छबि लहैं ॥ ३१ ॥ दुंदुभि शब्द गहर गंभीर । चहुँदिशि होय तुम्हारे धीर ॥३२॥ त्रिभुवनजन शिवसंगम करैं । मानो जय जय रव उच्चरैं ॥ मंद पवन गंधोदक इष्ट । विविध कलपतरु पुहपसुवृष्ट ॥ ३३ ॥ देव करैं विकसित दल सार । मानों द्विजपंकति अवतार ॥ तुमतन-भामंडल जिनचंद । सब दुतिवंत करत है मंद ॥ ३४ ॥ कोटि शंख रवितेज छिपाय । शशिनिर्मलनिशि करै अछाय ॥ स्वर्गमोखमारगसंकेत । परमधरम उपदेशनहेत ॥ दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध । सबभाषागर्भित हितसाध ॥ ३५ ॥

दोहा-विकसितसुवरनकमलदुति, नखदुतिमिलि चमकाहिं तुमपद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं ॥३६॥ ऐसी महिमा तुमविषै, और धरै नहिं कोय । सूरजमें जो जोत है, नहिं तारागण होय ॥ ३७ ॥

षट्पद- मदअवलिप्तकपोल-मूल अलिकुल झंकारैं । तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारैं ॥ कालवरन विकराल, कालवत सनमुख आवै । ऐरावत सौ प्रबल, सकल जन भय उपजावै ॥ देखि गयंद न भय करै, तुमपदमहिमा लीन । विपतिरहित संपति सहित, वरतैं भक्त अदीन ॥३८॥ अति मदमत्त गयंद कुंभथल नखन विदारै । मोती रक्त समेत, डारि भूतल सिंगारै ॥ बांकी दाढ़ विशाल, वदनमें रसना लोलै । भीमभयानकरूप देखि जन थरहर डोलै ॥ ऐसे मृगपति पग तलैं, जो नर आयो होय । शरण गये तुम चरनकी,

बाधा करै न सोय ॥३९॥ प्रलयपवनकर उठी आग जो तास पटंतर । बमैं फुलिंग शिखा, उतंग परजलैं निरंतर ॥ जगत समस्त निगल भस्मकर हैगी मानों । तड़तड़ाट दवअनल, जोर चहुँदिशा उठानों ॥ सो इक छिनमें उपशमै, नामनीर तुम लेत । होय सरोवर परिनमै, विकसित कमल समेत ॥ ॥४०॥ कोकिलकंठ समान, श्याम तन क्रोध जलंता । रक्तनयन फुंकार, मारविषकण उगलंता ॥ फणको ऊंचो करै, बेग ही सनमुख धाया । तब जन होय निशंक, देख फणपतिको आया ॥ जो चांपै निज पांवतैं, व्यापै विष न लगार । नागदमनि तुम नामकी, है जिनकै आधार ॥ ४१ ॥ जिस रनमाहिं भयानक शब्द कर रहे तुरंगम । घनसे गज गरजाहिं मत्त मानों गिरि जंगम ॥ अति कोलाहलमाहिं, बात जहँ नाहिं सुनीजे । राजनको परचंड, देख बल धीरज छीजै ॥ नाथ तिहारें नामतैं सो छिनमाहिं पलाय । ज्यों दिनकर परकाशतैं, अंधकार विनशाय ॥ ४२ ॥ मारै जहां गयंद, कुंभ हथियार विदारै । उमगै रुधिर प्रवाह बेग जलसे विस्तारै ॥ होय तिरन असमर्थ महाजोधा बल पूरे । तिस रनमें जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरे ॥ दुर्जय अरिकुल जीतके, जय पावैं निकलंक । तुमपदपंकज मन वसैं, ते नर सदा निशंक ॥ ४४ ॥ नक्र चक्र मगरादि मच्छकरि भय उपजावै । जामैं बड़वा अग्नि दाहतैं नीर जलावै ॥ पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी । गरजै अतिगंभीर, लहरकी गिनति न ताकी ॥ सुखसों तिरै समुद्रको, जे तुमगुन सुमिराहिं । लोल कलो-

लनके शिखर, पार यान ले जाहिं ॥ ४४ ॥ महा जलोदर रोग, भार पीडित नर जे हैं। बात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहे हैं ॥ सोचत रहैं उदास नाहिं जीवनकी आशा। अति घिनावनी देह, धरै दुर्गंधनिवासा ॥ तुम पदपंकजधूलको, जो लावैं निजअंग। ते नीरोग शरीर लहि, छिनमें होय अनंग ॥ ४५ ॥ पांव कंठतैं जकर बांध सांकल अति भारी। गाढ़ी बेड़ी पैरमांहि, जिन जांघ विदारी। भूख प्यास चिंता शरीर, दुख जे बिललाने। सरन नाहिं जिन कोय, भूपके बंदीखाने ॥ तुम सुमरत स्वयमेव ही, बंधन सब खुल जाहिं। छिनमें ते सम्पति लहैं, चिंता भय विनसाहिं ॥४६॥ महामत्त गजराज, और मृगराज दवानल। फणपति रण परचंड नीरनिधि रोग महाबल ॥ बंधन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै। तुम सुमरत छिनमाहिं, अभय थानक परकाशै ॥ इस अपार संसारमें, शरन नाहिं प्रभु कोय। यातैं तुम पदभक्तको, भक्ति सहाई होय ॥ ४७ ॥ यह गुनमाल विशाल, नाथ तुम गुनन सँवारी। विविध वर्णमय पुहुप गूंथ मैं भक्ति विथारी ॥ जे नर पहिरैं कंठ भावना मनमैं भावैं। मानतुंग ते निजाधीन शिवलछमी पावैं ॥ भाषा भक्तामर कियो, हेमराज हितहेत। जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिवखेत ॥ ४८ ॥

श्रीसिद्धसेन दिवाकरप्रणीतं

६४। कल्याणमंदिरस्तोत्रं।

कल्याणमंदिरमुदारमवद्यभेदि भीताभयप्रदमनिंदितमंघ्रिपद्मं।

संसारसागरनिमज्जदशेषजंतुपोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥ १ ॥ यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमांबुराशेः स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधातुं । तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतोस्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥ २ ॥ सामान्यतोपि तव वर्णयितुं स्वरूपमस्मादृशाः कथमधीश भवंत्यधीशाः । धृष्टोपि कौशिकशिशुर्यदि वा दिवांधो रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ॥ ३ ॥ मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ मर्त्यो नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत । कल्पांतवांतपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥ ४ ॥ अभ्युद्यतोस्मि तव नाथ जडाशयोपि कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य । बालोपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य विस्तीर्णतां कथयति स्वधियांबुराशेः ॥ ५ ॥ ये योगिनामपि न यांति गुणास्तवेश वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः । जाता तदेवमसमीक्षितकारितेयं जल्पंति वा निजगिरा ननु पक्षिणोपि ॥ ६ ॥ आस्तामचिंत्यमहिमा जिनसंस्तवस्ते नामापि पाति भवतो भवतो जगंति । तीव्रातपोपहतपांथजनान्निदाघे प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोपि ॥ ७ ॥ हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथिलीभवंति जंतोः क्षणेन निबिडा अपि कर्मबंधाः । सद्यो भुजंगममया इव मध्यभागमभ्यागते वनशिखंडिनि चंदनस्य ॥ ८ ॥ मुच्यंत एव मनुजाः सहसा जिनेंद्र रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि । गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥ ९ ॥ त्वं तारको जिन कथं भविनां त एव त्वामुद्वहंति हृदयेन यदुत्तरंतः । यद्वा दृतिस्तरति

यज्जलमेष नूनमंतर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥ १० ॥ यस्मिन्हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः सोपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन। विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन पीतं न किं तदपि दुर्धरवाडवेन ॥ ११ ॥ स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्नास्त्वां जंतवः कथमहो हृदये दधानाः। जन्मोदधिं लघु तरंत्यतिलाघवेन चिंत्यो न हंत महतां यदि वा प्रभावः ॥ १२ ॥ क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः। प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥ १३ ॥

त्वां योगिनो जिन सदा परमात्मरूपमन्वेषयंति हृदयांबुजकोषदेशे। पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्यदक्षस्य संभवपदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥ ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेन देहं विहाय परमात्मदशां व्रजंति। तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ॥१५॥ अंतः सदैव जिन यस्य विभाव्यसे त्वं भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरं। एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि यद्विग्रहं प्रशमयंति महानुभावाः ॥ १६ ॥ आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या ध्यातो जिनेंद्र भवतीह भवत्प्रभावः। पानीयमप्यमृतमित्यनुचिंत्यमानं किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥१७॥ त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि नूनं विभो हरिहरादिधिया प्रपन्नाः। किं काचकामलिभिरीश सितोऽपि शंखो नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥१८॥ धर्मोपदेशसमये सविधानुभावादास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः। अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि किं वा

विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥१९॥ चित्रं विभो कथमवाङ्मुखवृंतमेव विष्वक्पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः । त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश गच्छंति नूनमध एव हि बंधनानि ॥ २० ॥ स्थाने गभीरहृदयोदधिसंभवायाः पीयूषतां तव गिरः समुदीरयंति । पीत्वा यतः परमसंमदसंगभाजो भव्या व्रजंति तरसाप्यजरामरत्वं ॥ २१ ॥ स्वामिन्सुदूरमवनम्य समुत्पतंतो मन्ये वदंति शुचयः सुरचामरौघाः । येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुंगवाय ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ॥२२॥ श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्नसिंहासनस्थमिह भव्यशिखंडिनस्त्वां । आलोकयंति रभसेन नदंतमुच्चैश्चामीकराद्रिशिरसीव नवांबुवाहं ॥ २३ ॥ उद्गच्छता तव शितिद्युतिमंडलेन लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर्बभूव । सांनिध्यतोपि यदि वा तव वीतराग नीरागतां व्रजति को न सचेतनोपि ॥ २४ ॥ भो भोः प्रमादमवधूय भजध्वमेन मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहं । एतन्निवेदयति देव जगत्त्रयाय मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुंदुभिस्ते ॥ २५ ॥ उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः । मुक्ताकलापकलितोरुसितातपत्रव्याजात्त्रिधा धृतधनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥ २६ ॥ स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिंडितेन कांतिप्रतापयशसामिव संचयेन । माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥ दिव्यस्रजो जिन नमत्त्रिदशाधिपानामुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबंधान् । पादौ श्रयंति भवतो यदि वापरत्र त्वत्संगमे सुमनसो न रमंत एव ॥ २८ ॥ त्वं नाथ जन्मजलधेर्विपराङ्

मुखोपि यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्। युक्तं हि पार्थिव-निपस्य सतस्तवैव चित्रं विभो यदसि कर्मविपाकशून्यः ॥२९॥ विश्वेश्वरोऽपि जनपालक दुर्गतस्त्वं किं वाक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश। अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकासहेतु ॥३०॥ प्राग्भारसंभृतनभांसि रजांसि रोषादुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि। छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥ ३१ ॥ यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीमभ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरधारं। दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे तेनैव तस्य जिन दुस्तरवारिकृत्यम् ॥३२॥ ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुंडप्रालंबभृद्भयद्वक्त्रविनिर्यदग्निः। प्रेतव्रजः प्रति भवंतमपीरितो यः सोऽस्य-भवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ॥३३॥ धन्यास्त एव भुवनाधिप ये त्रिसंध्यमाराधयंति विधिवद्विधुतान्यकृत्याः। भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः पादद्वयं तव विभो भुवि जन्मभाजः ॥३४॥ अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि। आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमंत्रे किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥ ३५ ॥ जन्मांतरेऽपि तव पादयुगं न देव मन्ये मया महितमीहितदानदक्षं। तेनेह जन्मनि मुनीश पराभवानां जातो निकेतनमहं मथिताशयानां ॥ ३६ ॥ नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोसि। मर्माविधो विधुरयंति हि मामनर्थाः प्रोद्यत्प्रबंधगतयः कथमन्यथैते ॥३७॥ आकर्णितोपि महितोपि निरीक्षितोपि नूनं न चेतसि मया विधृतोसि भक्त्या। जातोस्मि तेन जन-

बांधव दुःखपात्रं यस्मात्क्रियाः प्रतिफलंति न भावशून्याः ॥३८॥ त्वं नाथ दुःखिजनवत्सल हे शरण्य कारुण्यपुण्यवसते वशिनां वरेण्य। भक्त्या नते मयि महेश दयां विधाय दुखांकुरोद्दलनतत्परतां विधेहि ॥ ३९ ॥ निःसंख्यसारशरणं शरणं शरण्य मासाद्य सादितरिपुप्रथितावदानं । त्वत्पादपंकजमपि प्रणिधानवंध्यो वंध्योस्मि चेद्भुवनपावन हा हतोस्मि ॥ ४० ॥ देवेंद्रवंद्य विदिताखिलवस्तुसार संसारतारक विभो भुवनाधिनाथ। त्रायस्व देव करुणाहृद मां पुनीहि सीदंतमद्य भयदव्यसनांबुराशेः ॥ ४१ ॥ यद्यस्ति नाथ भवदंघ्रिसरोरुहाणां भक्तेः फलं किमपि संततसंचितायाः। तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य भूयाः स्वामी त्वमेव भुवनेत्र भवांतरेपि ॥ ४२ ॥ इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र सांद्रोल्लसत्पुलककंचुकितांगभागाः। त्वद्बिंवनिर्मलमुखांबुजबद्धलक्ष्याः ये संस्तवं तव विभो रचयंति भव्याः ॥ ४३ ॥ जननयनकुमुदचंद्रप्रभास्वराः स्वर्गसंपदो भुक्त्वा। ते विगलितमलनिचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यंते ॥ ४४ ॥

इति कल्याणमंदिरस्तोत्रं ।

स्वर्गीय कविवर बनारसीदासजीकृत ।

६५ । कल्याणमंदिरस्तोत्र भाषा ।

दोहा ।

परमज्योति परमातमा, परमज्ञान परवीन ॥
बंदूं परमानंदमय, घटघटअंतरलीन ॥ १ ॥

चौपाई [१५ मात्रा]

निर्भय करन परम परधान । भवसमुद्रजलतारनयान ॥

शिव मंदिर अघहरन आनिंद । वंदहु पासचरन अरविंद ॥१॥
कमठमानभंजन वर वीर । गरिमासागर गुनगंभीर ॥ सुर-
गुरु पार लहैं नहिं जास । मैं अजान जंपू जस तास ॥ २ ॥
प्रभुस्वरूप अतिअगम अथाह । क्यों हमसेती होय निवाह ॥
ज्यों दिनअंध उलूको पोत । कहि न सकै रवि-किरन-उदोत
॥ ३ ॥ मोहहीन जानै मनमाहिं । तोहु न तुम गुन वरनें
जाहिं ॥ प्रलयपयोधि करै जल बौन । प्रगटहिं रतन गिनै
तिहिं कौन ॥ ४ ॥ तुम असंख्य निर्मल गुनखान । मैं मति
हीन कहूं निजवान ॥ ज्यों बालक निज बांह पसार । सागर
परिमिति कहै विचार ॥ ५ ॥ जे जोगींद्र करहिं तपखेद ।
तऊ न जानहिं तुम गुनभेद ॥ भक्तिभाव मुझ मन अभिलाख ।
ज्यों पंछी बोलें निज भाख ॥ ६ ॥ तुमजसमहिमा अगम
अपार । नाम एक त्रिभुवन-आधार ॥ आवै पवन पदमसर
होय । ग्रीषमतपत निवारै सोय ॥ ७ ॥ तुम आवत भविजन
घटमाहिं । कर्मनिबंध शिथिल ह्वै जाँहिं ॥ ज्यों चंदनतरु
बोलहिं मोर । डरहिं भुजंग लगे चहुँओर ॥ ८ ॥ तुम निर
खत जन दीनदयाल । संकटतैं छूटै ततकाल ॥ ज्यों पशु घेर
लेहिं निशि चोर । ते तज भागहिं देखत भोर ॥ ९ ॥ तू
भविजन तारक किमि होहि । ते चितधार तिरहिं ले तोहि ॥
यह ऐसें कर जान स्वभाव । तिरहिं मसक ज्यों गर्भितवाव
॥ १० ॥ जिहँ सब देव किये वश वाम । तैं छिनमें जीत्यो सो
काम ॥ ज्यों जल करै अगनिकुल हान । बडवानल पीवै सो पान
॥११॥ तुम अनंत गरवा गुन लिये । क्योंकर भक्ति धरौं निज

हिये ॥ है लघुरूप तिरहिं संसार । यह प्रभु महिमा अकथ अपार ॥ १२ ॥ क्रोध निवार कियो मन शांत । कर्मसुभट जीते किहिं भांत ॥ यह पटतर देखहु संसार । नील बिरछ ज्यों दहै तुसार ॥ १३ ॥ मुनिजनहिये कमल निज टोहि । सिद्ध-रूपसम ध्यावहिं तोहि ॥ कमलकरणिका विन नहिं और । कमलबीज उपजनकी ठौर ॥ १४ ॥ जब तुव ध्यान धरै मुनि कोय । तब विदेह परमातम होय ॥ जैसें धातु शिलातनु त्याग । कनक स्वरूप धवै जब आग ॥ १५ ॥ जाके मन तुम करहु निवास । विनशि जाय क्यों विग्रह तास ॥ ज्यों महंत विच आवै कोय । विग्रहमूल निवारै सोय ॥ १६॥ करहिं विबुध जे आतमध्यान । तुम प्रभावतें होय निदान ॥ जैसें नीर सुधा अनुमान । पीवत विषविकारकी हान ॥ १७ ॥ तुम भगवंत विमलगुणलीन । समलरूप मानहिं मतिहीन ॥ ज्यों नीलिया रोग दृग गहै ॥ वर्ण विवर्ण शंखसों कहै ॥

दोहा—निकटरहत उपदेश सुन, तरुवर भयो अशोक । ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ॥१९॥ सुमनवृष्टि ज्यों सुर करहिं, हेट बीठमुख सोहि ॥ त्यों तुम सेवत सुमनजन, बंध अधो मुख होहि ॥ २० ॥ उपजी तुम हिय उदधितैं, वानी सुधा समान ॥ जिहँ पीवत भविजन लहहिं, अजर अमरपदथान ॥ २१ ॥ कहहिं सार तिहुँ लोककी, ये सुरचामर दोय । भाव सहित जो जिन नमै, तिहँ गति ऊरध होय ॥ २२ ॥ सिंघासन गिरिमेरु सम, प्रभु धुनि गरजत घोर । श्याम सुतनु घनरूप लखि, नाचत भविजन

मोर ॥ २३ ॥ छविहत होत अशोकदल, तुम भामंडल देख। वीतरागके निकट रह, रहत न राग विसेष ॥ २४ ॥ सीख कहै तिहुँ लोककों, ये सुरदुंदुभिनाद । शिवपथसारथिवाह जिन, भजहु तजहु परमाद ॥ २५ ॥ तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छवि देत । त्रिविधरूप धर मनहु शशि, सेवत नखत समेत ॥ २६ ॥

पद्धरिछंद–प्रभु तुम शरीरदुति रतन जेम । परतापपुंज जिम शुद्ध हेम ॥ अतिधवल सुजस रूपा समान । तिनके गढ तीन विराजमान ॥ २७ ॥ सेवहिं सुरेंद्र कर नमत भाल। तिन सीस मुकुट तज देहि माल ॥ तुमचरणलगत लहलहै प्रीति । नहिं रमहिं और जन सुमन रीति ॥ २८ ॥ प्रभु भोगविमुख तन करमदाह । जन पार करत भवजल निवाह ॥ ज्यों माटीकलश सुपक्क होय । ले भार अधोमुख तिरहिं तोय ॥ २९ ॥ तुम महाराज निरधन निराश । तज विभव विभव सबजगप्रकाश ॥ अक्षरस्वभावसुलिखै न कोय। महिमा भगवंतअनंत सोय ॥ ३० ॥ कर कोप कमठ निज वैर देख । तिन करी धूलिवरषा विशेष ॥ प्रभु तुम छाया नहिं भई हीन । सो भयो पापि लंपट मलीन ॥ ३२ ॥ गरजंत घोर घन अंधकार । चमकंत बिज्जु जल मुसलधार ॥ वरषंत कमठ धरध्यान रुद्र । दुस्तर करंत निजभव समुद्र ॥ ३३ ॥

वस्तुछन्द ।

मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि । भेजे तुरत पिशाचगण, नाथ पास उपसर्ग कारण । अग्निजाल झलकंत मुख,

धुनि करंत जिमि मत्तवारण ॥ कालरूप विकराल तन, मुंड-माल तिह कंठ। ह्वै निशंक वह रंकनिज, करै कर्मदृढगंठ ॥

चौपाई—जे तुम चरणकमल तिहुंकाल। सेवहिं तज माया-जंजाल ॥ भावभगतिमन हरष अपार। धन्य धन्य जग तिन अवतार ॥ ३५ ॥ भवसागरमहं फिरत अजान। मैं तुअ सुजस सुन्यो नहिं कान ॥ जो प्रभुनाममंत्र मन धरै। तासों विपति भुजंगम डरै ॥ ३६ ॥ मनवांछित फल जिनपदमाहिं। मैं पूरवभव पूजे नाहिं ॥ मायामगन फिर्‌यो अज्ञान। करहिं रंकजन मुझ अपमान ॥ ३७ ॥ मोहतिमिर छायो दृग मोहि। जन्मांतर देख्यो नहिं तोहि ॥ तौ दुर्जन मुझ संगति गहैं। मरमछेदके कुवचन कहैं ॥ ३८ ॥ सुन्यो कान जस पूजे पाय। नैनन देख्यो रूप अघाय ॥ भक्तिहेतु न भयो चित चाव। दुखदायक किरियाविन भाव ॥ ३९ ॥ महाराज शरणागत पाल। पतितउधारण दीनदयाल ॥ सुमि-रण करहुं नाय निज शीश। मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥ ४० ॥ कर्मनिकंदनमहिमा सार। अशरणशरण सुजश विस-तार ॥ नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय। तो मुझ जन्म अकारथ जाय ॥ ४१ ॥ सुरगनवंदित दयानिधान। जगतारण जग-पति जगजान ॥ दुखसागरतें मोहि निकासि। निर्भयथान देहु सुखरासि ॥ ४२ ॥ मैं तुम चरणकमलगुन गाय। बहु-विधि भक्ति करी मनलाय ॥ जनमजनम प्रभु पाऊं तोहि। यह सेवाफल दीजे मोहि ॥ ४३ ॥

दोधकांत वेसरीछंद—षट्पद।

इहिविधि श्रीभगवंत, सुजश जे भविजन भाषहिं। ते

निज पुण्यभँडार, संचि चिरपाप प्रणासहिं ॥ रोमरोम हुलसंति, अंग प्रभु गुणमन ध्यावहिं । स्वर्गसंपदा भुंज वेग पंचमगति पावहिं ॥ यह कल्याणमंदिर कियो, कुमुदचंद्रकी बुद्धि । भाषा कहत 'बनारसी' कारण समकितशुद्ध ॥ ४४ ॥

इति श्रीकल्याणमन्दिरस्तोत्र भाषा समाप्ता ।

श्रीवादिराजप्रणीतं

६६ । एकीभावस्तोत्रं ।

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबंधो घोरं दुःखं भवभवगतो दुर्निवारः करोति । तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे ! भक्तिरुन्मुक्तये चेज्जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः ॥ १ ॥ ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वांतविध्वंसहेतुं त्वामेवाहुर्जिनवर चिरं तत्त्वविद्याभियुक्ताः । चेतोवासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमानस्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥ २ ॥ आनंदाश्रुस्नपितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्यश्चायेत त्वयि दृढमनाः स्तोत्रमंत्रैर्भवंतं । तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीकमध्यान्निष्कास्यंते विविधविषमव्याधयः काद्रवेयाः ।३। प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदं । ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वांतगेहं प्रविष्टस्तत्किं चित्रं जिन वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि ॥ ४ ॥ लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बंधुस्त्वय्येवासौ सकलविषया शक्तिरप्रत्यनीका । भक्तिस्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्तशय्यां मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेशयूथं सहेथाः ॥ ५ ॥ जन्माटव्यां कथमपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा प्राप्तैवेयं तव

नयकथा स्फारपीयूषवापी । तस्या मध्ये हिमकरहिमव्यूहशीते नितांतं निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःखदावोपतापाः ॥ ६ ॥ पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः । सर्वांगेण स्पृशति भगवं-स्त्वय्यशेषं मनो मे श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपैति ॥ ७ ॥ पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबंतं कर्मारण्यात्पुरुषमसमानंदधाम प्रविष्टं । त्वां दुर्वारस्मरमदहरं त्वत्प्रसादैकभूमिं क्रूराकाराः कथमिव रुजाकंटका निर्लुठन्ति ॥ ८ ॥ पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्नमूर्तिर्मानस्तंभो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः । दृष्टिप्राप्तो हरति स कथं मानरोगं नराणां प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः ॥ ९ ॥ हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्तिशैलोपवाही सद्यः पुंसां निरवधिरुजाधूलिबंधं धुनोति । ध्यानाहूतो हृदयकमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टस्तस्याशक्यः क इह भुवने देव लोकोपकारः ॥ १० ॥ जानासि त्वं मम भवभवे यच्च यादृक्च दुःखं जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि । त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोस्मि भक्त्या यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणं ॥ ११ ॥ प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः पापाचारी मरणसमये सारमेयोपि सौख्यं । कः संदेहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वं जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रं ॥१२॥ शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा भक्तिर्नो चेदनवधिसुखावञ्चिका कुञ्चिकेयं । शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्तिकामस्य पुंसो मुक्तिद्वारं परिदृढमहामोहमुद्राक-

वांटस् ॥ १३ ॥ प्रच्छन्नः खल्वयमघमयैरंधकारैः समंतात्पंथा मुक्तेः स्थपुटितपदः क्लेशगर्तैरगाधैः । तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव तत्त्वावभासी यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारतीरत्नदीपः ॥ १४ ॥ आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानंदहेतुः कर्मक्षोणीपटलपिहितो योऽनवाप्यः परेषां । हस्ते कुर्वंत्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः स्तोत्रैर्बंधप्रकृतिपुरुषोद्दामधात्रीखनित्रैः ॥ १५ ॥ प्रत्युत्पन्ना नयहिमगिरेरायता चामृताब्धेर्या देव त्वत्पदकमलयोः संगता भक्तिगंगा । चेतस्तस्यां मम रुचिवशादाप्लुतं क्षालितांहः कल्मापं यद्भवति किमियं देव संदेहभूमिः ॥ १६ ॥ प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख त्वामनुध्यायतो मे त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा । मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्तिमभ्रेषरूपां दोषात्मानोप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद्भवंति ॥ १७ ॥ मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभंगीतरंगैर्वागंभोधिर्भुवनमखिलं देव पर्येति यस्ते । तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन व्यातन्वंतः सुचिरममृतासेवया तृप्नुवंति ॥ १८ ॥ आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः शस्त्रग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः । सर्वांगेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां तत्किं भूषावसनकुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥ १९ ॥ इंद्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते तस्यैवेयं भवलयकरी श्लाघ्यतामातनोति । त्वं निस्तारी जननजलधेः सिद्धिकांतापतिस्त्वं त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थं ॥ २० ॥ वृत्तिर्वाचामपरसदृशी न त्वमन्येन तुल्यः स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमंते ।

मैवं भूवंस्तदपि भगवन्भक्तिपीयूषपुष्टास्ते भव्यानामभिमत-फलाः पारिजाता भवंति ॥ २१ ॥ कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव प्रसादो व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षं। आज्ञावश्यं तदपि भुवनं संनिधिर्वैरहारी क्वैवंभूतं भुवनतिलक प्राभवं त्वत्परेषु ॥ २२ ॥ देव स्तोतुं त्रिदिवगणिकामंडली-गीतकीर्तिं तोतूर्ति त्वां सकलविषयज्ञानमूर्तिं जनो यः। तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जाहूर्ति पंथास्तत्त्वग्रंथस्मरणविषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः ॥ २३ ॥ चित्ते कुर्वन्निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्य-रूपं देव त्वां यः समयनियमादादरेण स्तवीति। श्रेयोमार्गं स खलु सुकृती तावता पूरयित्वा कल्याणानां भवति विषयः पंचधा पंचितानां ॥ २४ ॥ भक्तिप्रह्वमहेंद्रपूजितपद त्वत्कीर्तने न क्षमाः सूक्ष्मज्ञानदृशोऽपि संयमभृतः के हंत मंदा वयं। अस्माभिः स्तवनच्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते स्वात्माधीन-सुखैषिणां स खलु नः कल्याणकल्पद्रुमः ॥ २५ ॥ वादिराज-मनु शाब्दिकलोको वादिराजमनु तार्किकसिंहः। वादिराज-मनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्यसहायः ॥ २६ ॥

इति श्रीवादिराजकृतमेकीभावस्तोत्रम्।

६७। एकीभावस्तोत्रभाषा।

दोहा।

वादिराज मुनिराजके, चरण कमल चितलाय।
भाषा एकीभावकी, करूं स्वपर सुखदाय ॥ १ ॥

रोला छन्द अथवा "अहो जगत गुरुदेव सुनियो अर्ज हमारी" वीनतीकी चाल।

जो अति एकीभाव भयो मानो अनिवारी। सो मुझ

कर्मप्रबंध करत भव भव दुख भारी॥ ताहि तिहारी भक्ति जगत रवि ज्यों निरवारै। तो अब और कलेश कौन सो नाहिं विदारै॥ १॥ तुम जिन जोतिस्वरूप दुरितअँधियारि निवारी। सो गणेश गुरु कहैं तत्त्वविद्याधनधारी॥ मेरे चित घरमाहिं बसौ तेजोमय यावत। पापतिमर अवकाश तहां सो क्योंकर पावत॥२॥ आनंदआंसूवदन धोय तुमसों चित सानै। गदगदसुरसों सुयशमंत्र पढि पूजा ठानै॥ ताके बहुविधि व्याधि व्याल चिरकालनिकासी। भाजैं थानक छोड़ देहबांबइके वासी॥३॥ दिवितैं आवनहार भये भविभागउदयबल। पहलेही सुर जाय कनकमय कीय महीतल॥ मनगृहध्यानदुवार आय निवसो जगनामी। जो सुवरन तन करो कौन यह अचरज स्वामी॥ ४॥ प्रभु सब जगके विनाहेतुबंधव उपकारी। निरावरन सर्वज्ञ शक्ति जिनराज तिहारी॥ भक्ति रचित मम चित्तसेज नित बास करोगे। मेरे दुखसंताप देख किम धीर धरोगे॥५॥ भववनमें चिरकाल भ्रम्यो कछु कहिय न जाई। तुम थुतिकथा पियूष वापिका भागन पाई॥ शशि तुषार घन सार हार शीतल नाहिं जा सम। करत न्हौन तामाहिं क्यों न भवताप बुझै मम॥ ६॥ श्रीविहार परिवाह होत शुचिरूप सकल जग। कमलकनक आभाव सुरभि श्रीवास धरत पग। मेरो मन सर्वंग परस प्रभुको सुख पावै। अब सो कौन कल्यान जो न दिन दिन ढिग आवै॥ ७॥ भव तज सुखपद बसे काममदसुभट सँहारे। जो तुमको निरखंत सदा प्रियदास तिहारे॥ तुम वचनामृतपान भक्तिअंजुलिसों पीवै। तिन्हैं

भयानक क्रूररोग रिपु कैसें छीवै ॥ ८ ॥ मानथंभ पाषान आन पाषान पटंतर। ऐसे और अनेक रतन दीखैं जगअंतर॥ देखत दृष्टिप्रमान मानमद तुरत मिटावै। जो तुम निकट न होय शक्ति यह क्योंकर पावै ॥ ९ ॥ प्रभुतन पर्वतपरस पवन उरमें निवहै है। तासों ततछिन सकल रोगरज बाहिर ह्वै है। जाके ध्यानाहूत बसो उर अंबुजमाहीं। कौन जगत उपकार करन समरथ सो नाहीं ॥ १० ॥ जनम जनमके दुःख सहे सब ते तुम जानों। याद किये मुझ हिये लगे आयुधसे मानों॥ तुम दयाल जगपाल स्वामि मैं शरन गही है। जो कछु करनो होय करो परमान वही है ॥ ११ ॥ मरनसमय तुम नाममंत्र जीवकतैं पायो। पापाचारी श्वान प्रान तज अमर कहायो॥ जो मणिमाला लेय जपै तुम नाम निरंतर। इंद्र संपदा लहै कौन संशय इस अंतर ॥१२॥ जो नर निर्मल ज्ञान मान शुचि चारित साधैं। अनवधि सुखकी सार भक्ति कूंची नहि लाधै॥ सो शिववांछक पुरुष मोक्षपट केम उघारै। मोह मुहर दिढ करी मोक्ष मंदिरके द्वारै ॥ १३ ॥ शिवपुर केरो पंथ पापतमसों अति छायो। दुखसरूप बहु कूपखाड़ सों विकट बतायो ॥ स्वामी सुखसों तहां कौन जन मारग लागैं। प्रभु प्रवचनमणिदीप जोनके आगैं आगैं॥ १४ ॥ कर्मपटलभूमाहिं दबी आतम निधि भारी। देखत अतिसुख होय विमुखजन नाहिं उघारी ॥ तुम सेवक ततकाल ताहि निहचै कर धारै। थुतिकुदालसों खोद बंद भू कठिन विदारै ॥ १५ ॥ स्याद्वादगिरि उपज मोक्षसागरलों धाई। तुम

चरणांबुज परस भक्तिगंगा सुखदाई ॥ मो चित निर्मल थयो न्होन रुचिपूरव तामैं। अब वह हो न मलीन कौन जिन संशय यामैं ॥ १६ ॥ तुम शिवसुखमय प्रगट करत प्रभु चिंतन तेरो। मैं भगवान समान भाव यों बरतै मेरो ॥ यदपि झूठ है तदपि तृप्ति निश्चल उपजावै। तुवप्रसाद सकलंक जीव वांछित फल पावै ॥ १७ ॥ वचनजलधि तुम देव सकल त्रिभुवनमें व्यापै। भंगतरंगिनि विकथवादमल मलिन उथापै ॥ मनसुमेरसों मथै ताहि जे सम्यकज्ञानी। परमामृतसों तृपत होहिं ते चिरलों प्रानी ॥ १८ ॥ जो कुदेव छविहीन वसन भूषन अभिलाखै। बैरीसों भय भीत होय सो आयुध राखै ॥ तुम सुंदर सर्वंग शत्रु समरथ नहिं कोई। भूषन वसन गदादि ग्रहन काहेको होई ॥ १९ ॥ सुरपति सेवा करै कहा प्रभु प्रभुता तेरी। सो सलाघना लहै मिटै जगसों जगफेरी। तुम भवजलधिजिहाज तोहि शिवकंत उचरिये। तुही जगत जनपाल नाथथुतिकी थुति करिये ॥ २० ॥ वचनजाल जडरूप आप चिन्मूरति झांई। तातैं थुति आलाप नाहिं पहुंचै तुमतांई ॥ तो भी निर्फल नाहिं भक्तिरसभीने वायक। संतनको सुरतरुसमान वांछित वरदायक ॥ २१ ॥ कोप कभी करो प्रीत कबहूं नहिं धारो। अति उदास बेचाह चित्त जिनराज तिहारो ॥ तदपि आन जग बहै बैर तुम निकट न लहिये। यह प्रभुता जगतिलक कहां तुम बिन सरदहिये ॥२२॥ सुरतिय गावैं सुयश सर्वगति ज्ञानस्वरूपी। जो तुमको थिर होहिं नमैं भवि आनंदरूपी ॥ ताहि छेम पुर चलन बाट

बाकी नाहिं हो है । श्रुतके सुमरनमाहिं सो न कबहूं नर नर मोहै ॥ २४ ॥ अतुल चतुष्टयरूप तुमै जो चितमें धारै । आदरसों तिहुंकालमाहिं जग थुति विस्तारै ॥ सो सुकृत-शिवपंथ भक्ति रचनाकर पूरै । पंचकल्यानक ऋद्धिपाय निहचै दुख चूरै ॥ २४ ॥ अहो ! जगपति पूज्य अवधि ज्ञानी मुनि हारे । तुम गुनकीर्तनमाहिं कौन हम मंद बिचारे ॥ थुतिछलसों तुमविषैं देव आदर विस्तारे । शिवसुखपूरनहार कल्पतरु यही हमारे ॥ २५ ॥ वादिराज मुनिराज शब्दविद्याके स्वामी । वादिराज मुनिराज तर्कविद्यापति नामी ॥ वादिराज मुनिराज काव्यकरता अधिकारी । वादिराज मुनिराज वड़े भविजन उपकारी ॥ २६ ॥

दोहा ।

मूल अर्थ वहुविधि कुसुम, भाषासूत्रमझार ।
भक्तिमाल 'भूधर' करो कंठ सुखकार ॥ १ ॥

इति एकीभावस्तोत्रभाषा ।

---

१ । मूलके शेष श्लोकका कवि पांडे हीरानंदजीने ऐसा दोहा बनाया है

वादिराज मुनिराज अनु, शाब्दिक तार्किक लोक ।
काव्यकार सहकार जगि, जीवन 'हीर' सु धोक ॥ २६ ॥

१ । शेष श्लोकका अनुवाद एकने ऐसा भी किया है

वादिराज मुनितैं अनु, वैयाकरणी सारे ।
वादिराज मुनितैं अनु, तार्किक विद्यावारे ॥
वादिराज मुनितैं अनु हैं, काव्यनके ज्ञाता ।
वादिराज मुनितैं अनु हैं, भविजनके त्राता ॥ २६ ॥

श्रीधनंजयकविप्रणीतं।

६८। विषापहारस्तोत्रं।

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्तव्यापारवेदी विनिवृत्तसंगः।
प्रवृद्धकालोप्यजरो वरेण्यः पायादपायात्पुरुषः पुराणः॥ १॥
परैरचिंत्यं युगभारमेकः स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः।
स्तुत्योऽद्य मेऽसौ वृषभो न भानोः किमप्रवेशे विशति प्रदीपः
॥ २॥ तत्याज शक्रः शकनाभिमानं नाहं त्यजामि स्तवनानु-
बंधं। स्वल्पेन बोधेन ततोधिकार्थं वातायनेनेव निरूपयामि॥
त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः। वक्तुं
कियान्कीदृशमित्यशक्यः स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु॥४॥
व्यापीडितं बालमिवात्मदोषैरुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वं।
हिताहितान्वेषणमांद्यभाजः सर्वस्य जंतोरसि बालवैद्यः॥५॥
दाता न हर्ता दिवसं विवस्वानद्यश्व इत्यच्युतदर्शिताशः।
सव्याजमेवं गमयत्यशक्तः क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय॥६॥
उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखं।
सदावदातद्युतिरेकरूपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि॥ ७॥
अगाधताब्धेः स यतः पयोधिर्मेरोश्च तुंगा प्रकृतिः स यत्र॥
द्यावापृथिव्योः पृथुता तथैव व्याप त्वदीया भुवनांतराणि॥८॥
तवानवस्था परमार्थतत्त्वं त्वया न गीतः पुनरागमश्च। दृष्टं
विहाय त्वमदृष्टमैषीर्विरुद्धवृत्तोऽपि समंजसस्त्वं॥ ९॥ स्मरः
सुदग्धो भवतैव तस्मिन्नुद्धूलितात्मा यदि नाम शंभुः। अशेत
वृंदोपहतोऽपि विष्णुः किं गृह्यते येन भवानजागः॥ १०॥
स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वं॥

स्वतोंबुराशेर्महिमा न देव स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥११॥
कर्मस्थितिं जंतुरनेकभूमिं नयत्यमुं सा च परस्परस्य। त्वं
नेतृभावं हि तयोर्भवाब्धौ जिनेंद्र नौनाविकयोरिवाख्यः ॥१२॥
सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्धर्माय पापानि समाचरंति।
तैलाय बालाः सिकतासमूहं निपीडयंति स्फुटमत्वदीयाः ॥१३॥
विषापहारं मणिमौषधानि मंत्रं समुद्दिश्य रसायनं च। भ्राम्यं-
त्यहो न त्वमतिस्मरंति पर्यायनामानि तवैव तानि ॥ १४ ॥
चित्ते न किंचित्कृतवानसि त्वं देवः कृतश्चेतसि येन सर्वं।
हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः ॥१५॥
त्रिकालतत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकीस्वामीति संख्यानियतेरमीषां।
बोधाधिपत्यं प्रति नाभविष्यंस्तेन्येपि चेद्व्याप्स्यदमूनपीदं
॥ १६ ॥ नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं नागम्यरूपस्य तवो-
पकारि। तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानोरुद्बिभ्रतच्छत्रमिवाद-
रेण ॥ १७ ॥ क्वोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेशः स चेत्किमिच्छा-
प्रतिकूलवादः। क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं तन्नो यथातथ्य-
मवेविजं ते ॥ १८ ॥ तुंगात्फलं यत्तदकिंचनाच्च प्राप्यं समृद्धान्न
धनेश्वरादेः। निरंभसोप्युच्चतमादिवाद्रेर्नैकापि निर्याति धुनी
पयोधेः ॥१९॥ त्रैलोक्यसेवानियमाय दंडं दध्रे यदिंद्रो विन-
येन तस्य। तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं तत्कर्मयोगाद्यदि
वा तवास्तु ॥ २० ॥ श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः श्रीमान्न
कश्चित्कृपणं त्वदन्यः। यथा प्रकाशस्थितमंधकारस्थायी-
क्षतेऽसौ न तथा तमःस्थं ॥ २१ ॥ स्ववृद्धिनिःश्वासनिमेष-
भाजि प्रत्यक्षमात्मानुभवेपि मूढः। किं चाखिलज्ञेयविवर्तिबोध-

स्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः ॥ २२ ॥ तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य । तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजंति ॥ २३ ॥ दत्तस्त्रिलोक्यं पटहोभिभूताः सुरासुरास्तस्य महान्स लाभः । मोहस्य मोह स्त्वयि को विरोद्धुर्मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः ॥ २४ ॥ मार्ग स्त्वयैको ददृशे विमुक्तेश्चतुर्गतीनां गहनं परेण । सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन त्वं मा कदाचिद्भुजमालुलोके ॥ २५ ॥ स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोंभः कल्पांतवातोंबुनिधेर्विघातः । संसार भोगस्य वियोगभावो विपक्षपूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ॥ २६ ॥ अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्तज्जानतोन्यं न तु देवतेति । हरिन्मणिं काचधिया दधानस्तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः ॥२७॥ प्रशस्तवाचश्चतुराः कषायैर्दग्धस्य देवव्यवहारमाहुः । गतस्य दीपस्य हि नंदितत्वं दृष्टं कपालस्य च मंगलत्वं ॥२८॥ नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तं हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः । निर्दोषतां के न विभावयंति ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण ॥२९॥ न क्वापि वांछा ववृते च वाक्ते काले क्वचित्कोपि तथा नियोगः । न पूरयाम्यंबुधिमित्युदंशुः स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥३०॥ गुणा गभीराः परमाः प्रसन्ना बहुप्रकारा बहवस्तवेति । दृष्टोयमन्तः स्तवने न तेषां गुणो गुणानां किमतः परोस्ति ॥३१॥ स्तुत्या परं नाभिमतं हि भक्त्या स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि । स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं केनाप्युपायेन फलं हि साध्यं ।३२। ततस्त्रिलोकीनगराधिदेवं नित्यं परं ज्योतिरनंतशक्तिं । अपुण्यपापं परपुण्यहेतुं नमाम्यहं वंद्यमवंदितारं ॥ ३३ ॥ अशब्द-

मस्पर्शमरूपगंधं त्वां नीरसं तद्विषयावबोधं ॥ सर्वस्य मातारममेयमन्यैर्जिनेंद्रमस्मार्यमनुस्मरामि ॥ ३४ ॥ अगाधमन्यैर्मनसाप्यलंघ्यं निष्किंचनं प्रार्थितमर्थवद्भिः । विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं पतिं जिनानां शरणं व्रजामि ॥३५॥ त्रैलोक्यदीक्षागुरवे नमस्ते यो वर्धमानोपि निजोन्नतोभूत् । प्राग्गंडशैलः पुनरद्रिकल्पः पश्चान्न मेरुः कुलपर्वतोभूत ॥ ३६ ॥ स्वयंप्रकाशस्य दिवा निशा वा न बाध्यता यस्य न बाधकत्वं । न लाघवं गौरवमेकरूपं बंदे विभुं कालकलामतीतं ॥ ३७ ॥ इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्वरं न याचे त्वमुपेक्षकोसि । छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥ ३८ ॥ अथास्ति दित्सा यदि वोपरोधस्त्वय्येव सक्तां दिश भक्तिबुद्धिं । करिष्यते देव तथा कृपां मे को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः ॥ ३९ ॥ वितरति विहिता यथाकथंचिज्जिन विनताय मनीषितानि भक्तिः । त्वयि नुतिविषया पुनर्विशेषाद्दिशति सुखानि यशो 'धनंजयं' च ॥ ४० ॥

इति श्रीधनंजयकृतं विषापहारस्तोत्रं ।

स्वर्गीय कविवर शांतिदासकृत

६९ । विषापहारभाषा ।

दोहा ।

नमों नाभिनंदन बली, तत्त्वप्रकाशनहार ।
तुर्यकालकी आदिमें, भये प्रथम अवतार ॥ १ ॥

काव्य वा रोला छंद ।

निज आतममें लीन ज्ञानकरि व्यापत सारे । जानत सब

व्यापार संग नहिं कछू तिहारे ॥ बहुत कालके हौ फुनि जरा न देह तिहारी । ऐसे पुरुष पुरान करहु रछ्या जु हमारी ॥ १ ॥ परकरिकैं जु अचिंत्य भार जुगको अति भारो । सो एकाकी भयो वृषभ कीनो निसतारो ॥ करि न सकें जोगिंद्र तॆवन मैं करिहौं ताको । भानु प्रकाश न करै दीपतम हरै गुफाको ॥ २ ॥ स्तवनकरनको गर्भ तज्यो सक्री वहु ज्ञानी । मैं नहिं तजौं कदापि स्वल्पज्ञानी शुभध्यानी ॥ अधिक अर्थकौं कहूं यथाविधि बैठि झरोकै । जालांतरधरि अॆक्ष भूमिधॆरकौं जु विलोकै ॥ ३ ॥ सकल जगतकौं देखत अर सबके तुम ज्ञायक । तुमकौं देखत नाहिं नाहिं जानत सुखदायक ॥ हौ किसाक तुम नाथ और कितनाक बखानै । तातैं थुति नहिं बनै असक्ती भये सयानै ॥ ४ ॥ बालकवत निजदोषथकी इहलोक दुखी अति । रोगरहित तुम कियो कृपाकरि देव भुवनपति ॥ हित अनहितकी समझिमांहि हैं मंदमती हम । सब प्राणिनके हेत नाथ तुम बालवैद सम ॥५॥ दाता हरता नाहिं भानु सबकौं बहकावत । आज कालके छलकरि नित-प्रति दिवस गुमावत ॥ हे अच्युत जो भक्त नमैं तुम चरन-कमलकौं । छिनक एकमैं आप देत मनवांछित फलकौं ॥६॥ तुमसौं सन्मुख रहै भक्तिसौं सो सुख पावै । जो सुभावतैं विमुख आपतैं दुखहि बढावै ॥ सदा नाथ अवदात एकद्युति रूप गुसांई । इन दोन्योंके हेत स्वच्छ दरपणवत झांई ॥७॥ है अगाध जलनिधी समदजल है जितनो ही । मेरू तुंग-

१ स्तवन । २ आंख । ३ पहाड़को ।

सुभाव सिखरतैं उच्च भन्यो ही ॥ वसुधा अर सुरलोक एहु इसभांति सई है । तेरी प्रभुता देव भुवनिकूं लंघि गई है ॥ ८॥ है अनवस्था धर्म परम सो तत्त्व तुमारे । कह्यो न आवागमन प्रभू मतमांहि तिहारे ॥ दृष्ट पदारथ छांडि आप इच्छति अदृष्टकौं । विरुधवृत्ति तव नाथ समंजस होय सृष्टकौं ॥ ९ ॥ कामदेवको किया भस्म जगत्राता थे ही । लीनी भस्म लपेटि नाम संभू निजदेही ॥ सूतो होय अचेत विष्णु वनिताकरि हारयो । तुमकौं काम न गहै आप घट सदा उजारयो ॥१०॥ पापवान वा पुन्यवान सो देव बतावै । तिनके औगुन कहैं नाहि तू गुणी कहावै ॥ निज सुभावतैं अंवुराशि निज महिमा पावै । स्तोक सरोवर कहे कहा उपमा बढि जावै ॥ ११ ॥ कर्मनकी थिति जंतु अनेक करै दुखकारी । सो थिति बहु परकार करै जीवनकी ख्वारी ॥ भवसमुद्रके मांहि देव दोन्योंके साखी । नाविक नाव समान आप वाणीमें भाखी ॥ १२ ॥ सुखकौं तो दुख कहै गुणनकूं दोष विचारै । धर्म करनके हेत पाप हिरदै विच धारै ॥ तेल निकासन काज धूलिकौं पेलै घानी । तेरे मतसों बाह्य इसे जे जीव अज्ञानी ॥ १३ ॥ विष मोचै ततकाल रोगकौं हरै ततच्छन । मणि औषधी रसांण मंत्र जो होय सुलच्छन ॥ ए सब तेरे नाम सुबुद्धी यौं मन धरि हैं । भ्रमत अपरजन वृथा नहीं तुम सुमिरन करिहैं ॥ १४ ॥ किंचित भी चितमांहिं आप कछु करो न स्वामी । जे राखैं चितमाहिं आपको शुभपरिणामी ॥ हस्तामलवत लखैं जगतकी परिणति जेती । तेरे चितके

चाह तोउ जीवै सुखसेती ॥ १५ ॥ तीनलोक तिरकालमाहिं तुम जानत सारी। स्वामी इनकी संख्या थी तितनीहि निहारी ॥ जो लोकादिक हुते अनंते साहिब मेरा। तेऽपि झलकते आनि ज्ञानका ओर न तेरा ॥ १६ ॥ है अगम्य तवरूप करै सुरपति प्रभु सेवा। ना कछु तुम उपकार हेत देवनके देवा ॥ भक्ति तिहारी नाथ इंद्रके तोषित मनको। ज्यौं रवि सन्मुख छत्र करै छाया निज तनको ॥ १७ ॥ वीतरागता कहां कहां उपदेश सुखाकर। सो इच्छाप्रतिकूल वचन किम होय जिनेसर ॥ प्रतिकूली भी वचन जगतकूं प्यारे अतिही। हम कछु जानी नाहिं तिहारी सत्यासतिही ॥ १८ ॥ उच्चप्रकृति तुम नाथ संग किंचित न धरनतैं। जो प्रापति तुम थकी नाहि सो धनेसुरनतैं ॥ उच्चप्रकृति जलविना भूमिधर धुनी प्रकासै। जलधि नीरतैं भर्‍यो नदी ना एक निकासै ॥ १९ ॥ तीन लोकके जीव करो जिनवरकी सेवा। नियमथकी करदंड धर्‍यो देवनके देवा ॥ प्रातिहार्य तौ बनै इंद्रके बनैं न तेरे। अथवा तेरे बनैं तिहारे निमित परेरे ॥ २० ॥ तेरे सेवक नाहि इसे जे पुरुष हीनधन। धनवानोंकी ओर लखत वे नाहि लखत पन ॥ जैसें तमथिति किये लखत परकास थितीकूं। याकूं सूझत नाहिं तमथिती मंदमतीकूं ॥ २१ ॥ निजवृध सासोसास प्रगट लोचन टमकारा। तिनकौं वेदत नाहिं लोकजन मूढ विचारा ॥ सकल ज्ञेय ज्ञायक अमूरति ज्ञान सुलच्छन। सो किमि जान्यो जाय देव तव रूप विचच्छन ॥ २२ ॥ नाभिरायके पुत्र पिता प्रभु भरततने हैं। कुल

प्रकाशिकैं नाथ तिहारो तवन भनें हैं ॥ ते लघुधी असमान गुननकौं नाहिं भजे हैं । सुवरन आयो हाथि जानि पाषान तजै हैं ॥२३॥ सुरासुरनको जीति मोहने ढोल बजाया। तीन लोकमें किये सकल वशि यों गरभाया॥ तुम अनंत बलवंत नाहिं ढिग आवन पाया। करि विरोध तुमथकी मूलतैं नाश कराया ॥ २४॥एक मुक्तिका मार्ग देव तुमने परकास्या। गहन चतुरगति-मार्ग अन्य देवनकूं भास्या ॥ 'हम सब देखनहार' इसीविधि भाव सुमिरिके । भुज न विलोको नाथ कदाचित गर्भ जु धरिके ॥२५॥ केतुविपक्षी अर्कतनो फुनि अग्नितनो जल। अंबुनिधीअरि प्रलयकालको पवन महाबल ॥ जगतमाहिं जे भोग वियोग विपक्षी हैं निति। तेरो उदयो है विपक्षतैं रहित जगतपति ॥ २६ ॥ जाने विन हू नवत आपको जो फल पावै। नमत अन्यको देव जानि सो हाथ न आवै ॥ हरी मणीकूं काच, काचकूं मणी रटत है ॥ ताकी बुधिमें भूल, मूल्य मणिको न घटत है ॥२७॥ जे विवहारी जीव वचनमें कुशल सयानें । ते कषायकरि दग्ध नरनकौं देव बखानें ॥ ज्यों दीपक बुझि जाय ताय कहि 'नंदि' भयो है। भग्न घडेको कहैं कलस ए मँगलि गयो है ॥ २८ ॥ स्यादवाद संजुक्त अर्थको पगट बखानत। हितकारी तुम वचन श्रवनकरि को नहिं जानत॥ दोषरहित ए देव शिरोमणि वक्ता जगगुर। जो ज्वरसेती मुक्त भयो सो कहत सरलसुर ॥ २९ ॥ विन-वांछा ए वचन आपके खिरैं कदाचित। है नियोग ए कोपि जगतको करत सहजहित ॥ करै न वांछा इसी चंद्रमा पूरो

जलनिधि। सीतरश्मिकूं पाय उदधि जल बढै स्वयंसिधि।३०। तेरे गुणगंभीर परम पावन जगमाई। बहुप्रकार प्रभु हैं अनंत कछु पार न पाई॥ तिन गुणानको अंत एक याही विधि दीसै। ते गुण तुझ ही माहिं औरमैं नाहिं जगीसैं॥ ३१॥ केवल थुति ही नाहि भक्तिपूर्वक हम ध्यावत। सुमरन प्रणमन तथा भजनकरि तुमगुण गावत॥ चितवन पूजन ध्यान नमनकरि नित आराधैं। को उपावकरि देव सिद्ध फलको हम साधैं॥ ३२॥ त्रैलोकी नगराधि देव नित ज्ञानप्रकाशी। परमज्योति परमातमशक्ति अनंती भासी॥ पुन्यपापतैं रहित पुन्यके कारण स्वामी। नमों नमों जगवंद्य अवंद्यक नाथ अकामी॥३३॥ रस सपरस अर गंध रूप नहिं शब्द तिहारे। इनिके विषय विचित्र भेद सब जाननहारे॥ सब जीवनप्रतिपाल अन्यकरि हैं अगम्य गन। सुमरनगोचर नाहिं करौं जिन तेरो सुमिरन॥ ३४॥ तुम अगाध जिनदेव चित्तके गोचर नाहीं। निःकिंचन भी प्रभू धनेश्वर जाचत साईं॥ भये विश्वके पार दृष्टिसों पार न पावै। जिनपति एम निहारि संतजन सरनै आवै॥ ३५॥ नमों नमों जिनदेव जगतगुरु शिक्षादायक। निजगुणसेती भई उन्नती महिमालायक॥ पाहनखंड पहार पछैं ज्यों होत और गिर। त्यों कुलपर्वत नाहिं सनातन दीर्घ भूमिधर॥ ३६॥ स्वयं प्रकाशी देव रैन दिनकूं नहिं बाधित। दिवस रात्रि भी छतैं आपकी प्रभा प्रकासित॥ लाघव गौरव नाहिं एकसो रूप तिहारो। कालकलातैं रहित प्रभूसूं नमन हमारो।॥ ३७॥ इहविधि बहु

परकार देव तव भक्ति करी हम। जांचूं वर न कदाचि दीन है रागरहित तुम ॥ छाया बैठत सहज वृक्षके नीचे है है। फिर छायाकौं जाचत यामैं प्रापति कै है ॥३८॥ जो कुछ इच्छा होय देनकी तौ उपगारी। द्यो बुधि ऐसी करूं प्रीतिसौं भक्ति तिहारी॥ करों कृपा जिनदेव हमारे परि है तोषित। सनमुख अपनो जानि कौन पंडित नाहिं पोषित।३९। यथाकथंचित भक्ति रचै विनईजन के ही। तिनकूं श्रीजिनदेव मनोवांछित फल दे ही॥ फुनि विशेष जो नमत संतजन तुमको ध्यावैं। सो सुख जस 'धन-जय' प्रापति है शिवपद पावैं।४०। श्रावक माणिकचंद सुबुद्धी अर्थ बताया। सो कवि 'शांतीदास' सुगमकरि छंद वनाया॥ फिरिफिरिकै ऋषि 'रूपचंद' ने करी प्रेरणा। भाषा स्तोतर विपापहारकी पढो भविजना ॥४१॥

इति श्रीविषापहार स्तोत्र समाप्त।

श्रीभूपालकविप्रणीता

७०। जिनचतुर्विंशतिका।

श्रीलीलायतनं महीकुलगृहं कीर्तिप्रमोदास्पदं
वाग्देवीरतिकेतनं जयरमाक्रीडानिधानं महत्।
स स्यात्सर्वमहोत्सवैकभवनं यः प्रार्थितार्थप्रदं
प्रातः पश्यति कल्पपादपदलच्छायं जिनांघ्रिद्वयं॥ १॥

शांतं वपुः श्रवणहारि वचश्चरित्रं
सर्वोपकारि तव देव ततः श्रुतज्ञाः।
संसारमारवमहास्थलरुद्रसांद्र-
च्छायामहीरुह भवंतमुपाश्रयंते॥ २॥

स्वामिन्नद्य विनिर्गतोऽस्मि जननीगर्भांधकूपोदरा-
दद्योद्घाटितदृष्टिरस्मि फलवज्जन्मास्मि चाद्य स्फुटं।
त्वामद्राक्षमहं यदक्षयपदानंदाय लोकत्रयी-
नेत्रेंदीवरकाननेंदुममृतस्यंदिप्रभाचंद्रिकं ॥ ३ ॥
निःशेषत्रिदशेंद्रशेखरशिखारत्नप्रदीपावली
सांद्रीभूतमृगेंद्रविष्टरतटीमाणिक्यदीपावलिः।
केयं श्रीः क्व च निःस्पृहत्वमिदमित्यूहातिगस्त्वादृशः
सर्वज्ञानदृशश्चरित्रमहिमा लोकेश ! लोकोत्तरः ॥ ४ ॥
राज्यं शासनकारिनाकपति यत्त्यक्तं तृणावज्ञया
हेलानिर्दलितत्रिलोकमहिमा यन्मोहमल्लो जितः।
लोकालोकमपि स्वबोधमुकुरस्यांतः कृतं यत्त्वया
सैषाश्चर्यपरम्परा जिनवर क्वान्यत्र संभाव्यते ॥ ५ ॥
दानं ज्ञानधनाय दत्तमसकृत्पात्राय सद्वृत्तये
चीर्णान्युग्रतपांसि तेन सुचिरं पूजाश्च बह्व्यः कृताः।
शीलानां निचयः सहामलगुणैः सर्वः समासादितो
दृष्टस्त्वं जिन येन दृष्टिसुभगः श्रद्धापरेण क्षणं ॥ ६ ॥
प्रज्ञापारमितः स एव भगवान्पारं स एव श्रुत-
स्कंधाब्धेर्गुणरत्नभूषण इति श्लाघ्यः स एव ध्रुवं।
नीयंते जिन येन कर्णहृदयालंकारतां त्वद्गुणाः
संसाराहिविषापहारमणयस्त्रैलोक्यचूडामणेः ॥ ७ ॥
जयति दिविजवृंदान्दोलितैरिंदुरोचि-
र्निचयरुचिभिरुच्चैश्चामरैर्वीज्यमानः।
जिनपतिरनुरज्यन्मुक्तिसाम्राज्यलक्ष्मी-

युवतिनवकटाक्षक्षेपलीलां दधानैः ॥ ८ ॥
देवः श्वेतातपत्रत्रयचमरिरुहाशोकभाश्चक्रभाषा-
पुष्पौघासारसिंहासनसुरपटहैरष्टभिः प्रातिहार्यैः ।
साश्चर्यैर्भ्राजमानः सुरमनुजसभांभोजिनीभानुमाली
पायान्नः पादपीठीकृतसकलजगत्पालमौलिर्जिनेंद्रः ॥९॥
नृत्यत्स्वर्दंतिदंतांबुरुहवननटन्नाकनारीनिकायः
सद्यस्त्रैलोक्ययात्रोत्सवकरनिनदातोद्यमाद्यन्निलिंपः ।
हस्तांभोजातलीलाविनिहितसुमनोद्दामरम्यामरस्त्री-
काम्यः कल्याणपूजाविधिषु विजयते देव देवागमस्ते ।१०।
चक्षुष्मानहमेव देव भुवने नेत्रामृतस्यंदिनं
त्वद्वक्त्रेंदुमतिप्रसादसुभगैस्तेजोभिरुद्भासितं
येनालोकयता मयानतिचिराच्चक्षुः कृतार्थीकृतं
द्रष्टव्यावधिवीक्षणव्यतिकरव्याजृंभमाणोत्सवं ॥ ११ ॥
कंतोः सकांतमपि मल्लमवैति कश्चि-
न्मुग्धो मुकुंदमरविंदजमिंदुमौलिं ।
मोघीकृतत्रिदशयोषिदपांगपात-
स्तस्य त्वमेव विजयी जिनराजमल्लः ॥ १२ ॥
किसलयितमनल्पं त्वद्विलोकाभिलाषा-
त्कुसुमितमतिसांद्रं त्वत्समीपप्रयाणात् ।
मम फलितममंदं त्वन्मुखेंदोरिदानीं
नयनपथमवाप्ताद्देव पुण्यद्रुमेण ॥ १३ ॥
त्रिभुवनवनपुष्प्यत्पुष्पकोदंडदर्प-
प्रसरदवनवांभोमुक्तिसूक्तिप्रसूतिः ।

स जयति जिनराजव्रातजीमूतसंघः
शतमखशिखिनृत्यारंभनिर्बंधबंधुः ॥ १४ ॥

भूपालस्वर्गपालप्रमुखनरसुरश्रेणिनेत्रालिमाला-
लीलाचैत्यस्य चैत्यालयमखिलजगत्कौमुदींदोर्जिनस्य।
उत्तंसीभूतसेवांजलिपुटनलिनीकुड्मलास्त्रिः परीत्य
श्रीपादच्छाययापस्थितभवदवथुः संश्रितोस्मीव मुक्तिं १५

देव त्वदंघ्रिनखमंडलदर्पणेऽस्मि-
न्नर्घ्ये निसर्गरुचिरे चिरदृष्टवक्त्रः।
श्रीकीर्तिकांतिधृतिसंगमकारणानि
भव्यो न कानि लभते शुभमंगलानि ॥ १६ ॥

जयति सुरनरेंद्रश्रीसुधानिर्झरिण्याः
कुलधरणिधरोयं जैनचैत्याभिरामः।
प्रविपुलफलधर्मानोकहाग्रप्रवाल-
प्रसरशिखरशुंभत्केतनः श्रीनिकेतः ॥ १७ ॥

विनमदमरकांताकुंतलाक्रांतिकांति-
स्फुरितनखमयूखद्योतिताशांतरालः।
दिविजमनुजराजव्रातपूज्यक्रमाब्जो
जयति विजितकर्मारातिजालो जिनेंद्रः ॥ १८ ॥

सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमंगलाय
द्रष्टव्यमस्ति यदि मंगलमेव वस्तु।
अन्येन किं तदिह नाथ तवैव वक्त्रं
त्रैलोक्यमंगलनिकेतनमीक्षणीयं ॥ १९ ॥

त्वं धर्मोदयतापसाश्रमशुकस्त्वं काव्यबंधक्रम-

क्रीडानंदनकोकिलस्त्वमुचितः श्रीमल्लिकाषट्पदः ।
त्वं पुन्नागकथारविंदसरसी हंसस्त्वमुत्तंसकैः
कैर्भूपाल न धार्यसे गुणमणिस्रङ्मालिभिर्मौलिभिः ॥२०॥
शिवसुखमजरश्रीसंगमं चाभिलष्य
स्वमपि नियमयंति क्लेशपाशेन केचित् ।
वयमिह तु वचस्ते भूपतेर्भावयंत-
स्तदुभयमपि शश्वल्लीलया निर्विशामः ॥ २१ ॥
देवेंद्रास्तव मज्जनानि विदधुर्देवांगना मंगला-
न्यापेठुः शरदिंदुनिर्मलयशो गंधर्वदेवा जगुः ।
शेषाश्चापि यथानियोगमखिलाः सेवां सुराश्चक्रिरे
तत्किं देव वयं विदध्म इति नश्चित्तं तु दोलायते ॥२२॥
देव त्वज्जन्माभिषेकसमये रोमांचसत्कंचुकै-
र्देवेंद्रैर्यदनर्ति नर्त्तनविधौ लब्धप्रभावैः स्फुटं ।
किंचान्यत्सुरसुंदरीकुचतटप्रांतावनद्धोत्तम-
प्रेंखद्वल्लकिनादझंकृतमहो तत्केन संवर्ण्यते ॥ २३ ॥
देव त्वत्प्रतिबिंबमंबुजदलस्मेरक्षणं पश्यतां
यत्रास्माकमहो महोत्सवरसो दृष्टेरियान्वर्तते ।
साक्षात्तत्र भवंतमीक्षितवतां कल्याणकाले तदा
देवानामनिमेषलोचनतया वृत्तः स किं वर्ण्यते ॥२४॥
दृष्टं धाम रसायनस्य महतां दृष्टं निधीनां पदं
दृष्टं सिद्धरसस्य सद्म सदनं दृष्टं च चिंतामणेः ।
किं दृष्टैरथवानुषंगिकफलैरेभिर्मयाद्य ध्रुवं
दृष्टं मुक्तिविवाहमंगलगृहं दृष्टे जिनश्रीगृहे ॥ २५ ॥

दृष्टस्त्वं जिनराजचंद्रविकसद्भूपेंद्रनेत्रोत्पलैः
स्नातं त्वन्नुतिचंद्रिकांभसि भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे।
नीतश्चाद्य निदाघजः क्लमभरः शांतिं मया गम्यते
देव! त्वद्गतचेतसैव भवतो भूयात्पुनर्दर्शनं ॥ २६ ॥

इति भूपालकविप्रणीता जिनचतुर्विंशतिका समाप्ता।

कविवर भूधरदासजीकृत।

७१। भूपालचतुर्विंशति भाषा।

दोहा।

सकल सुरासुर पूज नित, सकल सिद्धिदातार।
जिनपद बंदू जोर कर, अशरन जन आधार॥॥ १॥

चौपाई छन्द १५ मात्रा।

श्रीसुखवासमहीकुलधाम। कीरतिहर्षणथलअभिराम॥
सरसुतिके रतिमहल महान। जय जुवतीको खेलन थान॥
अरुण वरण बंछित बरदाय। जगतपूज्य ऐसे जिन पाय॥
दर्शन प्राप्त करै जो कोय। सब शिवथानक सो जन होय॥१॥
निर्विकार तुम सोमशरीर। श्रवणसुखद वाणी गंभीर॥
तुम आचरण जगतमें सार। सब जीवनको है हितकार॥
महानिंद भवमारू देश। तहां तुंग तरु तुम परमेश॥
सघनछाहिंमंडितछविदेत। तुम पंडित सेवैं सुख हेत॥ २॥
गर्भकूपतैं निकस्यो आज। अब लोचन उघरे जिनराज॥
मेरो जन्मसफल भयो अबै। शिवकारण तुम देखे जबै॥
जगजननैनकमलबनखंड। विकसावनशशिशोकविहंड॥
आनँदकरनप्रभातुमतणी। सोई अमी झरन चांदणी॥ ३।

सब सुरेंद्र शेखर शुभ रैन। तुम आसन तट माणक ऐन॥
दोऊं दुति मिल झलकैं जोर। मानों दीपमाल दुहु ओर॥
यह संपति अरु यह अन चाह। कहां सर्वज्ञानी शिवनाह॥
तातैं प्रभुता है जगमांहिं। सही असम है संशय नांहिं॥४॥
सुरपतिआन अखंडित बहै। तृण ज्यों राजतज्यो तुम वहै॥
जिन छिनमैं जगमहिमा दली। जीत्यो मोह शत्रु बहुबली।
लोकालोक अनंत अशेष। कीनो अंत ज्ञानसों देष।
प्रभु प्रभाव यह अद्भुत सबै। अवर देवमैं भूल न फबै॥५॥
पात्रदान तिन दिन दिन दियो। तिन चिरकाल महातप कियो॥
बहु बिधि पूजाकारक वही। सर्व शील उन पाले सही॥
और अनेक अमलगुणरास। प्रापति आय भये सब तास॥
जिन तुमशरधासों कर टेक। दृगबल्लभ देखे छिन एक॥६॥
त्रिजगतिलक तुम गुणगण जेह। भवभुजंगविषहरमणि तेह॥
जो उरकाननमांहिं सदीव। भूषण कर पहरैं भविजीव॥
सोई महामती संसार। सो श्रुत सागर पहुंचै पार॥
सकल लोकमें शोभा लहै। महिमा जोग जगतमें वहै॥७॥

दोहा छंद।

सुरसमूह ढोलैं चमर, चंदकिरणद्युति जेम।
नवतनवधूकटाक्षतैं, चपल चलैं अतिएम॥
छिन छिन ढलकैं स्वामिपर, सोहत ऐसो भाव।
किधों कहत सिधि लच्छिसों, जिनपतिके ढिंग आव॥ ८॥

चौपाई छंद १५ मात्रा।

शीशछत्र सिंहासन तलैं। दिपै देहदुति चामर ढलैं॥

बाजै दुंदुभि बरसैं फूल । ढिगअशोक बाणी सुखमूल ॥
इहिविधि अनुपम शोभा मान । सुरनरसभा पदमनीभान ॥
लोकनाथ बंदैं शिरनाय । सो हम शरण होहु जिनराय ॥ ९ ॥
सुरगजदंतकमलबनमाहिं । सुरनारीगण नाचत जाहिं ॥
बहुविधि बाजे बाजैं थोक । सुन उछाह उपजै तिहुलोक ॥
हर्षत हरि जै जै उच्चरैं । सुमनमाल अपछर कर धरैं ॥
यों जन्मादि समय तुम होय । जयो देव देवागम सोय ॥१०॥
तोषबढावन तुम मुखचंद । जननयनामृतकरन अमंद ॥
सुंदर दुतिकर अधिक उजास । तीनभवन नहिं उपमा तास ॥
ताहि निरखि सनयन हम भये । लोचन आज सुफल करलये ॥
देखनयोग जगतमें देख । उमग्यो उर आनंद विशेख ॥११॥
कैयक यों मानैं मतिमंद । विजितकाम विधि ईश मुकुंद ॥
ये तो हैं वनितावश दीन । कामकटकजीतनबलहीन ॥
प्रभु आगैं सुरकामिनि करैं । ते कटाक्ष सब खाली परैं ॥
यातैं मदन विध्वंशन वीर । तुम भगवंत और नहिं धीर ।१२।
दर्शनप्रीति हिये जब जगी । तबै आम्रकोंपल बहु लगी ॥
तुम समीप उठ आवन ठयो । तबसों सघन प्रफुलित भयो ॥
अबहूं निज नैननढिंग आय । मुखमयंक देख्यो जगराय ॥
मेरो पुन्नविरख इस बार । सुफलफल्यो सब सुखदातार ।१३।

दोहा छंद ।

त्रिभुवन वनमें विस्तरी, कामदवानल जोर ।
वाणीवरषाभरणसों, शांति करहु चहुँ ओर ॥
इंद्र मोर नाचैं निकट, भक्तिभाव धर मोह ।

मेघ सघन चौबीस जिन, जैवंते जग होय ॥ १४ ॥

चौपाई छंद १५ मात्रा।

भविजनकुमुदचंद सुखदैन । सुरनरनाथप्रमुखजगजैन ॥
ते तुम देख रमैं इह भांति । पहुपगेह लह ज्यों अलिपांत ॥
शिरधर अंजुलि भक्तिसमेत । श्रीगृहप्रति परिदक्षण देत ॥
शिवसुखकीसी पापति भई । चरणछांहसों भवतपगई ॥१५॥
वह तुमपदनखदर्पण देव । परम पूज्य सुंदर स्वयमेव ॥
तामैं जो भविभागविशाल । आननअविलोकै चिरकाल ॥
कमलाकीरति कांति अनूप । धीरजप्रमुख सकल सुखरूप ॥
वे जगमंगल कौन महान । जो न लहै वह पुरुष प्रधान ।१६।
इंद्रादिक श्रीगंगा जेह । उत्पतिथान हिमाचल येह ॥
जिनमुद्रामंडित अतिलशै । हर्ष होय देखे दुख नशै ॥
शिखर ध्वजागण सोहैं एम । धर्मसुतरुवर पल्लव जेम ॥
यों अनेक उपमाआधार । जयो जिनेश जिनालय सार ॥१७॥
शीश नवाय नमत सुरनार । केशकांतिमिश्रित मनहार ॥
नखउद्योत वरतै जिनराज । दशदिशपूरित किरणसमाज ॥
स्वर्गनागनरनायक संग । पूजत पायपद्म अतुलंग ॥
दुष्टकर्मदलदलन सुजान । जैवंते बरतो भगवान ॥ १८ ॥
सोकर जागै जो धीमान । पंडित सुधी सुमुख गुणवान ॥
आपन मंगलहेतु प्रशस्त । अवलोकन चाहै कछु बस्त ॥
और वस्तु देखै किस काज । जो तुम मुखराजै जिनराज ॥
तीनलोकको मंगलथान । प्रेक्षणीय तिहुं जगकल्यान ॥१९॥
धर्मोदय तापसगृहकीर । काव्यबंधवनपिक तुम वीर ॥

मोक्षमल्लिका मधुपरसाल । पुन्यकथा कजसरसि मराल ॥
तुम जिनदेव सुगुणमणिमाल । सर्वहितंकर दीनदयाल ॥
ताको कौन न उन्नतकाय । धरै किरीटमाहिं हर्षाय ॥ २० ॥
केई बांछैं शिवपुर बास । केई करैं स्वर्गसुख आस ॥
पचै पँचानल आदिक ठान । दुःख बंधे जस बँधे अयान ॥
हम श्रीमुखबानी अनुभवैं । सरधा पूरब हिरदै ठवैं ॥
तिस प्रभाव आनंदित रहैं । स्वर्गादिक सुख सहजे लहैं ॥२१॥
न्होनमहोच्छव इंद्रन कियो । सुरतिय मिल मंगल पढ़लियो ॥
सुयशशरदचंद्रोपम सेत । सो गंधर्व गान करलेत ॥
और भक्ति जो जो जिसजोग । शेष सुरन कीनी सुनियोग ॥
अब प्रभु करैं कौनसी सेव । हम चित भयो हिंडोलो एव ।२२।
जिनवर जन्मकल्यानक घोस । इंद्र आप नाचै कर होस ॥
पुलकितअंग पिताघर आय । नाचतबिधिमें महिमा पाय ॥
अमरी बीन बजावै सार । धरी कुचाग्र करत्त झंकार ॥
इहि बिधि कौतुक देख्यो जबै । औसर कौन कह सकै अबै ।२३।
श्रीप्रतिबिंब मनोहर एम । बिकसतबदन कमलदल जेम ॥
ताहि हेर हरखे दृग दोय । कह न सकूं इतनो सुख होय ॥
तब सुरसंग कल्यानक काल । प्रघटरूप जोवै जगपाल ॥
इकटक दिष्ट एक चितलाय । वह आनंद कहा क्यों जाय ।२४।
देख्यो देव रसायन धाम । देख्यो नवनिधिको बिसराम ॥
चिंता रयन सिद्धिरस अबै । जिनगृह देखत देखे सबै ॥
अथवा इन देखे कछु नाहिं । यह अनुगामी फल जगमाहिं ॥
स्वामी सर्यो अपूरव काज । मुक्तिसमीप भई मुझ आज ।२५।

अब बिनवै भूपाल नरेश। देखे जिनवर हरन कलेश ॥
नेत्रकमल विकसे जगचंद्र। चतुर चकोर करण आनंद ॥
थुतिजलसों यों पावन भयो। पापताप मेरो मिट गयो ॥
मो चित है तुम चरणनमाहिं। फिर दर्शन हूज्यो अब जाहिं ॥

छप्पय छंद।

इहिविधि बुद्धिविशालराय भूपाल महाकवि।
कियो ललित थुतिपाठ हिये सब समझ सकै नवि ॥
टीकाके अनुसार अर्थ कछु मनमें आयो।
कहीं शब्द कहिं भाव जोड़ भाषा यश गायो ॥
आतम पवित्रकारण किमपि, बाल ख्याल सो जानियो।
लीज्यो सुधार भूधरतणी, यह विनती बुध मानियो ॥२७॥

॥ इति ॥

७२। महावीराष्टकस्तोत्र

शिखरिणी।

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः समं भांति ध्रौव्य-
व्ययजनिलसंतोंतररहिताः। जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरि-
व यो महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥१॥ अताम्रं
यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पंदरहितं जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यं-
तरमपि। स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला, महावी०
॥२॥ नमन्नाकेंद्राली मुकुटमणिभाजालजटिलं लसत्पादांभो-
जद्वयमिह यदीयं तनुभृतां। भवज्ज्वालाशांत्यै प्रभवति जलं वा
स्मृतमपि, महावीर० ॥३॥ यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह
क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः। लभंते सद्भक्ताः

शिवसुखसमाजं किमु तदा, महावीर० ॥४॥ कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थ-तनयः। अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद्भुतगतिर्, महा-वीर० ॥ ५ ॥ यदीया वाग्गंगा विविधनयकल्लोलविमला बृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति। इदानीमप्येषा बुधजन-मरालैः परिचिता, महावीर० ॥६॥ अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी कामसुभटः कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः। स्फुरन्नित्यानंदप्रशमपदराज्याय स जिनः, महावीर० ॥७॥ महामोहातंकप्रशमनपराकस्मिकभिषङ् निरापेक्षो बंधुर्विदित-महिमामंगलकरः शरण्यः, साधूनां भवभयभृतामुत्तमगुणो, महावीर० ॥ ८ ॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेंदुना कृतं।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिं ॥९॥ इति।

७३। मंगलाष्टकम्।

श्रीमन्नम्रसुरासुरेंद्रमुकुटप्रद्योतरत्नप्रभाभास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनांभोधींदवः स्थायिनः। ये सर्वे जिनसिद्धसूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः। स्तुत्या योगिजनश्च पञ्चगुरवः कुर्वंतु ते मंगलम् ॥ १ ॥ सम्यग्दर्शनबोधवृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं मुक्तिश्रीनगराधिनाथजिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः। धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्र्यालयं, प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ २ ॥ नाभेयादिजिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताश्चतुर्विंशतिः श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश। ये विष्णुप्रतिविष्णुलांगलधराः सप्तोत्तरा

विंशतिस्त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥३॥ देव्योष्टौ च जयादिका द्विगुणिता विद्यादिका देवताः, श्रीतीर्थंकरमातृकाश्च जनका यक्षाश्च यक्ष्यस्तथा। द्वात्रिंशत्त्रिदशाधिपास्तिथिसुरा दिक्कन्यकाश्चाष्टधा दिक्पाला दश चैत्यमी सुरगणाः कुर्वंतु ते मंगलम् ॥ ४ ॥ ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिंगताः पञ्च ये ये चाष्टांगमहानिमित्तिकुशला येऽष्टाविधाश्चारणाः। पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धीश्वराः। सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वंतु ते मंगलम् ॥ ५ ॥ कैलासे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे चम्पायां वसुपूज्यसज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्। शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो। निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वंतु ते मंगलम् ॥ ६ ॥ ज्योतिर्व्यन्तरभावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ तथा जंबूशाल्मलिचैत्यशाखिषु तथा वक्षाररूप्याद्रिषु। इष्वाकारगिरौ च कुंडलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ ७ ॥ यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्। यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संभाविनः स्वर्गिभिः कल्याणानि च तानि पंच सततं कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ ८ ॥

इत्थं श्रीजिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्यसम्पत्प्रदं
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः।
ये शृण्वन्ति पठंति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता
लक्ष्मीराश्रयते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥ ११ ॥

इति मंगलाष्टकं।

७४। अकलंकस्तोत्रं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः।

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितं साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं सांगुलि। रागद्वेषभयामयान्तकजरालोलत्वलोभादयो, नालं यत्पदलंघनाय स महादेवो मया वंद्यते ॥ १ ॥ दग्धं येन पुरत्रयं शरभवा तीव्रार्चिषा वह्निना, यो वा नृत्यति मत्तवत्पितृवने यस्यात्मजो वा गुहः। सोऽयं किं मम शंकरो भयतृषारोषार्तिमोहक्षयं कृत्वा यः स तु सर्ववित्तनुभृतां क्षेमंकरः शंकरः ॥ २ ॥ यत्नाद्येन विदारितं कररुहैर्दैत्येन्द्रवक्षःस्थलं सारथ्येन धनंजयस्य समरे योऽमारयत्कौरवान्। नासौ विष्णुरनेककालविषयं यज्ज्ञानमव्याहतं विश्वं व्याप्य विजृंभते स तु महाविष्णुः सदेष्टो मम ॥ ३ ॥ उर्वश्यामुदपादि रागबहुलं चेतो यदीयं पुनः पात्रीदंडकमंडलुप्रभृतयो यस्याकृतार्थस्थितिम् ॥ आविर्भावयितुं भवंति स कथं ब्रह्माभवेन्मादृशां क्षुत्तृष्णाश्रमरागरोगरहितो ब्रह्माकृतार्थोऽस्तु नः ॥४॥ यो जग्ध्वा पिशितं समत्स्यकवलं जीवं च शून्यं वदन्, कर्त्ता कर्मफलं न भुंक्त इति यो वक्ता स बुद्धः कथम्। यज्ज्ञानं क्षणवर्त्तिवस्तुसकलं ज्ञातुं न शक्तं सदा यो जानन्युगपज्जगत्त्रयमिदं साक्षात्स बुद्धो मम ॥ ५ ॥

स्रग्धरा छंदः।

ईशः किं छिन्नलिंगो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्यात् नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति स कथं सांगनः सात्मजश्च। आर्द्राजः किन्त्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मा-

न्तरायं संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः कोऽत्र धीमानुपास्ते ॥ ६ ॥ ब्रह्मा चर्माक्षसूत्री सुरयुवतिरसावेशविभ्रान्तचेताः शम्भुः खट्वांगधारी गिरिपतितनयापांगलीलानुविद्धः। विष्णुश्चक्राधिपः सन्दुहितरमगमद्गोपनाथस्य मोहादर्हन्विध्वस्तरागो जितसकलभयः कोऽयमेष्वाप्तनाथः ॥ ७॥ एको नृत्यति विप्रसार्य कुकुभां चक्रे सहस्रभुजानेकः शेषभुजंगभोगशयने व्यादाय निद्रायते । दृष्टुं चारुतिलोत्तमामुखमगादेकश्चतुर्वक्त्रतामेते मुक्तिपथं वदंति विदुषामित्येतदत्यद्भुतम् ॥ ८ ॥ यो विश्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भंगिनः पारदृश्वा पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयम्। तं वंदे साधुवंद्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषंतं बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥ ९ ॥ माया नास्ति जटा कपाल मुकुटं चन्द्रो न मूर्द्धावली, खट्वांगं न च वासुकिर्न च धनुः शूलं न चोग्रं मुखं। कामो यस्य न कामिनी न च वृषो गीतं न नृत्यं पुनः सोऽस्मान्पातु निरंजनो जिनपतिः सर्वत्र सूक्ष्मः शिवः ॥१०॥ नो ब्रह्मांकितभूतलं न च हरेः शम्भोर्न मुद्रांकितं नो चन्द्रार्ककरांकितं सुरपतेर्वज्रांकितं नैव च। षड्वक्त्रांकितबौद्धदेवहुतभुग्यक्षोरगैर्नांकितं नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्रमुद्रांकितं ॥ ११ ॥ मौंजीदंडकमंडलुप्रभृतयो नो लाञ्छनं ब्रह्मणो । रुद्रस्यापि जटाकपालमुकुटं कोपीनखट्वांगना । विष्णोश्चक्रगदादिशंखमतुलं बुद्धस्य रक्ताम्बरं नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्रमुद्रांकितं ॥ १२ ॥ नाहंकारवशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलं नैरात्म्यं प्रतिपद्य न-

ऽयंति जने कारुण्यबुद्ध्या मया। राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायोविदग्धात्मनो बौद्धौघान्सकलान् विजित्य स घटः पादेन विस्फालितः ॥ १३ ॥ खट्वांगं नैव हस्ते न च हृदि रचिता लम्बते मुंडमाला भस्मांगं नैव शूलं न च गिरिदुहिता नैव हस्ते कपालं। चन्द्रार्द्धं नैव मूर्द्धन्यपि वृषगमनं नैव कंठे फणीन्द्रः तं बन्दे त्यक्तदोषं भवभयमथनं चेश्वरं देवदेवं ॥ १४ ॥ किं वाद्यो भगवानमेयमहिमा देवोऽकलंकः कलौ काले यो जनतासुधर्मनिहितो देवोऽकलंको जिनः। यस्य स्फारविवेकमुद्रलहरीजालेप्रमेयाकुला। निर्मग्ना तनुतेतरां भगवतीतारा शिरः कम्पनम् ॥ १५ ॥ सा तारा खलु देवता भगवतीमन्यापि मन्यामहे, षण्मासावधिजाड्यसांख्यभगवद्भट्टाकलंकप्रभोः। वाक्कल्लोलपरम्पराभिरमते नूनं मनोमज्जनव्यापारं सहते स्म विस्मितमतिः सन्ताड़ितेतस्ततः ॥

इति श्रीअकलंकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

७५। पार्श्वनाथस्तोत्र।

भुजंगप्रयात छंद

नरेंद्रं फणींद्रं सुरेंद्रं अधीसं। शतेंद्रं सुपूजैं भजैं नाय शीसं ॥ मुनींद्रं गणेंद्रं नमौं जोडि हाथं। नमों देवदेवं सदा पार्श्वनाथं ॥ १ ॥ गजेंद्रं मृगेंद्रं गह्यौ तू छुडावै। महा आगतैं नागतैं तू बचावै ॥ महावीरतैं युद्धमें तू जितावै। महारोगतैं बंधतैं तू छुडावै ॥ २ ॥ दुखीदुःखहर्ता सुखीसुक्खकर्ता। सदा सेवकोंको महानंदभर्ता ॥ हरे यक्ष राक्षस्स भूतं पिशाचं। विषं डांकिनी विघ्नके भय अवाचं। ३। दरिद्रीनको द्रव्यके दान

दीने। अपुत्रीनकौं तू भले पुत्र कीने ॥ महासंकटोंसें निकारै विधाता। सबै संपदा सर्वको देहि दाता ॥ ४ ॥ महाचोरको वज्रको भय निवारै। महापौनके पुंजतैं तू उबारै ॥ महाक्रोधकी अग्निको मेघ—धारा। महालोभ—शैलेशको वज्र भारा ॥५॥ महामोह अंधेरको ज्ञानभानं। महाकर्मकांतारको दौं प्रधानं ॥ किये नाग नागिनं अधोलोकस्वामी। हर्यो मान तू दैत्यको हो अकामी ॥ ६ ॥ तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनं तुही दिव्यचिंतामणी नाग एनं ॥ पशू नर्कके दुःखतैं तू छुडावै। महास्वर्गमें मुक्तिमें तू बसावै ॥७॥ करै लोहको हेमपाषाण नामी। रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी ॥ करै सेव ताकी करैं देव सेवा। सुनै वैन सोही लहै ज्ञानमेवा ॥ ८ ॥ जपै जाप ताको नहीं पाप लागै। धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै ॥ बिना तोहि जाने धरै भव घनेरे। तुम्हारी कृपातैं सरैं काज मेरे ॥ ९ ॥

दोहा।

गणधर इंद्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान।
'द्यानत' प्रीत निहारकै, कीजे आप समान ॥ १० ॥

७६। पार्श्वनाथस्तोत्र भूधरकृत।

दोहा—कर जिन पूजा अष्टविधि, भावभक्ति जिन भाय।
अब सुरेश परमेश थुति, करौं शीश निज नाय ॥१॥

चौपाई।

प्रभु इस जग समर्थ ना कोय। जासों तुम यश वर्णन होय ॥
चार ज्ञानधारी मुनि थकैं। हमसे मंद कहा कर सकैं ॥ २ ॥
यह उर जानत निश्चय हीन। जिनमहिमावर्णन हम कीन ॥

पर तुम भक्ति थके वाचाल। तिसवस होय गहूं गुणमाल ॥३॥
जय तीर्थंकर त्रिभुवन धनी। जय चंद्रोपम चूडामनी॥
जय जय परम धाम दातार। कर्मकुलाचल चूरनहार ॥ ४ ॥
जय शिवकामिनिकंत महंत। अतुल अनंत चतुष्टयवंत।
जय जय आशभरण बडभाग। तपलक्ष्मीके सुभग सुहाग॥
जय जय धर्मध्वजाधर धीर। स्वर्गमोक्ष दाता वरवीर॥
जय रत्नत्रयरत्नकरंड। जय जिन तारण तरण तरंड ॥६॥
जय जय समवशरणशृंगार। जय संशयवनदहन तुषार॥
जय जय निर्विकार निर्दोष। जय अनंत गुणमाणिक कोष॥
॥ ७ ॥ जय जय ब्रह्मचर्यदल साज। काम सुभट विजयी भटराज ॥ जय जय मोहमहातरु-करी। जय जय मद कुंजर-केहरी ॥ ८ ॥ क्रोधमहानल-मेह प्रचंड। मानमोहधर दामिनिदंड॥ माया बेल धनंजयदाह। लोभ सलिलशोषण दिननाह ॥ ९ ॥ तुम गुणसागर अगम अपार। ज्ञानजहाज न पहुंचै पार ॥ तट ही तटपर डोलै सोय। कारन सिद्धि तहां ही होय ॥ १० ॥ तुमरी कीर्तिबेल बहु वढी। यत्न विना जगमंडप चढी ॥ अवर कुदेव सुयश निज चहैं। प्रभु अपने थल ही यश लहैं ॥ ११ ॥ जगति जीव घूमैं विन ज्ञान। कीना मोहमहाविष पान ॥ तुम सेवा विषनाशक जरी। तिह मुनिजन मिल निश्चय करी ॥ १२ ॥ जन्मजरा मिथ्या मत मूल। जन्ममरण लागे तहँ फूल। सो कबहूं विन भक्ति कुठार। कटै नहीं दुखफलदातार ॥ १३ ॥ कल्पसरोवर चित्रा बेलि। कामपोरवा नवनिधि मेल॥ चिंतामणि पारस

पाषाण । पुण्यपदारथ और महान ॥ १४ ॥ ये सब एकजन्म संयोग । किंचित सुख दातार नियोग ॥ त्रिभुवननाथ तुम्हारी सेव । जन्म जन्म सुखदायक देव ॥ १५ ॥ तुम जगबांधव तुम जगतात । अशरणशरण विरद विख्यात ॥ तुम सब जीवनके रखवाल । तुम दाता तुम परम दयाल ॥१६॥ तुम पुनीत तुम पुरुष प्रमान । तुम समदर्शी तुम सब जान । जय मुनि यज्ञ पुरुष परमेश । तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेश ॥१७॥ तुम जगभर्त्ता तुम जग जान । स्वामि स्वयंभू तुम अमलान ॥ तुम बिन तीन काल तिहुं लोय । नाहीं शरण जीवका होय ॥ १८ ॥ यातैं अब करुणानिधि नाथ । तुम सन्मुख हम जोड़ैं हाथ ॥ जबलों निकट होय निर्वाण । जगनिवास छूटै दुख दान ॥ १९॥ तबलों तुम चरणांबुज बास । हम उर होय यही अरदास ॥ और न कछु बांछा भगवान । है दयालु दीजे बरदान ॥ २० ॥

दोहा-इहविधि इंद्रादिक अमर, कर बहु भक्ति विधान ।
निज कोठे बैठे सकल, प्रभु सन्मुख सुख मान ॥२१॥
जीति कर्म रिपु जे भये, केवल लब्धि निवास ।
सो श्रीपार्श्वप्रभू सदा, करो विघ्नघन नाश ॥

इति पार्श्वनाथस्तोत्र ।

७७ । अथ अहिछित पार्श्वनाथ स्तोत्र ।

जोगीरासेकी चालमें ।

वंदो श्रीपारशपदपंकज, पंच परम गुरु ध्याऊं । शारद-माय नमो मनवचतन, गुरु गौतम शिर नाऊं ॥ एक समय श्रीपारस जिनवर बन तिष्ठ वैरागी । बाह्याभ्यंतर परिग्रह

त्यागे आतमसों लव लागी ॥ १ ॥ कल्पद्रुमसम प्रभुतन सोहै, करपल्लव तनसाखा । अविचल आतम ध्यान पगे, प्रभु इकचित मन थिर राखा ॥ माता-तात कमठचर पापी । तपसी तप करि मूवो । अज्ञानी अज्ञान तपस्या-बल, करि सो सुर हूवो ॥ २ ॥ मारग जात विमान रह्यो थिर, कोप अधिक मन ठान्यो । देखत ध्यानारूढ जिनेश्वर, शत्रु आपनो मान्यो ॥ भीषणरूप भयानक दृग कर, अरुणवरन तन कांपै । मूसलधारासम जल छोडै, अधर दशनतल चांपै ॥ ३॥ अति अंधियार भयानक निशि अति, गर्जै घटा घन घोरै । चपला चपल चमकती चहुंदिशि धीरन धीरज छोरै ॥ शब्द भयंकर करत असुर गण, अग्निजाल मुख छोडै । पवन प्रचंड चलाय प्रलयवत, द्रुमगण तृणसम तोड़ै ॥ ४ ॥ पवन प्रचंड मूसलजलधारा, निशि अतिही अँधियारी । दामिनिदमक चिकार पिसाचन, बन कीनो भयकारी ॥ अविचल धीर गँभीर जिनेश्वर, थिर आसन बन ठाडे । पवन परीषहसों नहिं कांपे, सुरगिरिसम मन गाढे ॥ ५ ॥ प्रभुके पुण्यप्रताप-पवनवश, फणपतिआसन कंप्यो । अति भयभीत विलोकि चहूं दिशि, चक्रित ह्वै मन जंप्यो ॥ जान्यो प्रभु उपसर्ग अवधि-बल पद्मावतिजुत धायो । फणको छत्र कियो प्रभुके शिर, सर्वारिष्ट नशायो ॥ ६ ॥ फणपतिकृत उपसर्गनिवारण, देखि असुर दुठ भाग्यो । लोकालोक विलोकन प्रभुकै, तुरतहिं केवल जाग्यो ॥ समवशरणकी रचना कारण, सुरपति आज्ञा दीदी । मणिमुक्ताहीराकंचनमय, धनपति रचना कीनी ॥ ७॥

तीनो कोट रचें मणिमंडित, धूलीसाल बनाई। गोपुर तुंग अनूप विराजें, मणिमय गहरी खाई॥ सरवर सजल मनोहर सोहै, वन उपवनकी सोभा। वापी विविध विचित्र विलोकत सुरनरखगमन लोभा॥ ८॥ खेवैं देव गलिनमें घट भरि, धूपसुगंध सुहाई। मंद सुगंध प्रतापपवनवश, दशहूं दिशिमें छाई॥ गरुडादिकके चिन्ह अलंकृत, धुज चहुं ओर विराजैं। तोरन बंदनवारी सोहैं, नव निधिको छवि छाजें॥ ९॥ देवी देव खडे दरवानी, देखि बहुत सुख पावैं। सम्यकवंत महा श्रद्धानी, भवि सो प्रीति बढावैं॥ तीन कोटके मध्य जिनेश्वर, गंध कुटी सुखदाई। अंतरीक्षसिंहासनऊपर, राजें त्रिभुवन राई॥ १०॥ मणिमय तीन सिंहासन सोभा, वरणत पार न पाऊं। प्रभुके चरणकमलतल सोभें, मन मोदित शिर नाऊं॥ चंद्रक्रांति सम दीप्ति मनोहर, तीन छत्र छवि आखी। तीनभुवन ईश्वरताके हैं. मानों वे सब साखी।११। दुंदभि शब्द गहिर अति बाजें, उपमा वरणी न जाई। तीनभुवनजीवनप्रति भाखें, जय घोषण सुखदाई॥ कल्पतरूवरपुष्प सुगंधित, गंधोदककी वर्षा। देवी देव करैं निशवासर, भवि जीवनमन हर्षा॥१२॥ तरु अशोककी उपमा वरणत, भविजन पार न पावैं। रोगवियोग दुखीजन दर्शत, तुरतही शोक नशावैं। कुंदपुहप-सम श्वेत मनोहर, चौंसठि चमर ढुराहीं। मानों निरमल सुर-गिरिके तट, झरना झमकि झराहीं॥१३॥ प्रभुतनश्रीभामंड-लकी दुति, अद्भुत तेज विराजै। जाकी दीप्ति मनोहर आगें, कोटि दिवाकर लाजै॥ दिव्य वचन सबभाषागर्भित, खिरहिं

त्रिकाल सुबानी। 'आसा' आस करें सो पूरण, श्रीपारस सुखदानी ॥ १४ ॥ सुर नर जिय तिरयंच घनेरे, जिनवंदन चित आनै। बैरभावपरिहार निरंतर, प्रीति परस्पर ठानै ॥ दशहूं दिशि निरमल अति दीखै, भयो है सोभ घनेरा। स्वच्छसरोवरजलकर पूरे, वृक्ष फरे चहुं फेरा ॥ १५ ॥ साली आदिक खेती चहुं दिशि, भई स्वमेव घनेरी। जीवनबध नहिं होय कदाचित, यह अतिसय प्रभुकेरी ॥ नख अरु केश बढ़े नहिं प्रभुके, नहिं नैन न टमकारे। दर्पणवत प्रभुको तन दीपै, आनन चार निहारे ॥ १६ ॥ इंद्र नरेंद्र धनेंद्र सबै मिलि, धर्मामृत अभिलाषी। गणधर पदशिरनाय सुरासुर, प्रभुकी थुति अति भाषी ॥ दीनदयाल कृपाल दयानिधि, त्रषावंत भवि चीन्हे। धर्मामृत वर्षाय जिनेश्वर, तोषित बहुविध कीन्हे ॥ १७॥ आरजखंडविहार जिनेश्वर, कीनो भवि हितकारी। धर्मचक्र आगौनि चलै प्रभु, केवल महिमा भारी ॥ पंद्रह पांति कमल पंद्रह जुग, सुन्दर हेम सँम्हारे। अंतरीछ डग सहित चलें प्रभु, चरणांबुजतल धारे ॥ १८ ॥ मिटि पसर्ग भए प्रभु केवलि, भूमि पवित्र सुहाई। सो अहिक्षेत्र यो सुर नर मिल, पूजकको सुखदाई ॥ नाम लेतैं सब विघन विनाशै, संकट क्षणमें चूरै। वंदन करत बढ़ै सुख संपति सुमिरत आसा पूरै ॥ १९ ॥ जो अहिक्षेत्र विधान पढै नित, अथवा गाय सुनावै। श्रीजिनभक्ति धरै मनमें दिढ़, मनवांछित फल पावै ॥ जुगल वेद बसु एक अंक गणि, वुधजन बत्सर जान्यो। मारग शुक्ल दशैं रवि वासर, 'आसाराम' बखान्यो ॥ २० ॥

समाप्तं।

आचार्यवर्यश्रीमदुमास्वामिविरचितं

७८। मोक्षशास्त्रं।

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृतां।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वंदे तद्गुणलब्धये॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः॥ १॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं ॥ २ ॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा॥ ३॥ जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वं॥ ४॥ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥ ५॥ प्रमाणनयैरधिगमः ॥ ६॥ निर्देशस्वामित्वसाधनाऽधिकरणस्थितिविधानतः ॥७॥ सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥ ८॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानं॥ ९॥ तत्प्रमाणे॥ १०॥ आद्ये परोक्षं ॥ ११॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिंताऽभिनिबोध इत्यनर्थांतरम् ॥ १३॥ तदिंद्रियानिंद्रियनिमित्तं॥ १४॥ अवग्रहेहाऽवायधारणाः ॥ १५॥ बहुबहुविधक्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणां ॥ १६॥ अर्थस्य ॥ १७॥ व्यंजनस्यावग्रहः ॥ १८॥ न चक्षुरनिंद्रियाभ्यां ॥ १९॥ श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदं ॥ २०॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणां ॥२१॥ क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणां॥ २२॥ ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः॥ २३॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः॥ २४॥ विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः॥ २५॥ मतिश्रुतयोर्निबंधो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु॥ २६॥ रूपिष्ववधेः ॥ २७॥ तदनंतभागे मनःपर्ययस्य ॥ २८॥ सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥ २९॥

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥३०॥ मति-श्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥ सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥ ३३ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमं ॥ २ ॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥ ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥ गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥ उपयोगो लक्षणं ॥ ८ ॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥ समनस्कामनस्काः ॥ ११ ॥ संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥ १२ ॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥ द्वींद्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥ पंचेंद्रियाणि ॥ १५ ॥ द्विविधानि ॥ १६ ॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येंद्रियं ॥१७॥ लब्ध्युपयोगौ भावेंद्रियं ॥ १८ ॥ स्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १९ ॥ स्पर्शरसगंधवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥२०॥ श्रुतमनिंद्रियस्य ॥ २१ ॥ वनस्पत्यंतानामेकं ॥ २२ ॥ कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥ संज्ञिनः समनस्काः २४॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥२५॥ अनुश्रेणि गतिः ॥२६॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक्

चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥ एकसमयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥ ३० ॥ संमूर्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥ सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥ जरायुजांडजपोतानां गर्भः ॥ ३३ ॥ देवनारकाणामुपपाद ॥ ३४ ॥ शेषाणां संमूर्च्छनं ॥ ३५ ॥ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥३६॥ परं परं सूक्ष्मं ॥३७॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥ अनंतगुणे परे ॥ ३९ ॥ अप्रतीघाते ॥ ४० ॥ अनादिसंबंधे च ॥ ४१ ॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥ निरुपभोगमंत्यं ॥४४॥ गर्भसंमूर्छनजमाद्यं ॥ ४५ ॥ औपपादिकं वैक्रियिकं ॥४६॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७ ॥ तैजसमपि ॥४८॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥ नारकसंमूर्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥ न देवाः ॥ ५१ ॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥ औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

रत्नशर्कराबालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयो घनांबुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ॥ १ ॥ तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमं ॥ २ ॥ नारका नित्याऽशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥ परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥ संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥

जंबूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥७॥ द्विर्द्वि-विष्कंभाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥ तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कंभो जंबूद्वीपः ॥ ९ ॥ भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायताः हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥ हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥१२॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥ पद्ममहापद्मतिगिंछकेशरिमहापुंडरीकपुंडरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कंभो ह्रदः ॥१५॥ दशयोजनावगाहः ॥१६॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करं ॥ १७ ॥ तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः । १९ ॥ गंगासिंधुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदानारीनरकांतासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥ शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥ चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिंध्वादयो नद्यः ॥ २३ ॥ भरतः षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः षट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ।२४। तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहांताः ॥ २५ ॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥ भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां ॥ २७ ॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥ २९ ॥ तथोत्तराः ॥ ३० ॥

विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥ भरतस्य विष्कंभो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥ द्विर्द्धातकीखंडे ॥ ३३ ॥ पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥ ३७ ॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमांतर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥ आदितस्त्रिषु पीतांत लेश्याः ॥२॥ दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यंताः ॥३॥ इंद्रसामानिकत्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥ ४ ॥ त्रायस्त्रिंशल्लोकपालवर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः ॥ ५ ॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥ ७ ॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥ ८ ॥ परेऽप्रविचाराः ॥ ९ ॥ भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥ १० ॥ व्यंतराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥ ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥ १२ ॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ १३ ॥ तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥ बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥ वैमानिकाः ॥ १६ ॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥ १८ ॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयंतजयंतापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥ स्थितिप्र-

भावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धींद्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥ गतिशरीरपरिग्रहाऽभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥ पीतपद्मशुक्लेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥ ब्रह्मलोकालया लौकांतिकाः ॥ २४ ॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥ औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥ स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिताः ॥ २८ ॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके ॥ २९ ॥ सानत्कुमारमाहेंद्रयोः सप्त ॥ ३० ॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपंचदशभिरधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥ अपरा पल्योपममधिकं ॥ ३३ ॥ परतः परतः पूर्वापूर्वानंतराः ॥ ३४ ॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां ॥ ३६ ॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥ व्यंतराणां च ॥ ३८ ॥ परामल्योपममधिकं ॥ ३९ ॥ ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥ तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥ लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषां ॥ ४२ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥ द्रव्याणि ॥ २ ॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥ आआकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥ निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानां ॥ ८ ॥ आकाशस्यानंताः ॥ ९ ॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानां १०॥ नाणोः ॥११॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥ धर्माधर्मयोः

कृत्स्ने ॥ १३ ॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानां ॥ १४ ॥ असंख्येयभागादिषु जीवानां ॥ १५ ॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥ गतिस्थित्युपग्रहा धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥ आकाशस्यावगाहः ॥ १८ ॥ शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानां ॥१९॥ सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥ परस्परोपग्रहो जीवानां ॥ २१ ॥ वर्त्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥ स्पर्शरसगंधवर्णवंतः पुद्गलाः ॥ २३ ॥ शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवंतश्च ॥ २४ ॥ अणवः स्कंधाश्च ॥ २५ ॥ भेदसंघातेभ्य उत्पद्यंते ॥ २६ ॥ भेदादणुः ॥ २७ ॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ सद्द्रव्यलक्षणं ॥२९॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥३०॥ तद्भावाव्ययं नित्यं ॥३१॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्बंधः ॥ ३३ ॥ न जघन्यगुणानां ॥ ३४ ॥ गुणसाम्ये सदृशानां ॥ ३५ ॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥ ३६ ॥ बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥ गुणपर्ययवद्द्रव्यं ॥ ३८ ॥ कालश्च ॥ ३९ ॥ सोऽनंतसमयः ॥ ४० ॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ ४१ ॥ तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कायवाङ्मनः कर्मयोगः ॥ १ ॥ स आस्रवः ॥ २ ॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥ सकषायाकषाययोः सांपरायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥ इंद्रियकषायाव्रतक्रियाः पंच चतुः पंच पंचविंशतिसंख्याः पूर्वस्यभेदाः ॥ ५ ॥ तीव्रमंदज्ञाताज्ञातभावा-

करणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥ अधिकरणं जीवाजीवाः ॥ ७ ॥ आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥ निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परं ॥ ९ ॥ तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यांतरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥१०॥ दुःखशोकतापाक्रंदनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥ भूतव्रत्यनुकंपादानसरागसंयमादियोगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥ केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥ कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ १४ ॥ बह्वारंभपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥ १५ ॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥ अल्पारंभपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ १७ ॥ स्वभावमार्दवं च ॥ १८ ॥ निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषां ॥ १९ ॥ सरागसंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥ २० ॥ सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥ योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥ २४ ॥ परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥ २५ ॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥ २६ ॥ विघ्नकरणमंतरायस्य ॥ २७ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं ॥ १ ॥ देशसर्व-

तोणुमहती ॥ २ ॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच ॥ ३ ॥ वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच ॥ ४ ॥ क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच ॥ ५ ॥ शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसद्धर्माविसंवादाः पंच ॥ ६ ॥ स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच ॥ ७ ॥ मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच ॥ ८ ॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनं ॥ ९ ॥ दुःखमेव वा ॥ १० ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥ ११ ॥ जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थं ॥ १२ ॥ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥ असदभिधानमनृतं ॥ १४ ॥ अदत्तादानं स्तेयं ॥ १५ ॥ मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥ मूर्छा परिग्रहः ॥१७॥ निःशल्यो व्रती ॥ १८ ॥ आगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥ अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥ दिग्देशानर्थदंडविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च ॥ २१ ॥ मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥ २२ ॥ शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥ २३ ॥ व्रतशीलेषु पंच पंच यथाक्रमं ॥ २४ ॥ बंधवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥ मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः ॥ २६ ॥ स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मान प्रतिरूपकव्यवहाराः ॥ २७ ॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागम-

नानंगक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥ क्षेत्रवास्तुहिरण्य-सुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥ २९ ॥ ऊर्ध्वा-धस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यंतराधानानि ॥ ३० ॥ आनय-नप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥ कंदर्पकौत्कु-च्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥ योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥ अप्रत्यवे-क्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्था-नानि ॥ ३४ ॥ सचित्तसंबंधसंमिश्राभिषवदुःपक्काहाराः ॥ ३५ ॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥ जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबंधनिदानानि ॥ ३७ ॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं ॥ ३८ ॥ विधिद्रव्यदातृपात्र-विशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः ॥ १ ॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बंधः ॥ २ ॥ प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥ आद्यो ज्ञानदर्श-नावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायाः ॥ ४ ॥ पंचनव-द्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदा यथाक्रमं ॥ ५ ॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानां ॥ ६ ॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेव-लानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥ सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥ दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्या-स्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायक-षायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदा अनंता-

नुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्यख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमान-
मायालोभाः ॥ ९ ॥ नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥ गति-
जातिशरीरांगोपांगनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शर-
सगंधवर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहा-
योगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादे-
ययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥११॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥
दानलाभभोगोपभोगवीर्याणां ।१३। आदितस्तिसृणामंतरायस्य
च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥ १४ ॥ सप्त-
तिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥ त्रय-
स्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥ अपरा द्वादश मुहूर्ता वेद-
नीयस्य ॥ १८ ॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥ शेषाणामंतर्मुहूर्ता
॥ २० ॥ विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥ स यथानाम ॥२२॥ ततश्च
निर्जरा ॥ २३ ॥ नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षे-
त्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनंतानंतप्रदेशाः ॥ २४ ॥
सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यं ॥२५॥ अतोऽन्यत्पापं ॥२६॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

आस्रवनिरोधः संवरः ॥ १ ॥ स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरी-
षहजयचारित्रैः ॥ २ ॥ तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥ सम्यग्योग-
निग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥ ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समि-
तयः ॥ ५ ॥ उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागा-
किंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥ अनित्याशरणसंसारैकत्वान्य-
त्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वा-
नुचिंतनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥ मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः

परीषहाः ॥ ८ ॥ क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९ ॥ सूक्ष्मसांपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥ १० ॥ एकादश जिने ॥ ११ ॥ वादरसांपराये सर्वे ॥१२॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शनमोहांतराययोरदर्शनालाभौ ॥१४॥ चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः ॥१५॥ वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ॥ १७ ॥ सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातमिति चारित्रं ॥ १८ ॥ अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरं ॥ २० ॥ नवचतुर्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥ आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ॥ २२ ॥ ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥ आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानां ॥२४॥ वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥२५॥ बाह्याभ्यंतरोपध्योः ॥२६॥ उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमांतर्मुहूर्तात् ॥२७॥ आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥ परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥ आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥ ३० ॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥ वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥ निदानं च ॥ ३३ ॥ तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानां ॥ ३४ ॥ हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥३५॥ आज्ञा-

पायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यं ॥ ३६ ॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥ परे केवलिनः ॥ ३८ ॥ पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतिक्रियानिवर्त्तीनि ॥३९॥ त्र्येकयोगकाययोगायोगानां ॥ ४० ॥ एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४१॥ अवीचारं द्वितीयं ॥ ४२ ॥ वितर्कः श्रुतं ॥ ४३ ॥ वीचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रांतिः ॥ ४४ ॥ सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानंतवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥ पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातका निर्ग्रन्थाः ॥ ४६ ॥ संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्च केवलं ॥ १ ॥ बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ २ ॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ ३ ॥ अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥ तदनंतरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकांतात् ॥ ५ ॥ पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बंधच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरंडबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥ क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनांतरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यंजनसंधिविवर्जितरेफं ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥१॥

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ॥ २ ॥
तत्त्वार्थसूत्रकर्तारं गृध्रपिच्छोपलक्षितं।
वंदे गणीन्द्रसंयातमुमास्वामिमुनीश्वरं ॥ ३ ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रापरनाम तत्त्वार्थाधिगममोक्षशास्त्रं समाप्तं ॥ ३२ ॥

श्रीअमितगतिसूरिविरचिता

७९। भावनाद्वात्रिंशतिका।

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
मध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव! ॥१॥
शरीरतः कर्तुमनंतशक्तिं विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम्।
जिनेंद्र! कोषादिव खड्गयष्टिं तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥२॥
दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे योगे वियोगे भुवने वने वा।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥३॥
मुनीश लीनाविव कीलिताविव स्थिरौ निषाताविव विम्बिताविव
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव॥
एकेंद्रियाद्या यदि देव! देहिनः प्रमादतः संचरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा
विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो॥६॥
विनिंदनालोचनगर्हणैरहं, मनोवचःकायकषायनिर्मितं।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलं॥
अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८।

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनम् ।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥९॥
यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तं ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥
बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिःस्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः
चिंतामणिं चिंतितवस्तुदाने त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥११॥
यः स्मर्यते सर्वमुनींद्रवृंदैः यः स्तूयते सर्वनरामरेंद्रैः ।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१२॥
यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः समस्तसंसारविकारबाह्यः ।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥
निषूदते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदंतरालं ।
योंऽतर्गतो योगिनिरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥
विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्व्यतीतः ।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलंकः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥
क्रोड़ीकृताशेषशरीरवर्गाः, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः ।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६॥
यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः ।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ।१७।
न स्पृश्यते कर्मकलंकदोषैः, यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः ।
निरंजनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥
विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासी ।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१९॥
विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम् ।

शुद्धं शिवं शांतमनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०॥
येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा, विषादनिद्राभयशोकचिन्ता ।
क्षताऽनलेनेव तरुप्रपंचस्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥
न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी विधानतो नो फलको विनिर्मितः
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः २२
न संस्तरो भद्र ! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनां ॥
न सन्ति बाह्या मम केचनार्था भवामि तेषां न कदाचनाहम् ।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै
आत्मानमात्मन्यवलोक्यमानस्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः ।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र स्थितोपि साधुर्लभते समाधिं ।२५।
एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा विनिर्मलः साधिगमस्वभावः ।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः २६
यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः ।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः कुतो हि तिष्ठंति शरीरमध्ये ॥२७॥
संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी ।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् २८
सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं संसारकान्तारनिपातहेतुम् ।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥२९॥
स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परेण दत्तं यदि लभ्यते, स्फुटं स्वयंकृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥
निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोपि कस्यापि ददाति किंचन
मनन्यमानसः परो ददातीति विमुंच शेमुषीम् ॥३१॥

यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः।
शश्वदधीतो मनसि, लभन्ते मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥३२॥
इति द्वात्रिंशता वृत्तैः, परमात्मानमीक्षते।
योऽनन्यगतचेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम् ॥ ३२ ॥

---

५ पंचमाध्याय।

भाषा पर्वपूजासंग्रह।

८०। देवपूजा।

दोहा।

प्रभु तुम राजा जगतके, हमें देय दुख मोह।
तुम पद पूजा करत हूं, हमपै करुना होहि ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोपरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ओं ह्रीं अष्टादशदोपरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। ओं ह्रीं अष्टादशदोपरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव! वषट्।

बहु तृषा सतायो, अति दुख पायो, तुमपै आयो, जल लायो।
उत्तम गंगाजल, शुचि अति शीतल, प्राशुक निर्मल, गुन गायो॥
प्रभु अंतरजामी त्रिभुवननामी, सबके स्वामी, दोष हरो।
यह अरज सुनीजै, ढील न कीजै, न्याय करीजै, दया धरो ॥१॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोपरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्रभगवद्भ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामिति स्वाहा ॥ १ ॥

अघ तपत निरंतर, अगनिपटंतर, मो उर अंतर खेद कर्यौ।
लै बावन चंदन, दाहनिकंदन, तुमपदबंदन हरष धर्यौ। प्रभु०।

ओं ह्रीं अष्टादशदोपरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो चंदनं० ॥

औगुन दुखदाता, कह्यो न जाता, मोहि असाता, बहुत करै।
तंदुल गुनमंडित, अमल अखंडित, पूजत पंडित, प्रीति धरै। प्र०
ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो अक्षतं ॥

सुरनरपशुको दल, काम महाबल, बात कहत छल मोहि लिया।
ताके शर लाऊं, फूल चढाऊं, भक्ति बढाऊं, खोल हिया। प्रभु०।
ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यः पुष्पं ॥

सब दोषनमाहीं, जासम नाहीं, भूख सदा ही, मो लागै।
सद घेवर बाबर, लाडू बहु धर, थार कनक भर तुम आगे। प्रभु०
ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो नैवेद्यं० ॥

अज्ञान महातम, छाय रह्यो मम, ज्ञान ढक्यो हम दुख पावैं।
तम मेटनहारा, तेज अपारा, दीप सँवारा, जस गावैं। प्रभु०।
ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो दीपं ॥

इह कर्म महावन, भूल रह्यौ जन, शिवमारग नहिं पावत है।
कृष्णागरुधूपं, अमलअनूपं, सिद्धस्वरूपं, ध्यावत है॥ प्रभु०॥
ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंद्गुणसहितश्रीजिनेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं० ॥

सबतैं जोरावर, अंतराय अरि, सुफल विघ्न करि डारत हैं।
फलपुंज विविध भर, नयनमनोहर, श्रीजिनवरपद धारत हैं। प्र०
ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं० ॥

आठों दुखदानी, आठनिशानी, तुम ढिंग आनि निबारन हो।
दीननिस्तारन, अधमउधारन, 'द्यानत' तारन, कारन हो। प्र०
ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्रभगवद्भ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

जयमाला।

गुण अनंत को कहि सकै, छियालीस जिनराय।
प्रगट सुगुन गिनती कहूं, तुम ही होहु सहाय॥ १॥

चौपाई (१६ मात्रा)

एक ज्ञान केवल जिनस्वामी । दो आगम अध्यातम नामी ॥
तीन काल विधि परगट जानी । चार अनंतचतुष्टय ज्ञानी ॥२॥
पंच परावर्तन परकासी । छहों दरबगुनपरजयभासी ॥
सातभंगवानी परकाशक । आठों कर्म महारिपु नाशक ॥३॥
नव तत्त्वनके भाखनहारे । दश लक्षनसौं भविजन तारे ॥
ग्यारह प्रतिमाके उपदेशी । बारह सभा सुखी अकलेशी ॥४॥
तेरहविधि चारितके दाता । चौदह मारगनाके ज्ञाता ॥
पंद्रह भेद प्रमाद निवारी । सोलह भावन फल अविकारी ॥५॥
तारे सत्रह अंक भरत भुव । ठारै थान दान दाता तुव ॥
भाव उनीस जु कहे प्रथम गुन । वीस अंक गणधरजीकी धुन ।६।
इकइस सर्व घातविधि जानै । बाइस बंध नवम गुणथानै ॥
तेइस निधि अरु रतन नरेश्वर । सो पूजै चौबीस जिनेश्वर ।७।
नाश पचीस कषाय करी हैं । देशघाति छब्बीस हरी हैं ॥
तत्त्व दरब सत्ताइस देखे । मति विज्ञान अठाइस पेखे ॥ ८ ॥
उनतिस अंक मनुष सब जाने । तीस कुलाचल सर्व बखाने ।
इकतिस पटल सुधर्म निहारे । बत्तिस दोष समायिक टारे ॥९॥
तेतिस सागर सुखकर आये । चौंतिस भेद अलब्धि बताये ॥
पैंतिस अच्छर जप सुखदाई । छत्तिस कारन रीति मिटाई ।१०।
सैंतिस मग कहि ग्यारह गुनमें । अठतिस पद लहि नरक अपुनमें
उनतालीस उदीरन तेरम । चालिस भवन इंद्र पूजें नम ॥११॥
इकतालीस भेद आराधन । उदै बियालीस तीर्थंकर भन ॥
तैंतालीस बंध ज्ञाता नहिं । द्वार चवालिस नर चौथेमाहिं ॥१२॥

पैंतालीस पल्यके अच्छर । छियालिस विन दोष मुनीश्वर ॥
नरक उदै न छियालिस मुनिधुन प्रकृति छियालिस नाश दशमगुन
छियालीस घन राजु सात भुव । अंक छियालिस सरसों कहि कुव
भेद छियालिस अंतर तपवर । छियालिस पूरन गुन जिनवर १४

अडिल्ल–मिथ्यातपन निवारन चंद समान हो
मोहतिमिर वारनको कारन भानु हो ॥
कामकषाय मिटावन मेघ मुनीश हो
'द्यानत' सम्यकरतनत्रय गुनईश हो ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्रेभ्यः पूर्णार्घं ॥

८१ । सरस्वतीपूजा ।

दोहा–जनम जरा मृतु छय करै, हरै कुनय जडरीति ।
भवसागरसों ले तिरै पूजै जिनवचप्रीति ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् । ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

छीरोदधिगंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा, सुखसंगा ।
भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषानिवारी, हितचंगा ॥
तीर्थंकरकी धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि, ज्ञानमई ॥
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी, पूज्य भई

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

करपूर मँगाया, चंदन आया, केशर लाया, रंग भरी ।
शारदपद बंदों मन अभिनंदौं, पापनिकंदौं, दाह हरी ॥ ती० ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

सुखदासकमोदं, धारकमोदं, अति अनुमोदं चंदसमं ।

बहुभक्ति बढाई, कीरति गाई, होहु सहाई, मात ममं ॥ ती०॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

बहुफूलसुवासं, विमलप्रकाशं, आनँदरासं, लाय धरे।
मम काम मिटायो, शील बढायो, सुखउपजायो दोष हरे ॥ती०॥

ओं ह्रीं श्रीजिमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विध भाया, मिष्ट महा।
पूजूं थुति गाऊं, प्रीति बढाऊं, क्षुधा नशाऊं, हर्ष लहा ॥ ती०॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

करि दीपक जोतं, तमछय होतं, ज्योति उदोतं, तुमहिं चढै।
तुम हो परकाशक, भरमविनाशक, हम घट भासक ज्ञान बढ़ै ती०

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

शुभगंध दशोंकर, पावकमें धर, धूप मनोहर खेवत हैं।
सब पाप जलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं खेवत हैं ॥तीर्थं०॥७।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

बादाम छुहारी लोंग सुपारी, श्रीफल भारी ल्यावत हैं।
मनवांछित दाता मेट असाता, तुम गुन माता, ध्यावत हैं ॥ती०

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

नयननसुखकारी, मृदुगुनधारी, उज्वलभारी, मोल धरै।
शुभगंधसम्हारा, वसननिहारा, तुमतर धारा ज्ञान करै ॥ ती०॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

जलचंदन अच्छत, फूल चरू चत, दीप धूप अति फल लावै।
पूजाको ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत, सुख पावै ।ती०।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

अथ जयमाला।

सोरठा—ओंकार धुनिसार, द्वादशांगवाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै ॥

पहलो आचारांग बखानो। पद अष्टादश सहस प्रमानो। दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं। पद छत्तीस सहस गुरु भाषं ॥ १ ॥
तीजा ठाना अंग सुजानं। सहस बियालिस पदसरधानं ॥
चौथो समवायांग निहारं। चौसठ सहस लाख इकधारं ॥२॥
पंचम व्याख्याप्रज्ञपति दरसं। दोय लाख अट्ठाइस सहसं।
छट्ठा ज्ञातृकथा विसतारं। पांचलाख छप्पन हजारं ॥ ३ ॥
सप्तम उपासकाध्ययनंगं। सत्तर सहस ग्यारलख भंगं।
अष्टम अंतकृतं दस ईसं। सहस अठाइस लाख तेईसं ॥४॥
नवम अनुत्तरदश सुविशालं। लाख बानवै सहस चवालं।
दशम प्रश्नव्याकरण विचारं। लाख तिरानवै सोल हजारं ॥५॥
ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं। एक कोड़ चौरासी लाखं।
चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं। दो हजार सब पद गुरुशाखं ॥६॥
द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं। इकसौ आठ कोड़ि पन वेदं ॥
अड़सट लाख सहस छप्पन हैं। सहित पंचपद मिथ्या हन हैं ॥७
इक सौ बारह कोड़ि बखानो। लाख तिरासी ऊपर जानो।
ठावन सहस पंच अधिकाने। द्वादश अंग सर्व पद माने ॥८॥
कोड़ि इकावन आठ हि लाखं। सहस चुरासी छहसौ भाखं ॥
साढ़े इकीस सिलोक बताये। एक एक पदके ये गाये ॥१०॥

घत्ता।

जा बानीके ज्ञानमें, सूझे लोक अलोक।
'द्यानत' जग जयवंत हो, सदा देत हौं धोक ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥



८२। गुरुपूजा।

दोहा—चहुं गति दुखसागरविषै, तारनतरनजिहाज।
रतनत्रयनिधि नगन तन, धन्य महा मुनिराज ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह ! अत्रावतरावतर। संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

शुचि नीर निर्मल छीरदधिसम, सुगुरु चरन चढ़ाइया।
तिहुं धार तिहुं गदटार स्वामी, अति उछाह बढ़ाइया॥
भवभोगतनवैराग्य धार, निहार शिवतप तपत हैं।
तिहुं जगतनाथ अधार साधु सु, पूज नित गुन जपत हैं ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो जलं नि० ॥ १ ॥

करपूर चंदन सलिलसौं घसि, सुगुरुपद पूजा करौं।
सब पापताप मिटाय स्वामी, धरम शीतल विस्तरौं॥ भव० ॥२॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं नि० ॥ २ ॥

तंदुल कमोद सुवास उज्जल, सुगुरुपगतर धरत हैं।
गुनकार औगुनहार स्वामी, वंदना हम करत हैं॥ भवभो०।३।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि० ॥ ३ ॥

शुभफूलरासप्रकाश परिमल, सुगुरुपाँयनि परत हौं।
निरवार मारउपाधि स्वामी, शील दृढ़ उर धरत हौं॥भव०।४।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं ॥ ४ ॥

पकवान मिष्ट सलौन सुंदर, सुगुरु पाँयनि प्रीतिसौं।
कर छुधारोग विनाश स्वामी, सुथिर कीजे रीतिसौं॥भव०।५।

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

दीपकउदोत सजोत जगमग, सुगुरुपद पूजौं सदा।
तमनाश ज्ञानउजास स्वामी, मोहिं मोह न हो कदा॥ भव

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं० ॥ ६ ॥

बहु अगर आदि सुगंध खेऊं, सुगुण पद पद्महिं खरे।
दुखपुंजकाठ जलाय स्वामी, गुण अछय चितमैं धरे ॥भव०॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि० ॥ ७ ॥

भर थार पूग बदाम बहुविधि, सुगुरुक्रम आगैं धरों।
मंगल महाफल करो स्वामी, जोर कर विनती करों ॥भव०॥८॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० ॥ ८ ॥

जल गंध अक्षत फूल नेवज, दीप धूप फलावली।
द्यानत सुगुरुपद देहु स्वामी, हमहिं तार उतावली ॥ भव०॥९॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

दोहा—कनककामिनी विषयवश, दीसै सबसंसार।
त्यागी वैरागी महा, साधु सुगुन भंडार ॥ १ ॥
तीन घाटि नवकोड सब, बंदौं सीस नवाय।
गुन तिन अट्ठाईस लौं, कहूं आरती गाय ॥ २ ॥

वेसरी छंद—एक दया पालें मुनिराजा, रागदोष द्वै हरन परं। तीनों लोक प्रगट सब देखें, चारौं आराधन-निकरं ॥ पंच महाव्रत दुद्धर धारैं, छहों दरब जानैं सुहितं। सातभंगवानी मन लावैं, पावैं आठ रिद्ध उचितं ॥ ३ ॥ नवों पदारथ विधिसौं भाखैं, बंध दशों चूरन सरनं। ग्यारह शंकर जानै मानै, उत्तम बारह व्रत धरनं ॥ तेरह भेद काठिया चूरै, चौदह गुनथानक लखियं। महाप्रमाद पंचदश नाशै, सोलकषाय सबै नशियं ॥ ४ ॥ बंधादिक सत्रह सब चूरे, ठारह जन्म न मरन मुनं। एक समय उनईस परीषह,

बीस प्ररूपनिमें निपुणं ॥ भाव उदीके इकीसों जानै, बाइस अभखन त्याग करं। अहिमिंदर तेईसों वंदै, इंद्र सुरग चौवीस वरं ॥ ५ ॥ पचीसों भावन नित भावै, छब्बिस अंगउपंग पढैं। सत्ताईसों विषय विनाशैं अट्ठाईसों गुण सु पढैं। शीत समय सर चौहटवासी, ग्रीषमगिरिसिर जोग धरैं। वर्षा वृक्ष-तरैं थिर ठाढे, आठ करम हनि सिद्ध वरैं ॥ ६ ॥

दोहा—कहों कहांलों भेद मैं, बुध थोरी गुन भूर।
'हेमराज' सेवक हृदय, भक्ति करो भरपूर ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

८२। बीसविहरमानतीर्थंकर पूजा।

दोहा।

दायक यश जय सुमति सुग, सुख दुतिरूप अपार।
घायक विधि घायकनिके, लायक जग उद्धार ॥ १ ॥
सीमंधर आदिक सकल, वियद वाहुमित अैन।
आह्वानन त्रिविधा करूं, इत तिष्ठहु सुख दैन ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिअजितवीर्यपर्यंतविदेहक्षेत्रस्थितवर्तमानविंशतिजिनेन्द्राः अत्र अवतरत अवतरत। संवौषट्।

ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिअजितवीर्यपर्यंतविदेहक्षेत्रस्थितवर्तमानविंशतिजिनेन्द्राः अत्र तिष्ठत। तिष्ठत। ठः ठः।

ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिअजितवीर्यपर्यंतविदेहक्षेत्रस्थितवर्तमानविंशतिजिनेन्द्राः अत्र मम सन्निहिताः भवत भवत वषट्।

अथाष्टक। रुचिरा छंद मात्रा ३०।

शीतल सलिल अमल तृद्हारक, लेयसुधासम भृंगभरं।
जिनपति चरन अग्र त्रय धारा, धरूं तापत्रय नाशकरं ॥
जय कमलासन सुंदरशासन, भासन नभद्वय बोधवरं।

श्रीधर श्री सीमंधरआदिक यजूं वीस जिन श्रेयकरं ॥ १ ॥
ओं ह्रीं श्रीसामंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थवर्तमानविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो जलं० ॥ १ ॥

मलयपटीर घसित वर कुंकुम, शीतलगंध सुरंग भर्यो ।
सारसवरन चरन तव धारत, अकुलदाह अपार हर्यो ॥जय०
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थितवर्तमानविंशतिजिनेंद्रेभ्यः चंदनं० ॥ २ ॥

जीरक श्याम सुगंधित तंदुल, श्वेतवरन वर अनियारे ।
लहिअक्षत अक्षयपद पावन, धरूं पुंज दृग मनहारे ॥ जय०॥
ओं ह्रीं श्रीसामंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो अक्षतान् निर्वपा० ॥ ३ ॥

केतकि कंज गुलाब जुही वर, सुमन सुवासित मनहारी ।
धारत चरन लहैं समतासर, नसैं मदनशर दुखकारी ॥जय०॥
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थवर्तमानविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो पुष्पं० ॥ ४ ॥

विंजन विविध छहोंरस पूरित, सद्य सु सुंदर बलकारी ।
श्रीपतिचरनचढाऊं चरुवर, निजबलदायक क्षुतहारी ॥जय०
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थविंशतिविद्यमानजिनेंद्रेभ्यो नैवेद्यं० ॥ ५ ॥

प्रजलित ज्योति कपूर मनोहर, अथवा पूरित स्नेहवरं ।
करत आरती हरि भव आरति, निजगुणज्योतिप्रकाशकरं ॥
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थविद्यमानविंशतिजिनेंद्रेभ्यो दीपं नि० ॥ ६ ॥

चूरित अगर पटीरादिकवर, गंध हुताशनसंग धरूं ।
खेऊं धूपजगेशचरनाढिंग, चाहतहूं विधि नाश करूं ॥ जय०
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थविंशतिविद्यमातीर्थंकरेभ्यो धूपं नि० ॥ ७ ॥

फल दाडिम एला पिकबल्लभ[1], खारिक आदिक मिष्ट भले ।
लेकर चरन चढावत जिनके, पावत हैं फलमोक्षरले ॥ जय०
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थवर्त्तमानविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो फलं नि० ॥ ८ ॥

जल चंदन अक्षत मनसिजशर, चरु दीपक वर धूप फलं ।

---

१ कपिबल्लभ भी पाठ है। जिसका अर्थ केला और पिकबल्लभका अर्थ आम होता है।

भवगदनाशन श्रीपदके पद, वारतहूं करि अर्घ भलं ॥जय०॥

ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थविंशतिविद्यमानजिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्व० ॥

अथ जयमाला ।

दोहा—द्वीप अर्द्ध द्वय मेरु पन, मेरु मेरु प्रति च्यार ।
विहरत विभव अनंत युत, अवनि विदेहमझार ॥१॥

चंडी छंद (१६ मात्रा)

सीमंधर सुखसीम सुहाये, युगमंधर युगवृष प्रगटाये ।
वाहु बाहुबलमोहविदार्यो, जिन सुबाहु मनमथ मद मार्यो ॥
संजातक निज जाति पिछानी, स्वयंप्रभू प्रभुता निज ठानी ।
ऋषभानन ऋषिधर्म प्रकाशन, वीर्यअंनत कर्मरिपु नासन ॥
सूरप्रभू निजभा परिपूरन, प्रभु विशाल त्रिकशल्य विचूरन ।
देववज्रधरभ्रमगिरिभंजन, चंद्रानन जगजनमनरंजन ॥४॥
चंद्रबाहु भवताप निवारी, ईश भुजंगम-धुनि-मनि धारी ।
ईश्वर शिवगवरीदुखभंजन, नेमिप्रभूवृषनेमि निरंजन ॥५॥
वीरसेन विधि-अरि-जय वीरं, महाभद्र नाशक भवपीरं ।
देव देवयशको यश गावैं, अजितवीर शिवरमनि सुहावैं ॥६॥
ये अनादि विधिबंधनमाही, लब्धियोग निजनिधि लखपाई ।
सम्यक बलकर अरि चकचूरन, क्रमतैं भये परम दुति पूरन ॥
अंतरीक आसनपर सोहै, परम विभूतिप्रकाशक जो है ।
चौसठ चमर छत्रत्रय राजैं, कोटि दिवाकर दुति लखि लाजैं ॥
जय दुंदुभि धुनि होत सुहानी, दिव्यध्वनि जगजनदुखहानी ।
तरु अशोक जनशोक नशावै, भामंडल भवसात दिखावै ॥९॥
हर्षित सुमन सुमन बरसावैं, सुमनअंगना सुगुन सु गावैं ।
नवरसपूरन चतुरँग भीनी, लेत भक्तिवश तान नवीनी ॥१०॥

बजततार तननननन नन नन, घुगरू धमक झुननननन झुननन
धी धी धृकट धृकट द्रम द्रम द्रम, धुनतमुरजपुरुतालतरलसम ॥
ताथेई थेई थेई चरन चलावैं, कटिकर मोरि भाव दरसावैं ।
मानथंभ मानीमद खंडन, जिन-प्रतिभा-युत पापविहंडन ॥१२॥
शालचतुक गोपुरकर सोहै, सजलखातिका जनमन मोहै ।
द्विजगन कोक मयूर मरालं, शुक-कलरव-रव होत रसालं ॥
पूरित सुमन सुमनकी बारी, वन-बंगला गिरवर छविधारी ।
तूप ध्वजा गन पँक्ति विराजै, तोरन नवनिधि द्वार सु छाजै ॥
इत्यादिक रचना बहुतेरी, द्वादश सभा लसत चहुं फेरी ।
गनधर कहत पार नहिं पावै, 'थान' निहारतही बनि आवै ॥
श्रीप्रभुके इच्छा न लगारं, भविजन भाग्यउदय सु विहारं ।
यह रचना मैं प्रगट लखाऊं, याहित हरषि हरषि गुन गाऊं ॥

छंद घत्ता ।

यह जिनगुनसारं करत उचारं, हरत विकारं अघभारं ।
जय यशदातारं बुधिविस्तारं, करत अपारं सुखसारं ॥ १७ ॥

ओं ह्रीं विदेहक्षेत्रस्थवर्तमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अडिल्ल छंद ।

जो भविजन जिन बीस यजैं शुभ भावसूं ।
कहैं सुगुनगनगान भक्ति धरि चावसूं ॥
लहैं सकल संपति अर वरमति विस्तरै ।
सुर नर पद वर पाय मुक्ति रमनी वरै ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः । समाप्त ।



८४ अकृत्रिमचैत्यालय पूजा।

चौपई।

आठ किरोड़ रु छप्पन लाख। सहस सत्यावण चतुशत भाख॥
जोड़ इक्यासी जिनवर धाम। तीनलोक आह्वान करान॥१॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिम-जिनचैत्यालयानि अत्रावतरत अवतरत। संवौषट्। ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्-पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयानि अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः। ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतै-काशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयानि अत्र मम सन्निहितो भवत भवत। वषट्।

छीरोदधिनीरं उज्जल सीरं, छान सुचीरं, भरि झारी।
अति मधुरलखावन, परम सु पावन, तृषाबुझावन, गुण भारी॥
वसुकोटि सु छप्पन्न लाख सत्ताणव, सहस चारसत इक्यासी।
जिनगेह अकीर्तिम तिहुंजगभीतर, पूजत पद ले अविनासी॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिअकृ-त्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

मलयागर पावन, चंदन बावन, तापबुझावन, घसि लीनो।
धरि कनककटोरी द्वैकरजोरी, तुमपद ओरी चित दीनो॥वसु०

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृ-त्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

बहुभांति अनोखे, तंदुल चोखे, लखि निरदोखे, हम लीने।
धरि कंचनथाली, तुमगुणमाली, पुंजविशाली कर दीने॥वसु०॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिअकृ-त्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

शुभ पुष्प सुजाती है बहुभांती, अलि लिपटाती, लेय वरं।
धरि कनक रकेबी करगहलेवी, तुमपद जुगकी भेट धरं॥वसु०

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृ-त्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

खुरमा जु गिंदोड़ा; बरफी पेड़ा, घेवर मोदक, भरि थारी।
विधिपूर्वक कीने, घृतपय भीने, खँडमें लीने, सुखकारी ॥वसु०

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

मिथ्यात महातम, छाय रह्यो हम, निजभव परणति, नहिं सूझे।
इहकारण पाकैं, दीप सजाकैं, थाल धराकैं, हम पूजें ॥ वसु० ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

दशगंध कुटाकें, धूप बनाकें, निजकर लाकें, धरि ज्वाला।
तसु धूम उड़ाई, दशदिश छाई, बहु महकाई, अति आला ॥व०

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

बादाम छुहारे, श्रीफल धारे, पिस्ता प्यारे, द्राख वरं।
इनआदि अनोखे, लखिनिरदोखे, थापलजोखे, भेट धरं ॥व०

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल चंदन तंदुल, कुसुम रु नेवज, दीप धूप फल, थाल रचौं ॥
जयघोष कराऊं, बीन बजाऊं, अर्घ चढाउं, खूब नचौं ॥वसु०॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ प्रत्येक अर्घ।

चौपाई।

अधोलोक जिन आगमसाख। सात कोड़ि अरु बहतर लाख ॥
श्रीजिनभवनमहा छवि देइ। ते सब पूजौं वसुविध लेइ ॥१॥

ओं ह्रीं मध्यलोकसंबंधिसप्तकोटिद्विसप्ततिलक्षाकृत्रिमश्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं० ॥

मध्यलोकजिनमंदिरठाठ। साढ़ेचारशतक अरु आठ ॥

ते सव पूजों अर्घ चढ़ाय । मनवचतन त्रयजोग मिलाय ॥२॥

ओं ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशताष्टपंचाशत् श्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं० ॥२॥

अडिल्ल—उर्ध्वलोकके माहिं भवनजिन जानिये ।

लाख चुरासी सहस सत्याणव मानिये ॥

तापै धरि तेईस जजों शिर नायकैं ।

कंचनथालमझार जलादिक लायकैं ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं उर्ध्वलोकसंबंधिचतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्रत्रयोविंशति श्रीजिनचै० अर्घ्यं ॥

वसुकोटि छप्पनलाख ऊपर, सहससत्याणव मानिये ।

सतच्यारपैं गिन ले इक्यासी, भवनजिनवर जानिये ॥

तिहुँलोकभीतर सासते, सुर असुर नर पूजा करैं ।

तिन भवनको हम अर्घ लेकैं, पूजि हैं जगदुख हरैं ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्य ष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अथ जयमाला ।

दोहा—अब वरणों जयमालिका, सुनो भव्य चित लाय ।

जिनमंदिर तिहुँ लोकके, देहुं सकल दरसाय ॥ १ ॥

जय अमल अनादि अनंत जान । अनिमित जु अकीर्तम अचल मान ॥ जय अजय अखंड अरूपधार । षट् द्रव्य नहीं दीसै लगार ॥ २ ॥ जय निराकार अविकार होय । राजत अनंतपरदेश सोय ॥ जय शुद्ध सुगुण अवगाह पाय । दशदिशामाहिं इहविधि लखाय ॥ ३ ॥ यह भेद अलोकाकाश जान । तामध्य लोक नभ तीन मान ॥ स्वयमेव बन्यौ अविचल अनंत । अविनाशि अनादि जु कहत संत ॥ ४ ॥ पुरुषाअकार ठाड़ो निहार । कटि हाथ धारि द्वै पग पसार ॥

दक्छिन उत्तरदिशि सर्व ठौर। राजू जु सात भाख्यो निवोर ॥ ५ ॥ जय पूर्व अपर दिश घाटवाधि। सुन कथन कहूं ताको जु साधि॥ लखि श्वभ्रतलें राजू जु सात। मधिलोक एक राजू रहात ॥ ६ ॥ फिर ब्रह्मसुरग राजू जु पांच। भू सिद्ध एक राजू जु सांच॥ दश चार ऊंच राजू गिनाय। षट्‌द्रव्य लये चतुकोण पाय ॥७॥ तसु वातवलय लपटाय तीन। इह निराधार लखियो प्रवीन॥ त्रसनाडी तामधि जान खास। चतुकोन एक राजू जु व्यास ॥ ८ ॥ राजू उतंग चौदह प्रमान। लखि स्वयं सिद्ध रचना महान॥ तामध्य जीव त्रस आदि देय। निज थान पाय तिष्ठै भलेय॥ ९ ॥ लखि अधोभागमें श्वभ्रथान। गिन सात कहे आगम प्रमान॥ षट्‌थान माहिं नारकि वसेय। इक श्वभ्रभाग फिर तीन भेय ॥ १० ॥ तसु अधोभाग नारकि रहाय। फुनि ऊर्ध्वभाग द्वय थान पाय॥ वस रहे भवन व्यंतर जु देव। पुर हर्म्य छजै रचना स्वमेव ॥ ११ ॥ तिंह थान गेह जिनराज भाख। गिन सात-कोटि बहतरि जु लाख॥ ते भवन नमों मनवचनकाय। गति-श्वभ्रहरनहारे लखाय ॥ १२ ॥ पुनि मध्यलोक गोलाअकार। लखि दीप उदधि रचना विचार॥ गिन असंख्यात भाखे जु संत। लखि संभुरमन सबके जु अंत ॥१३॥ इक राजुव्यासमें सर्व जान। मधिलोकतनों इह कथन मान॥ सबमध्य दीप जंबू गिनेय। त्रयदशम रुचिकवर नाम लेय ॥ १४ ॥ इन तेरहमें जिनधाम जान। सतचार अठावन हैं प्रमान॥ खग देव असुर नर आय आय। पद पूज जांय शिर नाय नाय॥

॥१५॥ जय उर्ध्वलोकसुर कल्पवास। तिहँ थान छजैं जिन-भवन खास ॥ जय लाखचुरासीपै लखेय। जय सहस सत्याणव और ठेय ॥ १६ ॥ जय वीसतीन फुनि जोड देय। जिन-भवन अकीर्तम जान लेय ॥ प्रतिभवन एक रचना कहाय। जिनविंब एकसत आठ पाय ॥ १७ ॥ शतपंच धनुष उन्नत लसाय। पदमासनजुत वर ध्यान लाय ॥ शिर तीन छत्र शोभित विशाल। त्रय पादपीठ मणिजडित लाल ॥ १८ ॥ भामंडलकी छवि कौन गाय। फुनि चँवर दुरत चौसठि लखाय ॥ जय दुंदुभिरव अदभुत सुनाय। जय पुष्पवृष्टि गंधोदकाय ॥ १९ ॥ जय तरुअशोक शोभा भलेय। मंगल विभूति राजत अमेय ॥ घटतूप छजे मणिमाल पाय। घट-धूप धूम्र दिग सर्व छाय ॥ २० ॥ जयकेतुपँक्ति सोहै महान। गंधर्वदेवगन करत गान ॥ सुर जनमलेत लखि अवधि पाय। तिहं थान प्रथम पूजन कराय ॥ जिनगेहतणो वरनन अपार। हम तुच्छबुद्धि किम लहत पार ॥ जयदेव जिनेसुर जगत भूप। नमि 'नेम' मँगै निज देहरूप ॥ २२ ॥

दोहा—तीनलोकमें सासते, श्रीजिनभवन विचार ॥
मन वचतन करि शुद्धता, पूजों अरघ उतार ॥ २३ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसम्बंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमश्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २३ ॥

तिंहु जगभीतर श्रीजिनमंदिर, वने अकीर्त्तम अति सुखदाय।
नर सुर खग करि वंदनीक जे, तिनको भविजन पाठ कराय ॥
धनधान्यादिक संपति तिनके, पुत्रपौत्र सुख होत भलाय।
चक्री सुर खग इंद्र होयकैं, करम नाश सिवपुर सुख थाय ॥२४॥

(इत्याशीर्वाद—पुष्पांजलि क्षिपेत्)

८५। सिद्धपूजा।

अडिल्ल छंद।

अष्टकरमकरि नष्ट अष्ट गुण पायकैं।
अष्टमवसुधामाहिं विराजे जायकैं॥
ऐसे सिद्ध अनंत महंत मनायकैं।
संवौषट् आह्वान करूं हरषायकैं॥ १॥

ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र ममसन्निहितो भव भव। वषट्।

छन्द त्रिभंगी।

हिमवनगतगंगा आदि अभंगा, तीर्थ उतंगा सरवंगा।
आनिय सुरसंगा सलिल सुरंगा, करि मनचंगा भरि भृंगा॥
त्रिभुवनके स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरजामी अभिरामी।
शिवपुरविश्रामी निजनिधिपामी, सिद्ध जजामी सिरनामी॥

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धिचक्राधिपतये जलं॥ १।

हरिचंदन लायो कपूर मिलायो, बहुमहकायो मनभायो।
जलसंगघसायो रंगसुहायो, चरनचढायो हरखायो॥त्रिभु० २

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्व कर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये चंदनं॥२॥

तंदुल उजियारे शशिदुतिहारे, कोमल प्यारे अनियारे।
तुषखंडनिकारे जलसु पखारे पुंज तुमारे ढिग धारें॥त्रिभु०॥

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमायसर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये अक्षतान्॥३।

सुरतरुकीवारी, प्रीतिविहारी, किरिया प्यारी गुलजारी।
भरि कंचन थारी फूल सवांरी, तुमपदढारी अति सारी॥त्रिभु०

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमायसर्वकर्म विनिर्मुक्ताय सिद्धिचक्राधिपतये पुष्पं॥४॥

पकवान निवाजे, स्वाद विराजे, अम्रत लाजे क्षुत भाजे।

बहु मोदक छाजे, घेवर खाजे, पूजन काजे करि ताजे ।।त्रिभु०
ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धिचक्राधिपतये नैवेद्यं ।।५।।

आपा परभासै ज्ञानप्रभाशै, चित्त विकासै तम नासै ।
ऐसे विध खासे दीप उजासे, धरि तुम पासे उल्लासे ।।त्रिभु०।।
ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये दीपं ।। ६ ।।

चुंबक अलिमाला गंधविशाला, चंदनकाला गरु बाला ।
तस चूर्ण रसाला करि ततकाला, अगनीज्वालामें डाला ।।त्रि०
ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धिचक्राधिपतये धूपं० ।।७।।

श्रीफल अतिभारा, पिस्ता प्यारा, दाख छुहारा सहकारा ।
रितु रितुका न्यारा सत्फलसारा, अपरंपारा लै धारा ।।त्रिभु०।
ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये फलं ।।८।।

जल फल वसुवृंदा अरघअमंदा, जजत अनंदाके कंदा ।
मेटो भवफंदा सब दुखदंदा, 'हीराचंदा' तुम बंदा ।।त्रिभु०।।९।।
ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये अर्घ्यं ।।९।।

अथ जयमाला ।

दोहा—ध्यानदहनविधिदारु दहि, पायो पद निरवान ।
पंचभावजुत थिर थये, नमों सिद्ध भगवान ।। १ ।।

त्रोटक छंद ।

सुख सम्यकदर्शन ज्ञान लहा । अगुरू-लघु सूक्षमवीर्य महा ।
अवगाह अवाध अघायक हो । सबसिद्धिनमोंसुखदायक हो ।।
असुरेंद्र सुरेंद्र नरेंद्र जजैं । भुवनेंद्र खगेंद्र गणेन्द्र भजैं ।।
जर जामन मर्ण मिटायक हो । सबसिद्धिनमोंसुखदायक हो ।।
अमलं अचलं अकलं अकुलं । अछलं असलं अरलं अतुलं ।।
अरलं सरलं शिवनायक हो । सबसिद्धिनमोंसुखदायक हो ।।
अजरं अमरं अधरं सुधरं । अडरं अहरं अमरं अधरं ।।

अपरं असरं सब लायक हो। सबसिद्धनमोंसुखदायक हो ॥
वृषवृंद अमंद न निंद लहै। निरदंद अफंद सुछंद रहै ॥
नितआनँदवृंद विधायकहो। सबसिद्धिनमोंसुखदायक हो ॥
भगवंत सुसंत अनंत गुणी। जयवंत महंत नमंत मुनी ॥
जगजंतु तणे अघघायक हो। सबसिद्धनमोंसुखदायक हो ॥
अकलंक अटंक शुभंकर हो। निरडंक निशंक शिवंकर हो ॥
अभयंकर शंकर क्षायक हो। सबसिद्धिनमोंसुखदायक हो ॥
अतरंग अरंग असंग सदा। भवभंग अभंग उतंग सदा ॥
सरवंग अनंग नसायक हो। सबसिद्धनमोंसुखदायक हो ॥
ब्रहमंड जु मंडलमंडन हो। तिहु दंड प्रचंड विहंडन हो ॥
चिद पिंड अखंड अकायक हो। सबसिद्धनमोंसुखदायक हो ॥
निरभोग सुभोग वियोग हरे। निरजोग अरोग अशोग धरे ॥
भ्रमभंजन तीक्षण सायक हो। सबसिद्धनमोंसुखदायक हो ॥
जयलक्ष अलक्ष सुलक्ष्यक हो। जय दक्षक पक्षक रक्षक हो ॥
पण अक्ष प्रतक्ष खपायक हो। सबसिद्धिनमोंसुखदायक हो ॥
अप्रमाद अनाद सुस्वादरता। उनमाद विवाद विषादहता ॥
समता रमता अकषायक हो। सबसिद्धिनमोंसुखदायक हो ॥
निरभेद अखेद अछेद सही। निरवेद निवेदन वेद नही ॥
सब लोक अलोकके ज्ञायक हो। सबसिद्धनमोंसुखदायक हो ॥
अमलीन अदीन अरीन हने। निजलीन अधीन अछीन बने ॥
जमको घनघात बचायक हो। सबसिद्धनमोंसुखदायक हो ॥
न अहार निहार विहार कबै। अविकार अपार उदार सबै ॥
जगजीवनके मनभायक हो। सबसिद्धिनमोंसुखदायक हो ॥

असमंध अधंद अरंध भये। निरबंध अखंध अगंध ठये॥
अमनं अतनं निरवायक हो। सबसिद्धनमोंसुखदायक हो॥
निरवर्ण अकर्ण उधर्ण बली। दुखहर्ण अशर्ण सुशर्ण भली॥
बलि मोहकी फौज भगायक हो। सबसिद्धनमोंसुखदायक हो
अविरुद्ध अक्रुद्ध अजुद्ध प्रभू। अति शुद्ध प्रबुद्ध समृद्ध विभू॥
परमातम पूरन पायक हो। सबसिद्धनमोंसुखदायक हो॥
विररूप चिद्रूप स्वरूप द्युती। जसकूप अनूपम भूप भुती॥
कृतकृत्य जगत्त्रय नायक हो। सबसिद्धनमोंसुखदायक हो॥
सब इष्ट अभीष्ट विशिष्ट हितू। उतकिष्ट वरिष्ट गरिष्टमितू
शिवतिष्टत सर्वसहायक हो। सबसिद्धिनमोंसुभदायक हो॥
जय श्रीधर श्रीधर श्रीवरहो। जय श्रीकर श्रीभर श्रीझरहो॥
जय रिद्धि सुसिद्धि बढायकहो। सबसिद्धनमों सुखदायक हो॥
दोहा—सिद्ध सुगुण को कहि सकै, ज्यो विलस्त नभमान।
'हीराचंद' तातैं जजै, करहु सकल कल्यान॥ २३॥

ओं ह्रीं अनाहतपराक्रमाय सकलकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

(यहांपर विसर्जन भी करना चाहिये)

अडिल्ल।

सिद्ध जजैं तिनको नहिं आवै आपदा।
पुत्र पौत्र धन धान्य लहै सुख संपदा॥
इंद्र चंद्र धरणेंद्र नरेंद्र जु होयकैं।
जावै मुकतिमझार करम सब खोयकैं॥ २४॥

(इत्याशीर्वादाय पुष्पांजलिं क्षिपेत्) समाप्ता।

८६ । समुच्चयचौवीसी पूजा ।

(कविवर वृन्दावनजीकृत)

वृषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पदम सुपास जिनराय।
चंद पुहुप शीतल श्रियांस नमि, वासुपूज पूजितसुरराय ॥
विमल अनंत धर्मजसउज्जल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पासप्रभु, वर्द्धमानपद पुष्प चढ़ाय ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतचतुर्विंशतिजिनसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

मुनिमनसम उज्जल नीर, प्रासुक गंध भरा।
भरि कनकटोरी धीर, दीनीं धार धरा ॥
चौवीसों श्रीजिनचंद, आनँदकंद सही।
पदजजत हरत भवफंद, पावत मोक्षमही ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि० ॥ १ ॥

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रंगभरी।
जिनचरनन देत चढ़ाय, भवआताप हरी ॥ चौवीसों० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं नि० ॥ २ ॥

तंदुल सित सोमसमान, सुंदर अनियारे।
मुकुताफलकी उनमान, पुंज धरों प्यारे ॥ चौवीसों० ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि० ॥ ३ ॥

वरकंज कदंब कुरंड, सुमन सुगंध भरे।
जिन अग्र धरौं गुनमंड, कामकलंक हरे ॥ चौवीसों० ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० ॥ ४ ॥

मनमोदनमोदक आदि, सुंदर सद्य बने।
रसपूरित प्रासुक स्वाद, जजत छुधादि हने ॥ चौवीसों० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० ॥ ५ ॥

तमखंडन दीप जगाय, धारों तुम आगैं।
सब तिमिरमोह क्षय जाय, ज्ञानकला जागै ॥ चौवीसों० ॥६॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि० ॥ ६ ॥

दशगंध हुताशनमांहिं, हे प्रभु खेवत हों।
मिस धूम करम जरि जांहि, तुम पद सेवत हों ॥ चौवीसों०॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि० ॥ ७ ॥

शुचि पक्क सुरस फल सार, सब ऋतुके ल्यायो।
देखत दृगमनको प्यार, पूजत सुख पायो ॥ चौवीसों० ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० ॥ ८ ॥

जलफल आठों शुचिसार, ताको अर्घ करों।
तुमको अरपों भवतार, भवतरि मोच्छ वरों ॥ चौवीसों० ॥९॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

जयमाला।

दोहा—श्रीमत तीरथनाथपद, माथ नाय हितहेत।
गाऊं गुणमाला अबै, अजर अमरपददेत ॥ १ ॥

घत्ता।

जय भवतमभंजन जनमनकंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छ करा।
शिवमगपरकाशक अरिगननाशक, चौवीसौं जिनराज वरा ॥

पद्धरी छन्द।

जय रिषभदेव रिषिगन नमंत। जय अजित जीत वसुअरि तुरंत
जय संभव भवभय करत चूर। जय अभिनंदन आनंदपूर ॥
जय सुमति सुमतिदायक दयाल। जय पद्म पद्मदुतितनरसाल ॥
जय जय सुपास भवपासनाश। जय चंद चंदतनदुतिप्रकाश ॥
जय पुष्पदंत दुतिदंत सेत। जय शीतल शीतलगुननिकेत ॥

जय श्रेयनाथ नुतसहसभुज्ज । जय वासवपूजित वासुपुज्ज ॥
जय विमल विमलपददेनहार । जय जय अनंत गुनगन अपार ॥
जय धर्म धर्म शिवशर्म देत । जय शांति शांति पुष्टी करेत ॥
जय कुंथु कुंथुवादिक रखेय । जय अर जिन वसुअरि छयकरेय ॥
जय मल्लि मल्ल हतमोहमल्ल । जय मुनिसुव्रत व्रतशल्लदल्ल ॥
जय नमि नित वासवनुत सपेम । जय नेमनाथ वृषचक्रनेम ॥
जय पारसनाथ अनाथनाथ । जय वर्द्धमान शिवनगर साथ ॥

घत्तानंद छंद ।

चौवीस जिनंदा आनँदकंदा पापनिकंदा सुखकारी ।
तिनपदजुगचंदा उदय अमंदा, वासववंदा हितधारी ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतिजिनेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

सोरठा ।

भुक्ति-मुक्ति-दातार, चौवीसौं जिनराज वर ।
तिनपद मनवचधार, जो पूजैं सो शिव लहैं ॥ १० ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

८७। अथ श्रीआदिनाथजीकी पूजा ।

अडिल्ल ।

परमपूज्य वृषभेश स्वयंभूदेवजू । पिता नाभि मरुदेवि करैं सुर सेवजू ॥ कनक वरण तनतुंग धनुषपनसततनो । कृपासिंधु इत आय तिष्ट मम दुख हनो ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्र ! अत्र ममसन्निहितो भव भव विषट् ।

हिमवनोद्भव वारि सुधारके । जजतहूं गुणबोध उचारके ।
परम भाव सुखोदधि दीजिये । जनममृत्युजराक्षय कीजिये ॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्राय जलं निर्वपामीति स्वाहाः ॥ १ ॥

मलय चंदन दाहनिकंदनं । घसि उभै करमैं कर वंदनं ॥
जजत हूं प्रशमाश्रम दीजिये । तपततापत्रिधा छय कीजिये ॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्राय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अमल तंदुल खंडविवर्जितं । सित निसेस हिमामिय तर्जितं ॥
जजतहूं तसुपुंज धरायजी । अखय संपति द्यो जिनरायजी ॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

कमल चंपक केतुकी लीजिये । मदनभंजन भेंट धरीजिये ॥
परम शील महासुख दाय हैं । समरशूल निमूल नशाय हैं ॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

सरस मोदन मोदक लीजिये । हरनभूख जिनेश जजीजिये ॥
शकल आकुलअंतकहेतु हैं । अतुल शांति सुधारस देतु हैं ॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

निवड मोह महातम छाइयो । स्वपर भेद न मोहि लखाइयो ॥
हरन कारन दीपक तासके । जजतहूं पद केवलभासके ॥

ओं ह्रीं आदिनाथजिनेंद्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

अगर चंदन आदिक लेयकैं । परम पावन गंध सुखेयकैं ॥
अगनिसंग जरैं मिस धूमके । शकल कर्म उडै यहघूमके ॥

ओं ह्रीं आदिनाथजिनेंद्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

सरस पक्कमनोहर पावने । विविध ले फल पूज रचावने ॥
त्रिजगनाथ कृपा अब कीजिये । हमहि मोक्ष महाफल दीजिये ॥

ओं ह्रीं आदिनाथ जिनेंद्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल फलादि समस्त मिलायकें । जजतहूं पद मंगल गायके ॥
भगतवत्सल दीनदयालजी । करहु मोहि सुखी लखि हालजी ॥

ओं ह्रीं आदिनाथजिनेंद्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

पंचकल्याणक।

असित दोज अषाढ़ सुहावनी। गरभ मंगलको दिन पावनी॥
हरि सची पितु मातहिं सेंवहीं। जजत हैं हम श्रीजिनदेवहीं॥
ओं ह्रीं आषाढकृष्णद्वितीयादिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेंद्राय अर्घ्यं॥१॥

असित चैत सुनौमि सुहाइयो। जनममंगल तादिन पाइयो॥
हरि महागिरपै जजियो तबै। हम जजैं पद पंकजको अबैं॥
ओं ह्रीं चैत्रकृष्णनवमीदिने जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेंद्राय अर्घ्यं॥२॥

असित नौमिसु चैतधर्यो सही। तपविशुद्ध सबै समता गही।
निज सुधारससौं लव लाइयो। हम जजैं पद अर्घ चढ़ाइयो॥
ओं ह्रीं चैत्रकृष्णनवमीदिने दीक्षामंगलप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेंद्राय अर्घं। ३॥

असित फागुन ग्यारसि सोहनो। परम केवलज्ञान जग्यौ भनो।
हरिसमूह जजे तित आयकैं। हम जजैं इत मंगल गायकैं॥
ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानमंगलप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेंद्राय अर्घं॥ ४॥

असित चौदस माघ विराजई। परम मोक्ष लियो जिनराजई।
हरि समूह जजे कैलाशजी। हम जजैं इतधार हुलासजी॥
ओं ह्रीं माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेंद्राय अर्घं निर्व० ५

जयमाला।

जय जय जिनचंदा आदि जिनंदा हरि भवफंदा-कंदा जू।
वासवसतवंदा धरि आनंदा ज्ञानअमंदा नंदा जू॥ १॥

छंद मोतीदास

त्रिलोकहितंकर पूरन पर्म। प्रजापति विष्णु चिदातम धर्म॥
जतीस्वर ब्रह्म विदांवर बुद्ध। वृषंक असेक क्रियांबुधि शुद्ध॥
जबै गरभागममंगल जान। तबै हरि हर्ष हिये अति आन॥
पिता जननीपदसेव करेय। अनेक प्रकार उमंग भरेय॥ २॥
जये जबही तबही हरि आय। गीरींद्रविषै कियन्हौन सुजाय।

नियोग समस्त किये तितसार । सुल्याय प्रभू पुनि राजअगार
पिताकर सौंपि कियो तित नाट । अमंद अनंद समेत विराट ॥
सुथान पयान कियो फिर इंद्र । इहां सुर सेव करैं जिनचंद्र ॥५॥
कियो चिरकाल सुखाश्रितराज । प्रजा सब आनँदको नित साज
सुलिप्त सुभोगनमैं लखिजोग । कियो हरिने यह उत्तम योग ॥
निलंजन नाच रच्यो तुमपास । नवोंरसपूरित भाव विलास ॥
बजै मिरदंग द्रमंद्रम जोर । चलै पग झार झनंझन झोर ॥७॥
घनाघन घंट करै धुनि मिष्ट । बजै मुहचंग सुरान्वित पुष्ट ॥
खड़ी छिन पास छिनैहि अकाश । लघू छिन दीरघ आदिविलास
ततच्छिन ताहि विलै अवलोय । भये भवतैं भयभीत बहोय ॥
सुभावत भावन बारह भाय । तहां दिवब्रह्म ऋषींश्वर आय ॥
प्रबोध जिनेश गये निजधाम । तबै हरि आप रचीशिवकाम ॥
कियौ कचलौंच प्रयागअरन्य । चतुर्थम ज्ञान लह्यो जग धन्य ॥
धर्यो जब जोग छमासप्रमान । दियो सिरियांस तिन्हें इखदान
भयो जब केवलज्ञान जिनंद । समोश्रितठाठ रच्यो सुधानिंद ॥
तहां बृषतत्त्व प्रकाश असेस । कियो फिर निर्भयथानप्रवेश ॥
अनंतगुणातम श्रीसुखरास । तुमैं नित भव्य नमैं शिव आस ॥

घत्ता—यह अरज हमारी, सुन त्रिपुरारी, जन्मजरा मृत, दूर करो । शिवसंपति दीजे, ढील न कीजे, निज लखिलीजे, कृपा धरो ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं श्री आदिनाथजिनेंद्राय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

अथाशीर्वादः आर्या ।

जो ऋषभेस्वर पूजैं, मनवच तनभाव शुद्ध कर प्रानी ।
सो पावै निश्चैसों, भुक्ती ओ मुक्ति सार सुखथानी ॥१४॥

इत्याशीर्वादः ।

८८ । श्रीचंद्रप्रभजिनपूजा ।

छप्पय—अनौष्ठ्य यमकालंकार तथा शब्दालंकार शान्तरस ।

चारुचरन आचरन, चरन चितहरनचिहनचर ।
चंदचंदतनचरित, चंदथल चहत चतुर नर ॥
चतुक चंड चकचूरि, चारि चिदचक्र गुनाकर ।
चंचल चलितसुरेश, चूलनुत चक्र धनुरधर ॥
चरअचरहितू तारनतरन, सुनत चहकि चिरनंद शुचि ।
जिनचंदचरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रचि रुचि ॥१॥

दोहा—धनुष डेढसौ तुंग तन, महासेन नृपनंद ।
मातुलछमनाउर जये, थापों चंदजिनंद ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट ।
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! तत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ॥

अष्टक ।

चाल द्यानतरायकृत नंदीश्वराष्टककी अष्टपदी तथा होलीकी तालमें, तथा गरभा आदि अनेक चालोंमें ।

गंगाहृदनिरमल नीर, हाटकभृंगभरा ।
तुम चरन जजों वरवीर, मेटो जनमजरा ॥
श्रीचंदनाथदुति चंद, चरनन चंद लगै ।
मनवचतन जजत अमंद, आतमजोति जगै ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामि० ॥ १ ॥

श्रीखंडकपूर सुचंग, केशररंग भरी ।
घसि प्रासुकजलके संग, भवआताप हरी ॥ श्री० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामि ॥ २ ॥

तंदुल सित सोमसमान, समलय अनियारे ।

दिय पुंज मनोहर आन, तुमपदतर प्यारे ॥ श्री० ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि ॥ ३ ॥

सुरद्रुमके सुमन सुरंग, गंधित अलि आवे ।

तासों पद पूजत चंग, कामविथा जावे ॥ श्री० ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि ॥ ४ ॥

नेवज नानापरकार, इंद्रियबलकारी ।

सो लै पद पूजों सार, आकुलताहारी ॥ श्री० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामि ॥ ५ ॥

तमभंजन दीप सँवार, तुमढिग धारतु हों ।

मम तिमिरमोह निरवार, यह गुन धारतु हों ॥ श्री० ६ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामि ॥ ६ ॥

दशगंधहुतासनमाहिं, हे प्रभु खेवतु हौं ।

मम करम दुष्ट जरि जांहि, यातैं सेवतु हौं ॥ श्री० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामति स्वाहा ॥ ७ ॥

अति उत्तम फल सु मगाय, तुम गुनगावतु हों ।

पूजों तनमन हरषाय, विघन नशावतु हों ॥ श्री० ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों ।

पूजों अष्टमजिन मीत, अष्टम अवनि गमों ॥ श्री० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

पंचकल्याणक ।

छंद तोटक (वर्ण १२)

कलि पंचमचैत सुहात अली । गरभागममंगल मोद भली ॥

हरि हर्षित पूजत मातु पिता । हम ध्यावत पावत शर्मसिता ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं नि० ॥ १ ॥

कलि पौष इकादशि जन्म लयो । तब लोकविषैं सुखथोक भयो ॥

सुरईश जजैं गिरशीश तवैं। हम पूजत हैं नुतशीस अवैं ॥
ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्व० ॥ २ ॥

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा। कलिपौष इग्यारसि पर्व वरा ॥
निजध्यानविषै लवलीन भये। धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥
ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां निःक्रमणमहोत्सवमंडिताय चंद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं नि० ।३।

वर केवलभानु उद्योत कियो। तिहुंलोकतणों भ्रम मेट दियो ॥
कलिफाल्गुणसत्तमि इंद्र जजे। हम पूजहिं सर्व कलंक भजे ॥
ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्व० ।४।

सित फाल्गुण सत्तमि मुक्ति गये। गुणवंत अनंत अवाध भये ॥
हरि आय जजे तित मोदधरे। हम पूजत ही सब पाप हरे ॥
ओं ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीचंद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं नि० ॥५॥

जयमाला।

दोहा—हे मृगांकअंकित चरण, तुम गुण अगम अपार।
गणधरसे नहिं पार लहिं, तौ को वरनत सार ॥ १ ॥
पै तुम भगति हिये मम, प्रेरै अति उमगाय।
तातैं गाऊं सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय ॥ २ ॥

छंद पद्धरि (१६ मात्रा)

जय चंद्र जिनेंद्र दयानिधान। भवकाननहानन दौंप्रमान ॥
जय गरभजनममंगल दिनंद। भविजीवविकाशन शर्मकंद ॥
॥ ३ ॥ दशलक्षपूर्वकी आयु पाय। मनवांछित सुख भोगे जिनाय ॥ लखि कारण ह्वै जगतैं उदास। चिंत्यो अनुप्रेक्षा सुखनिवास ॥ ४ ॥ तित लौकांतिक बोध्यो नियोग। हरि शिविका सजि धरियो अभोग ॥ तापै तुम चढ़ि जिनचंदराय। ताछिनकी शोभा को कहाय ॥ ५ ॥ जिन अंग सेत सित चमर ढार। सित छत्र शीस गलगुलकहार ॥ सित रतन-

जड़ित भूषण विचित्र। सित चंद्रचरण चरचैं पवित्र ॥ ६ ॥ सित तनद्युति नाकाधीश आप। सित शिविका कांधे धरि सुचाप ॥ सित सुजस सुरेश नरेश सर्व। सित चितमें चिंतत जात पर्व ॥७॥ सित चंद्रनगरतैं निकसि नाथ। सित बनमैं पहुंचे सकल साथ ॥ सितशिलाशिरोमणि स्वच्छछाँह। सित तप तित धार्‍यो तुम जिनाह ॥ ८ ॥ सित पयको पारण परमसार। सित चंद्रदत्त दीनों उदार ॥ सित करमें सो पय-धार देत। मानो बांधत भवसिंधुसेत ॥ ९ ॥ मानों सुपुण्य-धारा प्रतच्छ। तित अचरज पन सुर किय ततच्छ ॥ फिर जाय गहन सित तपकरंत। सित केवलज्योति जग्यो अनंत ॥१०॥ लहि समवसरणरचना महान। जाके देखत सब पाप हान ॥ जहँ तरु अशोक शोभै उतंग। सब शोकतनो चूरै प्रसंग ॥ ११ ॥ सुर सुमनवृष्टि नभतैं सुहात। मनु मन्मथ तज हथियार जात ॥ बानी जिनमुखसौं खिरत सार। मनु तत्त्वप्रकाशन मुकुर धार १२ ॥ जहँ चौसठ चमर अमर ढुरंत। मनु सुजस मेघ झरि लगिय तंत ॥ सिंहासन है जहँ कमल जुक्त। मनु शिवसरवरको कमलशुक्त ॥ १३ ॥ दुंदुभि जित बाजत मधुर सार। मनु करमजीतको है नगार ॥ शिर छत्र फिरै त्रय श्वेत वर्ण। मनु रतन तीन त्रयताप हर्ण ॥१४॥ तनप्रभातनों मंडल सुहात। भवि देखत निजभव सात सात ॥ मनु दर्पणद्युति यह जगमगाय। भविजन भव मुख देखत सु आय ॥ १५ ॥ इत्यादि विभूति अनेक जान। बाहिज दीसत महिमा महान ॥ ताको वरणत नहिं लहत पार। तौ अंतरंग

को कहै सार ॥ १६ ॥ अनअंत गुणनिजुत करि विहार । धरमोपदेश दे भव्य तार ॥ फिर जोगनिरोधि अघाति हान । सम्मेदथकी लिय मुकतिथान ॥ १७ ॥ वृन्दावन वंदत शीश नाय । तुम जानत हो मम उर जु भाय ॥ तातैं का कहौं सु बार बार । मनवांछित कारज सार सार ॥ १८ ॥

छंद घत्तानंद ।

जय चंदजिनंदा, आनँदकंदा, भवभयभंजन राजै हैं ।
रागादिक द्वंदा, हरि सब फंदा, मुकतिमांहि थिति साजै हैं ॥

ओं ह्रीं श्रीचंद्रप्रभजिनेंद्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

छंद चौबोला ।

आठों दरब मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचंद जजैं ।
ताके भवभवके अघ भाजैं, मुक्तसारसुख ताहि सजैं ॥ २० ॥
जमके त्रास मिटैं सब ताके, सकल अमंगल दूर भजैं ।
वृंदावन ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुरि राज रजैं ॥ २१ ॥

इत्याशीर्वादः । परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् । इति श्रीचंद्रप्रभजिनपूजा समाप्त ।

८९ । श्रीशांतिनाथजिनपूजा ।

मत्तगयंद छंद (तथा यमकालंकार) ।

या भवकाननमें चतुरानन, पापपनानन घेरि हमेरी ।
आतमजानन मानन ठानन, बान न होन दई सठ मेरी ॥
तामदभानन आपहि हो, यह छानन आन न आननटेरी ।
आन गही शरनागतको अब, श्रीपतजी पत राखहु मेरी ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ॥ ३ ॥

अष्टक ।

छंद त्रिभंगी । अनुप्रासक । (मात्रा ३२ जगनवर्जित)

हिमगिरिगतगंगा, धार अभंगा, प्रासुक संगा भरि भृंगा ।
जरमरनमृतंगा, नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदुहिंगा ॥
श्रीशांतिजिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं ।
हनि अरिचक्रेशं हे गुनधेशं, दयामृतेशं मक्रेशं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

वर बावनचंदन, कदलीनंदन, घनआनंदन सहित घसों ।
भवतापनिकंदन, एरानंदन, बंदि अमंदन, चरनवसों ॥ श्री०

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

हिमकरकरिलज्जत, मलयसुसज्जत, अच्छतजज्जत, भरि थारी ।
दुखदारिद गज्जत सदपदसज्जत भवभय भज्जत अतिभारी ।श्री०

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

मंदार सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं, मलयभरं ।
भरि कंचनथारी, तुम ढिग धारी, मदनविदारी, धीरधरं ।श्री०

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

पकवान नवीने, पावन कीने, षटरसभीने, सुखदाई ।
मनमोदनहारे, छुधा विदारे, आगैं धारे, गुनगाई ॥ श्री० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

तुम ज्ञानप्रकाशे, भ्रमतम नाशे, ज्ञेयविकाशे, सुखरासे ।
दीपक उजियारा यातैं धारा, मोहनिवारा निजभासे ॥ श्री० ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

चंदन करपूरं, करि वरचूरं, पावक भूरं, माहि जुरं ।
तसु धूम उडावै नाचत जावै, अलि गुंजावै मधुरसुरं ॥ श्री० ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

बादाम खजूरं, दाड़िम पूरं, निंबुक भूरं, ले आयो।
तासों पद जज्जों शिवफल सज्जों, निजरसरज्जों उमगायो।श्री०

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

वसुद्रव्य सँवारी, तुमढिगधारी, आनँदकारी दृगप्यारी।
तुम हो भवतारी करुनाधारी, यातैं थारी शरनारी ॥ श्री० ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

पंचकल्याणक।

सुन्दरी तथा द्रुतविलंबित छंद।

असित सातयँ भादव जानिये। गरभमंगल तादिन मानिये ॥
सचि कियो जननी पद चर्चनं। हम करैं इत ये पद अर्चनं ॥१॥

ओं ह्रीं भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घं नि० ॥

जनम जेठ चतुर्दशि श्याम है। सकलइंद्र सुआगत धाम है ॥
गजपुरे गज साजि सबै तबैं। गिरि जजे इत मैं जजिहों अबैं ॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घं नि०।

भवशरीर सुभोग असार हैं। इमि विचार तबै तप धार हैं ॥
भ्रमर चौदशि जेठ सुहावनी। धरमहेत जजों गुनपावनी ॥३॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां निःक्रमणमहोत्सवमंडिताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घं।

शुकलपौष दशैं सुखराश है। परम-केवल-ज्ञान प्रकाश है ॥
भवसमुद्रउधारन देवकी। हम करैं नित मंगल सेवकी ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घं नि० ॥

असित चौदस जेठ हने अरी। गिरि समेदथकी शिव-तियवरी
सकल इंद्र जजैं तित आइकैं। हम जजैं इत मस्तक नाइकैं ॥

ं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घं नि० ॥५॥

जयमाला।

छंद रथोद्धता, चंद्रवत्सा तथा चंद्रवर्त्म (वर्ण ११, लाटानुप्रास)

शांतिगुनमंडिते सदा। जाहि ध्यावत सुपंडिते सदा ॥

मैं तिन्हैं भगतिमंडिते सदा। पूजि हों कलुषहंडिते सदा॥१॥
मोच्छहेत तुम ही दयाल हो। हे जिनेश गुनरत्नमाल हो॥
मैं अबै सुगुनदाम ही धरों। ध्यावतें तुरित मुक्ति ती वरों॥

छंद पद्धरि (१६ मात्रा)।

जय शांतिनाथ चिद्रूपराज। भवसागरमें अदभुत जहाज॥
तुम तज सरवारथसिद्ध थान। सरवारथजुत गजपुर महान॥
तित जनम लियो आनंदधार। हरि ततछिन आयो राजद्वार॥
इंद्रानी जाय प्रसूति थान। तुमको करमें लै हरष मान॥ २॥
हरि गोद देय सो मोदधार। सिर चमर अमर ढारत अपार॥
गिरिराज जाय तित शिलापांड। तापैं थाप्यौ अभिषेक मांड॥
तित पंचम उदधितनों सुवार। सुर कर कर करि ल्याये उदार॥
तव इंद्र सहसकर करि अनंद। तुम सिर धारा ढारयौ सुनंद॥
अघ घघ घघ घघ धुनि होत घोर। भभ भभ भभ घघ घघ कलशशोर॥ द्रमद्रम द्रमद्रम वाजत मृदंग। झन नन नन नन नन नूपुरंग॥ ५॥ तन नन नन नन नन तनन तान। घन नन नन घंटा करत ध्वान॥ ताथेई थेई थेई थेई थेई सुचाल। जुत नाचत नावत तुमहि भाल॥ ६॥ चट चट चट अटपट नटत नाट। झट झट झट हट नट शट विराट॥ इमि नाचत राचत भगत रंग। सुर लेत जहां आनंद संग॥ ७॥ इत्यादि अतुल मंगल सुठाट। तित बन्यौ जहां सुरगिरि विराट॥ पुनि करि नियोग पितुसदन आय। हरि सौंप्यौ तुम तित वृद्ध थाय॥ ८॥ पुनि राजमाहिं लहि चक्ररत्न। भोग्यौ छखंड करि धरम जत्न॥ पुनि तप धरि केवलरिद्धि

पाय। भवि जीवनकों शिवमग बताय ॥ ९ ॥ शिवपुर पहुंचे तुम हे जिनेश। गुनमंडित अतुल अनंत भेष ॥ मैं ध्यावतु हौं नित शीश नाय। हमरी भवबाधा हरि जिनाय ॥ १० ॥ सेवक अपनों निज जान जान। करुना करि भौभय भान भान ॥ यह विघन मूल तरु खंड खंड। चितचिंतित आनँद मंड मंड ॥ ११ ॥

घत्तानंद छंद (मात्रा ३१)।

श्रीशांतिमहंता, शिवतियकंता, सुगुन अनंता, भगवंता।
भवभ्रमन हनंता, सौख्य अनंता, दातारं तारनवंता ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

छंद रूपक सवैया (मात्रा ३१)।

शांतिनाथजिनके पदपंकज, जो भवि पूजै मनवचकाय।
जनम जनमके पातक ताके, ततछिन तजिकैं जाय पलाय ॥
मनवांछित सुख पावै सो नर, बांचै भगतिभाव अति लाय ॥
तातैं 'वृंदावन' नित बंदैं, जातैं शिवपुरराज कराय ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः। पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

६०। निर्वाणक्षेत्र पूजा।

परम पूज्य चौवीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये।
सिद्धभूमि निशदीस, मनवचतन पूजा करौं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्।
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः।
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र मम सन्निहितानि भवत भवत। वषट्।

गीता छंद।

शुचि छीर दधि सम नीर निरमल, कनकझारीमें भरौं।
संसारपार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं ॥

संमेदगिरि गिरनार चंपा, पावापुरि कैलासकों।
पूजों सदा चौबीसजिननिर्वाणभूमिनिवासकौं ॥ १ ॥
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं ॥ १ ॥

केशर कपूर सुगंध चंदन सलिल शीतल विस्तरौं।
भवतापको संताप मेटो, जोर कर विनती करौं ॥ संमेद० ॥
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो चंदनं ॥ २ ॥

मोतीसमान अखंड तंदुल, अमल आनंदधरि तरौं।
औगुन हरौ गुन करौ हमको, जोर कर विनती करौं ॥संमेद०
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अक्षतान् नि० ॥ ३ ॥

शुभफूलरास सुबासवासित, खेद सब मनके हरौं।
दुखधामकामविनाश मेरो, जोर कर विनती करौं ॥ संमेद०॥
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति ॥ ४ ॥

नेवज अनेक प्रकार जोग मनोग धरि भय परिहरौं।
यह भूखदूखन टार प्रभुजी, जोर कर विनती करौं ॥ संमेद०॥
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं नि० ॥ ५ ॥

दीपक प्रकाश उजास उज्जल, तिमिरसेती नहिं डरौं।
संशयविमोहविभरम तमहर, जोर कर विनती करौं ॥ संमेद०
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं ॥ ६ ॥

शुभ धूप परम अनूप पावन, भाव पावन आचरौं।
सब करमपुंज जलाय दीज्यौ, जोर कर विनती करौं ॥ सं०।
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूपं ॥ ७ ॥

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चारगतिसौं निरवरौं।
निहचै मुकतिफल देहु मोकौं, जोर कर विनती करौं ॥संमेद०
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल गंध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगततैं, जोर कर विनती करौं ॥ सं०
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं ॥ ९ ॥

अथ जयमाला ।

सोरठा—श्रीचौबीस जिनेश, गिरिकैलाशादिक नमों ।
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवाणतैं ॥ १ ॥

चौपाई १६ मात्रा ।

नमों रिषभ कैलासपहारं । नेमिनाथ गिरनार निहारं ॥
वासुपूज्य चंपापुर बंदौं । सनमति पावापुर अभिनंदौं ॥ २ ॥
बंदौं अजित अजितपददाता । बंदौं संभव भवदुखघाता ॥
बंदौं अभिनंदन गणनायक । बंदौं सुमति सुमतिके दायक ॥
बंदौं पदम मुकतिपदमाकर । बंदौं सुपास आशपासाहर ॥
बंदौं चंद्रप्रभ प्रभुचंदा । बंदौं सुविधि सुविधिनिधि कंदा ॥४॥
बंदौं शीतल अघ तप शीतल । बंदौं श्रियांस श्रियांस महीतल
बंदौं विमल विमल उपयोगी । बंदौं अनँत अनँत सुखभोगी ॥
बंदौं धर्म धर्म विसतारा । बंदौं शांति शांतिमनधारा ॥
बंदौं कुंथु कुंथु रखवालं । बंदौं अर अरिहर गुणमालं ॥ ६ ॥
बंदौं मल्लि काममल चूरन । बंदौं मुनिसुव्रत व्रतपूरन ॥
बंदौं नमि जिन नमित सुरासुर । बंदौं पास पासभ्रमजगहर ॥
बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर । शिखर सम्मेद महागिरि भूपर ॥
एकबार बंदै जो कोई । ताहि नरक पशुगति नहिं होई ॥८॥
नरपतिनृप सुरशक्र कहावै । तिहुं जग भोग भोगि शिव पावै ॥
विघनविनाशन मंगलकारी । गुणविलास बंदौं भवतारी ॥९॥
घत्ता—जो तीरथ जावै पाप मिटावै, ध्यावै गावै भगति करै ।
ताको जस कहिये संपति लहिये, गिरिके गुण को बुध उचरै ॥

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामि ॥

६१। अथ सप्तऋषि पूजा।

छप्पय।

प्रथम नाथ श्रीमन्व दुतिय स्वरमन्व ऋषीश्वर।
तीसर मुनि श्रीनिचय सर्वसुंदर चौथो वर॥
पंचम श्रीजयवान विनयलालस षष्ठम भनि।
सप्तम जयमित्राख्य सर्व चारित्रधाम गनि॥
ये सातौं चारणऋद्धिधर, करूं तासु पद थापना।
मैं पूजूं मनवचकायकरि, जो सुख चाहूं आपना॥

ओं ह्रीं चारणर्द्धिधरश्रीसप्तर्षीश्वरा! अत्रावतरातर संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत। वषट्।

अष्टक—गीता छंद।

शुभतीर्थउद्भव जल अनूपम, मिष्ट शीतल लायकैं॥
भव तृषा कंद निकंद कारण, शुद्ध घट भरवायकैं॥
मन्वादि चारण ऋद्धिधारक, मुनिनकी पूजा करूं।
ता करें पातिक हरें सारे, सकल आनँद विस्तरूं॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वस्वरमन्वनिचयसर्वसुन्दरजयवानविनयलालसजयमित्रर्षिभ्यो जलं॥

श्रीखंड कदलीनंद केशर, मंद मंद घिसायके।
तसुगंध प्रसरति दिगदिगंतर, भरकटोरी लायके॥ मन्वा०॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

अति धवल अक्षत खंड वर्जित, मिष्ट राजनभोगके॥
कलधौत थारा भरत सुन्दर, चुनित शुभउपयोगके॥ मन्वा०॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

बहु वर्ण सुवरण सुमन आछे, अमल कमल गुलाबके।
केतकी चंपा चारु मरुआ, चुने निजकर चावके॥ मन्वा०॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो पुष्पं निर्वपामी स्वाहा॥ ४॥

पकवान नानाभांति चातुर, रचित शुद्ध नये नये।
सदमिष्ट लाड्डू आदि भर वहु, पुरटके थारा लये ॥ मन्वा० ॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामिति स्वाहा ॥ ५ ॥

कलधौत दीपक जडित नाना, भरित गोघृतसारसों।
अति ज्वलित जगमगजोति जाकी, तिमिरनाशनहारसों। म०
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

दिक्चक्र गंधित होत जाकर, धूप दशअंगी कही।
सो लाय मनवचकाय शुद्ध, लगायकर खेऊं सही ॥ मन्वा० ॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो धूपं निर्वपामि स्वाहा ॥ ७ ।

वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायके।
द्रावडी दाडिम चारु पुंगी, थाल भर भर भायके ॥ मन्वा० ॥
ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल गंध अक्षत पुष्प चरु वर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठों द्रव्य मिश्रित, अर्घ कीजे पावना ॥ मन्वा०
ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

छन्द त्रिभंगी।

बंदू ऋषि राजा, धर्मजहाजा, निजपरकाजा करत भले।
करुणाके धारी, गगनविहारी, दुख अपहारी, भरम दले ॥
काटत जमफंदा, भविजनवृन्दा, करत अनंदा चरणनमें।
जो पूजैं ध्यावैं, मंगल गावैं, फेर न आवैं भववनमें ॥ १ ॥

छंद पधरी।

जय श्रीमनु मुनिराजा महंत। त्रस थावरकी रक्षा करंत ॥
जय मिथ्यातम नाशक पतंग। करुणारसपूरित अंग अंग ॥
जय श्रीस्वरमनु अकलंकरूप। पद सेव करत नित अमर भूप ॥

जय पंच अक्ष जीते महान । तप तपत देह कंचन समान ॥
जय निचय सप्त तत्त्वार्थभास । तप रमातनौ तनमें प्रकाश ॥
जय विषयरोध संबोध भान । परणतिके नाशन अचल ध्यान ॥
जय जयहिं सर्वसुंदर दयाल । लखि इंद्रजालवत जगतजाल ॥
जय तृष्णाहारी रमण राम । निज परणतिमें पायो विराम ॥
जय आनँदघन कल्याणरूप । कल्याण करत सबको अनूप ॥
जय मदनाशन जयवान देव । निरमद विरचित सब करत सेव ॥
जय जयहिं विनयलालस अमान । सब शत्रु मित्र जानत समान
जय कृशितकाय तपके प्रभाव । छवि छटा उडति आनंददाय ॥
जयमित्र सकल जगके सुमित्र । अनगिनत अधम कीने पवित्र ॥
जय चंद्रवदन राजीव-नैन । कबहूं विकथा बोलत न बैन ॥
जय सातौं मुनिवर एकसंग । नित गगन-गमन करते अभंग ॥
जय आये मथुरापुरमँझार । तहँ मरी रोगको अति प्रचार ॥
जय जय तिन चरणनिके प्रसाद । सब मरी देवकृत भई बाद ॥
जय लोक करे निर्भय समस्त । हम नमत सदा नित जोड़ हस्त ॥
जय ग्रीषमऋतु पर्वतमझार । नित करत अतापन योगसार ॥
जय तृषा परीषह करत जेर । कहुं रंच चलत नहिं मन-सुमेर ॥
जय मूल अठाइस गुणन धार । तप उग्र तपत आनंदकार ॥
जय वर्षाऋतुमें वृक्षतीर । तहँ अति शीतल झेलंत समीर ॥
जय शीतकाल चौपटमँझार । कै नदी सरोवर तट विचार ॥
जय निवसत ध्यानारूढ़ होय । रंचक नहिं मटकत रोम कोय ॥
जय मृतकासन वज्रासनीय । गोदूहन इत्यादिक गनीय ॥
जय आसन नानाभांतिधार । उपसर्ग सहत ममता निवार ॥

जय जपत तिहारो नाम कोय। लख पुत्रपौत्र कुलवृद्धि होय॥
जय भरे लक्ष अतिशय भँडार। दारिद्रतनो दुख होय छार॥
जय चोर अग्नि डाकिन पिशाच। अरु ईति भीति सब नसत सांच
जय तुम सुमरत सुखलहत लोक। सुर असुर नवत पद देत धोक॥

छंद रोला—ये सातों मुनिराज महातप लछमीधारी।
परम पूज्य पद धरैं सकल जगके हितकारी।
जो मनवचतन शुद्ध होय सेवै औ ध्यावै॥
सो जन मनरंगलाल अष्ट ऋद्धिनकौं पावै॥ १६॥

दोहा—नमन करत चरनन परत, अहो गरीबनिवाज।
पंच परावर्तननितैं, निरवारो ऋषिराज॥ १७॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

६२। अथ पंचमेरु पूजा भाषा।

गीताछंद।

तीर्थंकरोंके न्हवनजलतैं, भये तीरथ शर्मदा।
तातैं प्रदच्छन देत सुरगन, पंचमेरनकी सदा॥
दो जलधि ढाईदीपमें सब, गनतमूल विराजही।
पूजौं असी जिनधाम प्रतिमा, होहि सुख दुख भाजही॥ १॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्रावतरावतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

चौपाई आंचलीबद्ध (१५ मात्रा)।

सीतलमिष्टसुवास मिलाय, जलसों पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥
पांचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमाको करों प्रनाम॥

महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥ १ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥
जलकेशरकरपूर मिलाय, गंधसों पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥ पांचों० ॥ २ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥
अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छतसौं पूजौं जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुखहोय ॥ पांचों० ॥ ३ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधीजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्योऽक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥
वरन अनेक रहे महकाय, फूलनसौं पूजौं जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पांचों० ॥ ४ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥
मन बांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पांचों० ॥ ५ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिबिंबेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥
तमहर उज्वल ज्योति जगाय, दीपसों पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पांचों० ॥ ६ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥
खेऊं अगर अमल अधिकाय, धूपसों पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥ पांचों० ॥ ७ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥
सुरस सुवर्ण सुगंध सुभाय, फलसों पूजों श्रीजिनराय।
महा सुख होय देखे नाथ परमसुख होय ॥ पांचों० ॥ ८ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥
आठ दरबमय अरघ बनाय, द्यानत पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखेनाथ परमसुख होय ॥ पांचों० ॥ ९ ॥
ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्बधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

प्रथम सुदर्शन स्वामि, विजय अचल मंदर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंचमेरु जगमैं प्रगट ॥ १ ॥

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भूपर छाजै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मनबचतन वंदना हमारी ॥ २ ॥
ऊपर पाँचशतकपर सोहै, नंदनवन देखत मन मोहै ॥ चैत्या०
साढे बासठ सहस उंचाई, वन सुमनस शोभै अधिकाई ॥ चै०
ऊंचायोजन सहस छत्तीसं, पांडुकवन सोहै गिरिसीसं ॥ चै०
चारों मेरु समान बखानै, भूपर भद्रसाल चहुं जानै।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन बंदना हमारी ॥ ६ ॥
ऊंचे पांच शतकपर भाखे, चारों नंदनवन अभिलाखे।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी ॥७॥
साढे पचपन सहस उतंगा, वन सौमनस चार बहुरंगा।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन बंदना हमारी ॥८॥
उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारों वन शुभ गाये।
चैत्यालय सोलह सुखकारी मनवचतन वंदना हमारी ॥ ९ ॥
सुरनर चारन वंदन आवैं, सो शोभा हम किह मुख गावैं।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मनवचतनवंदना हमारी ॥ १० ।

दोहा।

पंचमेरुकी आरती, पढै सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभू, तुरत महासुख होय ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्बधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

(अघके बाद विसर्जन करना चाहिये)

९३। श्रीनंदीश्वरद्वीप (अष्टाह्निका) की पूजा।

अडिल्ल।

सरब पर्वमें बडो अठाई परब है। नंदीश्वर सुर जांहिं लेय वसु दरव है॥ हमै सकति सो नांहि इहां करि थापना। पूजैं जिनग्रहप्रतिमा है हित आपना॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

कंचनमणिमय भृंगार, तीरथनीरभरा।
तिहुं धार दयी, निरवार जामन मरन जरा॥
नंदीश्वर श्रीजिनधाम, बावन पूज करों।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनँदभावधरों॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

भवतपहर शीतल वाच, सो चंदन नाहीं,
प्रभु यह गुन कीजे सांच, आयो तुम ठांहीं॥ नंदी॥ चंदनं०॥
उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहैं,
सब जीते अक्षसमाज, तुम सम अरु को है॥ नंदी०॥ अक्षतान्
तुम कामविनाशक देव, ध्याऊं फूलनसौं।
लहुं शील लच्छमी एव, छूटों सूलनसौं॥ नंदी०॥ पुष्पं०॥
नेवज इंद्रियबलकार, सो तुमने चूरा।
चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा॥ नंदी०॥ नैवेद्यं॥
दीपककी ज्योति प्रकाश, तुम तनमाहिं लसै।
टूटै करमनकी राशि, ज्ञानकणी दरसै॥ नंदी०॥ दीपं॥६॥

कृष्णागरुधूपसुवास, दशदिशिनारि वरै।
अति हरषभाव परकाश, मानों नृत्य करै ॥ नंदी० ॥ धूपं ॥७॥
बहुविधिफल ले तिंहुकाल, आनँद राचत हैं ॥
तुम शिवफल देहु दयाल, तुहि हम जाचत हैं ॥ नंदी० ॥फलं॥
यह अरघ कियो निजहेत, तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिवखेत, भूमि समरपतु हों ॥ नंदी० ॥अर्घं॥

अथ जयमाला।

दोहा—कातिक फागुन साढके, अंत आठ दिनमांहिं।
नंदीश्वर सुर जात हैं, हम पूजें इह ठांहिं ॥ १ ॥

एकसौ त्रेसठ कोडि जोजनमहा। लाख चौरासि एक एक दिशमें लहा ॥ अट्ठमों दीप नंदीश्वरं भास्वरं। भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥ २ ॥ चारदिशि चार अंजनगिरि राजहीं। सहस चौरासिया एकदिश छाजहीं ॥ ढोलसम गोल ऊपर तलें सुंदरं। भौन० ॥ ३ ॥ एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी। एक इक लाख जोजन अमल जलभरी ॥ चहुं-दिश चार वन लाख जोजन वरं। भौन० ॥ ४ ॥ सोल वापीनमधि सोल गिरि दधिमुखं। सहस दश महा जोजन लखत ही सुखं ॥ बावरीकोंन दोमांहिं दो रतिकरं। भौन० ॥ ५ ॥ शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे। चार सोलै मिलैं सर्व बावन लहे ॥ एक इक सीसपर एक जिनमंदिरं। भौन० ॥ ६ ॥ बिंब अठ एकसौ रतनमइ सोहही। देवदेवी सरव नयनमन मोहही ॥ पांचसै धनुष तन पद्मआसन परं। भौन० ॥ ७ ॥ लाल नख मुख नयन स्याम अरु स्वेत हैं।

स्यामरंग भौंह सिरकेश छवि देत हैं ॥ वचन बोलत मनो हँसत कालुषहरं । भौन० ॥ ८ ॥ कोटि शशि भानदुति तेज छिप जात है । महावैराग परिणाम ठहरात है ॥ बयन नहिं कहैं लखि होत सम्यकधरं । भौन० ॥ ९ ॥

सोरठा—नंदीश्वर जिनधाम, प्रतिमामहिमा को कहै ।
'द्यानत' लीनों नाम, यहै भगति शिव सुख करै ॥१०॥

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इत्याशीर्वादः)

६४ । अथ सोलहकारणपूजा भाषा ।

अडिल्ल ।

सोलहकारण भाय तीर्थंकर जे भये,
हरषे इंद्र अपार मेरुपै ले गये ।
पूजाकरिनिजधन्यलख्यो बहुचावसौं,
हमहू षोडशकारन भावैं भावसौं ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र अवतरत अवतरत । संवौषट् ।
ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत । ठः ठः ।
ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र मम सन्निहितो भवत भवत । वषट् ।

चौपई ।

कंचनझारी निरमल नीर, पूजौं जिनवर गुनगंभीर ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकरपददाय ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ १ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति ॥१॥

चंदन घसौं कपूर मिलाय, पूजौं श्रीजिनवरके पाय ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति ॥

तंदुल धवल सुगंध अनूप । पूजौं जिनवर तिहुं जगभूप ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो । दरशविशुद्धि० ।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति ॥ ३ ॥

फूल सुगंध मधुपगुंजार । पूजौं जिनवर जगआधार ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरशवि० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं ॥ ४ ॥

सदनेवज बहुबिध पकवान । पूजौं श्रीजिनवर गुणखान ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥दरशवि० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं ॥

दीपकजोति तिमर छयकार, पूजूं श्रीजिन केवलधार ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय । सोलह तीर्थंकरपद दाय ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं ॥

अगर कपूर गंध शुभखेय । श्रीजिनवर आगे महकेय ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपा० ॥

श्रीफल आदि बहुत फलसार, पूजौं जिन वांछितदातार ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडषकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपा० ॥८ ॥

जल फल आठों दरव चढाय । 'द्यानत' वरत करों मनलाय ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ॥ ९ ॥

ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अथ जयमाला।

दोहा—षोडशकारण गुण करै, हरै चतुरगतिवास।
पाप पुण्य सब नाशकै, ज्ञानभान परकास॥ १॥

चौपाई १६ मात्रा।

दरशविशुद्धि धरै जो कोई। ताको आवागमन न होई॥
विनय महा धारै जो प्रानी। शिववनिताकी सखी बखानी॥
शील सदा दिढ जो नर पालै। सो औरनकी आपद टालै॥
ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं। ताकै मोहमहातम नाहीं॥ ३॥
जो संवेगभाव विसतारै। सुरगमुकतिपद आप निहारै॥
दान देय मन हरष विशेखै। इह भव जस पर भव सुख देखै॥
जो तप तपै खपै अभिलाषा। चूरै करमशिखर गुरु भाषा।
साधुसमाधि सदा मन लावै। तिहुंजगभोग भोगि शिव जावै॥
निशदिन वैयावृत्य करैया। सो निहचै भवनीर तिरैया॥
जो अरहंतभगति मन आनै। सो जन विषय कषाय न जानै॥
जो आचारज भगति करै है। सो निर्मल आचार धरै है॥
वहु श्रुतवंतभगति जो करई। सो नर संपूरन श्रुत धरई॥७॥
प्रवचन भगति करै जो ज्ञाता। लहै ज्ञान परमानँददाता॥
षट्आवश्यक नित जो साधै। सो ही रत्नत्रय आराधै॥ ८॥
धरमप्रभाव करै जे ज्ञानी। तिन शिवमारग रीति पिछानी॥
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै। सो तीर्थंकर पदवी पावै॥ ९॥

दोहा—एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय।
देव इंद्र नरवंद्यपद, 'द्यानत' शिवपद होय॥ १०॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

(इत्याशीर्वादः)

६५। अथ दशलक्षणधर्मपूजा भाषा।

अडिल्ल।

उत्तम छिमा मारदव आरजवभाव हैं।
साच सत्य संजम तप त्याग उपाव हैं॥
आकिंचन ब्रमचरज धरम दश सार हैं।
चहुंगतिदुखतैं काढि मुकतिकरतार हैं॥ १॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

सोरठा—हेमाचलकी धार, मुनिचित सम शीतल सुरभि।
भवआताप निवार, दसलच्छन पूजौं सदा॥ १॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणिदशलक्षणधर्मेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

चंदन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा। भवआ०॥ २॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

अमल अखंडितसार, तंदुल चंद्रसमान शुभ॥ भवआ०॥३॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

फूल अनेकप्रकार, महकैं ऊरघलोक लों॥ भवआ०॥ ४॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

नेवज विविध निहार, उत्तम षटरससंजुगत॥ भवआ०॥५॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ५॥

बाति कपूर सुधार, दीपकजोति सुहावनी॥ भवआ०॥६॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ६॥

अगर धूप विस्तार, फैलै सर्व सुगंधता॥ भवआ०॥ ७॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ७॥

फलकी जाति अपार, घ्रान नयन मनमोहने॥ भवआ०॥८॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय फलं निर्वपामीति स्वाहा॥ ८॥

आठों दरव सँवार, द्यानत अधिक उछाहसों ॥ भवआ० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मायाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

अंगपूजा ।

सोरठा—पीडैं दुष्ट अनेक, बांध मार बहुविधि करैं ।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा ॥ १ ॥

चौपाई मिश्रित गीता छंद ।

उत्तमछिमा गहोरे भाई । इहभव जस परभव सुखदाई ॥
गाली सुनि मन खेद न आनो । गुनको औगुन कहै अयानो
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बांध मार बहुविधि करै ।
घरतैं निकारै तन विदारैं, वैर जो न तहां धरै ॥
तैं करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा ।
अतिक्रोधअगनि बुझाय प्रानी, साम्य जल ले सीयरा ॥१॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

मान महाविषरूप, करहि नीचगति जगतमें ।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥ २ ॥
उत्तम मार्दवगुन मन माना । मानकरनकौ कौन ठिकाना ।
वस्यो निगोदमाहितैं आया । दमरी रूकन भाग विकाया ॥
रूकन विकाया कर्मवशतैं; देव इकइंद्री भया ।
उत्तम मुआ चांडाल हूवा, भूप कीडोंमें गया ॥
जीतव्य-जोवन-धनगुमान कहा करै जलबुदबुदा ।
करि विनय बहुगुन बडे जनकी ज्ञानका पावै उदा ॥२॥

ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्मागाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कपट न कीजै कोय, चोरनके पुर ना बसै ।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु संपदा ॥ ३ ॥

उत्तमआर्जवरीति बखानी। रंचक दगा बहुत दुखदानी।
मनमैं है सो वचन उचरिये। वचन होय सो तनसौं करिये॥
करिये सरल तिहुंजोग अपने, देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपटप्रीति अँगारसी॥
नहिं लहै लछमी अधिक छलकरि, करमबंध विशेषता।
भय त्याग दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता॥ ३॥
ओं ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

धरि हिरदै संतोष, करहु तपस्या देहसौं।
शौच सदा निरदोष, धरम बडो संसारमें॥ ४॥
उत्तम शौच सर्व जग जानो। लोभ पापको बाप वखानो॥
आसापास महा दुख दानी। सुख पावै संतोषी प्रानी॥
प्रानी सदा शुचि शीलजपतप, ज्ञानध्यानप्रभावतैं।
नित गंगजमुन समुद्र न्हाये, अशुचिदोष सुभाव तैं॥
ऊपर अमल, मल भर्यो भीतर, कौन बिध घट शुचि कहै
बहु देह मैली सुगुनथैली, शौचगुन साधू लहै॥ ४॥
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

कठिन वचन मति बोल, परनिंदा अरु झूठ तज।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जगमें सुखी॥ ५॥
उत्तम सत्यवरत पालीजै, परविश्वासघात नहिं कीजै॥
सांचे झूठे मानव देखो, आपनपूत स्वपास न पेखो॥
पेखो तिहायत पुरुष सांचेको, दरब सब दीजिये।
मुनिराज श्रावककी प्रतिष्ठा, सांचगुण लख लीजिये॥
ऊंचे सिंहासन बैठि वसुनृप, धरमका भूपति भया।
वच झूठसेती नरक पहुंचा, सुरगमें नारद गया॥ ५॥

ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

काय छहों प्रतिपाल, पंचेंद्री मन वश करो।
संजमरतन सँभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं ॥ ६ ॥
उत्तम संजम गहु मन मेरे। भव भवके भाजैं अघ तेरे ॥
सुरग नरकपशुगतिमैं नाहीं, आलसहरन करन सुख ठाँहीं ॥
ठाँहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो।
जिस विना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जगकीचमें।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जममुख-बीचमें ॥

ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

तप चाहैं सुरराय, करमसिखरको वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम ॥७॥
उत्तम तप सबमाहिं बखाना। करमशैलको वज्र समाना ॥
बस्यो अनादिनिगोदमझारा। भूविकलत्रय पशुतन धारा ॥
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आव निरोगता।
श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषयपयोगता।
अति महादुरलभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरैं।
नरभवअनूपमकनकघरपर, मणिमयी कलसा धरैं ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

दान चार परकार, चारसंघको दीजिये।
धन विजुरी उनहार, नरभवलाहो लीजिये ॥ ८ ॥
उत्तमत्याग कह्यो जगसारा। औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचै रागरोष निरवारै। ज्ञाता दोनों दान सँभारै ॥
दोनों सँभारै कूपजल सम, दरब घरमें परिनया।

निजहाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया ॥
धनि साध सास्त्र अभयदिवैया, त्याग राग विरोधकों ॥
विन दान श्रावक साध दोनों, लहैं नाहीं बोधकों ॥ ८ ॥

ओंह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

परिगह चौविस भेद, त्याग करैं मुनिराज जी ।
त्रिसनाभाव उछेद, घटती जान घटाइए ॥ ९ ॥
उत्तम आकिंचन गुण जानौ । परिगहचिंता दुख ही मानौ ॥
फाँस तनकसी तनमैं सालै । चाह लँगोटीकी दुख भालै ॥
भालै न समता सुख कभी नर, विना मुनिमुद्रा धरैं ।
धनि नगनपर तन-नगन ठाडे, सुर असुर पायनि परैं ॥
घरमाहिं त्रिसना जो घटावै, रुचि नहीं संसारसौं ।
बहुधन बुरा हू भला कहिये, लीन पर उपगारसौं ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

शीलबाड नौ राख, ब्रह्मभाव अंतर लखो ।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नरभव सदा ॥१०॥
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ । माता बहिन सुता पहिचानौ ॥
सहैं बानवरषा बहु सूरे । टिकैं न नैन वान लखि कूरे ॥
कूरे तियाके अशुचितनमैं कामरोगी रति करैं ।
बहु मृतक सड़हिं मसानमाहीं, काक ज्यों चौंचैं भरैं ॥
संसारमैं विषबेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा ।
'द्यानत' धरमदशपैडि चढिकैं, शिवमहलमैं पग धरा ॥११॥

ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

अथ समुच्चय जयमाला ।

दोहा—दशलच्छन वंदों सदा, मनवांछित फलदाय ।

कहों आरती भारती, हमपर होहु सहाय ॥ १ ॥

वेसरी छंद ।

उत्तमछिमा जहां मन होई, अंतरबाहिर शत्रु न कोई ।
उत्तममार्दव विनय प्रकासै, नानाभेद ज्ञान सब भासै ॥ २ ॥
उत्तमआर्जव कपट मिटावै, दुरगति त्यागि सुगति उपजावै ।
उत्तमशौच लोभपरिहारी, संतोषी गुणरतनभँडारी ।
उत्तमसत्यवचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोलै ॥ ३ ॥
उत्तमसंयम पालै ज्ञाता, नरभव सफल करै, ले साता ॥ ४ ॥
उत्तमतप निरवांछित पालै, सो नर करमशत्रुकों टालै ।
उत्तमत्याग करै जो कोई, भोगभूमि-सुर-शिवसुख होई ॥५॥
उत्तमआकिंचनव्रत धारै, परमसमाधिदशा विसतारै ।
उत्तमब्रह्मचर्य मन लावै, नरसुरसहित मुकतिफल पावै ॥ ६ ॥
दोहा—करै करमकी निरजरा, भवपींजरा विनाशि ।
अजर अमरपदकों लहै, 'द्यानत' सुखकी राशि ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यदशलक्षणधर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

९६ । अथ संस्कृत स्वयंभूस्तोत्रम् ।

येन स्वयंबोधमयेन लोका आश्वासिता केचन चित्तकार्ये ।
प्रबोधिता केचन मोक्षमार्गे तमादिनाथं प्रणमामि नित्यं ॥१॥
इंद्रादिभिः क्षीरसमुद्रतोयैः संस्नापितो मेरुगिरौ जिनेंद्रः ।
कामजेता जनसौख्यकारी तं शुद्धभावादजितं नमामि ॥२॥
ध्यानप्रबंधप्रभवेन येन निहत्य कर्मप्रकृतीः समस्ताः ।
मुक्तिस्वरूपां पदवीं प्रपेदे तं संभवं नौमि महानुरागात् ॥ ३ ॥

स्वप्ने यदीया जननी क्षपायां गजादिबह्वर्थंतमिदं ददर्श ।
यत्तात इत्याह गुरुः परोऽयं नौमि प्रमोदादभिनंदनं तं ॥ ४ ॥
कुवादिवादं जयता महांतं नयप्रमाणैर्वचनैर्जगत्सु ।
जैनं मतं विस्तरितं च येन तं देवदेवं सुमतिं नमामि ॥ ५ ॥
यस्यावतारे सति पितृधिष्ण्ये ववर्ष रत्नानि हरेर्निदेशात् ।
धनाधिपः षण्णवमासपूर्वं पद्मप्रभं तं प्रणमामि साधुं ॥ ६ ॥
नरेंद्रसर्पेश्वरनाकनाथैः वाणी भवंती जगृहे स्वचित्ते ।
यस्यात्मबोधः प्रथितः सभायामहं सुपार्श्वं ननु तं नमामि ॥७॥
सत्प्रातिहार्यातिशयप्रपन्नो गुणप्रवीणो हतदोषसंगः ।
यो लोकमोहांधतमःप्रदीपश्चंद्रप्रभं तं प्रणमामि भावात् ॥ ८ ॥
गुप्तित्रयं पंच महाव्रतानि पंचोपदिष्टा समितिश्च येन ।
बभाण यो द्वादशधा तपांसि तं पुष्पदंतं प्रणमामि देवं ॥ ९ ॥
ब्रह्मव्रतांतो जिननायकेनोत्तमक्षमादिर्दशधापि धर्मः ।
येन प्रयुक्तो व्रतबंधबुद्ध्या तं शीतलं तीर्थकरं नमामि ॥ १० ॥
गणे जनानंदकरे धरांते विध्वस्तकोपे प्रशमैकचित्ते ।
यो द्वादशांगं श्रुतमादिदेश श्रेयांसमानौमि जिनं तमीशं ॥११॥
मुक्त्यंगनाया रचिता विशाला रत्नत्रयीशेखरता च येन ।
यत्कंठमासाद्य बभूव श्रेष्ठा तं वासुपूज्यं प्रणमामि वेगात् ॥१२॥
ज्ञानी विवेकी परमस्वरूपी ध्यानी व्रती प्राणिहितोपदेशी ।
मिथ्यात्वघाती शिवसौख्यभोजी बभूव यस्तं विमलं नमामि ॥
आभ्यंतरं बाह्यमनेकधा यः परिग्रहं सर्वमपाचकार ।
यो मार्गमुद्दिश्य हितं जनानां वंदे जिनं तं प्रणमाम्यनंतं ॥१४॥
सार्द्धं पदार्था नव सप्ततत्त्वैः पंचास्तिकायाश्च न कालकायाः ।

षड्द्रव्यनिर्णीतिरलोकयुक्तिर्येनोदिता तं प्रणमामि धर्मं ॥१५॥
यश्चक्रवर्ती भुवि पंचमोऽभूच्छ्रीनंदनो द्वादशको गुणानां ।
निधिप्रभुः षोडशको जिनेंद्रस्तं शांतिनाथं प्रणमामि भेदात् ॥
प्रशंसितो यो न बिभर्ति हर्षं विराधितो यो न करोति रोषं ।
शीलव्रताद् ब्रह्मपदं गतो यस्तं कुंथुनाथं प्रणमामि हर्षात् ॥१७॥
यः संस्तुतो यः प्रणतः सभायां यः सेवितोंतर्गणपूरणाय ।
पदाच्युतैः केवलिभिर्जिनस्य देवाधिदेवं प्रणमाम्यरं तं ॥ १८ ॥
रत्नत्रयं पूर्वभवांतरे यो व्रतं पवित्रं कृतवानशेषं ।
कायेन वाचा मनसा विशुद्ध्या, तं मल्लिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥
ब्रुवन्नमः सिद्धिपदाय वाक्य,-मित्यग्रहीद्यः स्वयमेव लोचं ।
लौकांतिकेभ्यः स्तवनं निशम्य, वंदे जिनेशं मुनिसुव्रतं तं ॥२०॥
विद्यावते तीर्थंकराय तस्मा,-याहारदानं ददतो विशेषात् ।
गृहे नृपस्याजनि रत्नवृष्टिः, स्तौमि प्रणामान्नयतो नमिं तं ।२१।
राजीमतीं यः प्रविहाय मोक्षे, स्थितिं चकरापुनरागमाय ।
सर्वेषु जीवेषु दयां दधानस्तं नेमिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥
सर्पाधिराजः कमठारितोयै,-र्ध्यानस्थितस्यैव फणावितानैः ।
यस्योपसर्गं निरवर्तयत्तं, नमामि पार्श्वं महतादरेण ॥ २३ ॥
भवार्णवे जंतुसमूहमेन,-माकर्षयामास हि धर्मपोतात् ।
मज्जंतमुद्वीक्ष्य य एनसापि, श्रीवर्द्धमानं प्रणमाम्यहं तं ॥२४॥
यो धर्मं दशधा करोति पुरुषः स्त्री वा कृतोपस्कृतं
सर्वज्ञध्वनिसंभवं त्रिकरणव्यापारशुद्ध्यानिशं ।
भव्यानां जयमालया विमलया पुष्पांजलिं दापय-
न्नित्यं संश्रियमातनोति सकलं स्वर्गापवर्गस्थितिं ॥ २५ ॥

६७। अथ स्वयंभूस्तोत्र भाषा।

चौपाई।

राजविषैं जुगलनि सुख कियो। राज त्याग भवि शिवपद लियो॥ स्वयंबोध स्वंभू भगवान। बंदौं आदिनाथ गुणखान॥ १॥ इंद्र छीरसागरजललाय। मेरु न्हवाये गाय बजाय॥ मदनविनाशक सुखकरतार। वंदौं अजित अजितपदकार॥ २॥ शुकलध्यानकरि करमविनाशि। घाति अघाति सकल दुखराशि॥ लह्यो मुकतिपदसुख अविकार। वंदौं संभव भवदुख टार॥ ३॥ माता पच्छिम रयनमझार। सुपने सोलह देखे सार॥ भूप पूछि फल सुनि हरषाय। बंदौं अभिनंदन मन लाय॥४॥ सब कुवादवादीसरदार। जीते स्याद्वादधुनिधार॥ जैनधरमपरकाशक स्वाम। सुमतिदेवपद करहुं प्रनाम॥ ५॥ गर्भ अगाऊ धनपति आय। करी नगरशोभा अधिकाय॥ बरसे रतन पंचदश मास। नमौं पदमप्रभु सुखकी रास॥ ६॥ इंद फनिंद नरिंद त्रिकाल। बानी सुनि सुनि होहिं खुस्याल॥ द्वादशसभा ज्ञानदातार। नमौं सुपारसनाथ निहार॥ ७॥ सुगुन छियालिस हैं तुममाहिं। दोष अठारह कोऊ नाहिं॥ मोहमहातमनाशक दीप। नमौं चंद्रप्रभ राख समीप॥ ८॥ द्वादशविधि तप करम विनाश। तेरह भेद चरित परकाश॥ निज अनिच्छ भविइच्छकदान। वंदौं पुहुपदंत मनआन॥ ९॥ भविसुखदाय सुरगतैं आय। दशविधि धरम कह्यो जिनराय॥ आप समान सबनि सुखदेह। वंदौं शीतल धर्मसनेह॥ १०॥ समतासुधा कोपविष

नाश । द्वादशांगवानी परकाश ॥ चारसंघ आनँददातार । नमौं श्रियांस जिनेश्वर सार ॥ ११ ॥ रतनत्रयचिरमुकुट-विशाल । सोभै कंठ सुगुनमनिमाल ॥ मुक्तिनार भरता भगवान । वासुपूज वंदौं धर ध्यान ॥ १२ ॥ परम समाधि-सरूप जिनेश । ज्ञानी ध्यानी हितउपदेश ॥ कर्मनाशि शिवसुख विलसंत । वंदौं विमलनाथ भगवंत ॥ १३ ॥ अंतर बाहिर परिगह डारि । परमदिगंबरव्रतको धारि ॥ सर्वजीवहित राह दिखाय । नमों अनंत वचनमनलाय ॥१४॥ सात तत्त्व पंचासतिकाय । अरथ नमों छदरब बहु-भाय ॥ लोक अलोक सकल परकाश । वंदौ धर्मनाथ अवि नाश ॥ १५ ॥ पंचम चक्रवरति निधिभोग । कामदेव द्वाद-शम मनोग ॥ शांतिकरन सोलम जिनराय । शांतिनाथ वंदौ हरखाय ॥ १६ ॥ बहु थुति करे हरष नहिं होय । निंदे दोष गहैं नहिं कोय । शीलवान परब्रह्मस्वरूप । बंदौं कुंथु-नाथ शिवभूप ॥ १७ ॥ द्वादशगण पूजें सुखदाय । थुति वंदना करै अधिकाय ॥ जाकी निजथुति कबहुं न होय । वंदौं अरजिनवर पद दोय ॥ १८ ॥ परभव रतनत्रय अनु-राग । इह भव व्याहसमय वैराग ॥ बालब्रह्मपूरनव्रतधार । वंदौं मल्लिनाथ जिनसार ॥ १९ ॥ विन उपदेश स्वयं वैराग । थुति लौकांत करैं पगलाग ॥ नमःसिद्ध कहि सब व्रत लेहिं वंदौं मुनिसुव्रत व्रत देहिं ॥ २० ॥ श्रावक विद्यावंत निहार । भगतिभावसों दियो अहार ॥ वरसी रतन राशि ततकाल । वंदौं नमिप्रभु दीनदयाल ॥ २१ ॥ सब जीवनकी बंदी छोर

रागरोष द्वै बंधन तोर ॥ रजमति तजि शिवतियसों मिले। नेमिनाथ वंदौ सुखनिले ॥२२॥ दैत्य कियो उपसर्ग अपार। ध्यान देखि आयो फनिधार ॥ गयो कमठ शठ मुख कर श्याम। नमों मेरुसम पारसस्वाम ॥ २३ ॥ भवसागरतैं जीव अपार। धरमपोतमें धरे निहार ॥ डूबत काढे दया विचार। वर्द्धमान वंदौं बहुबार ॥ २४ ॥

दोहा—चौंबीसौं पदकमलजुग, वंदौ मनवचकाय।
'द्यानत' पढै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय ॥२५॥

९८। अथ रत्नत्रयपूजा भाषा।

दोहा।

चहुंगतिफनिविषहरनमणि, दुखपावक जलधार।
शिवसुखसुधासरोवरी, सम्यकत्रयी निहार ॥ १ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्

अष्टक। सोरठा।

छीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो।
जनमरोग निरवार, सम्यकरत्नत्रय भजूं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय जन्मरोगविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

चंदन केसर गारि, परिमल महासुगंगमय। जन्मरो० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

तंदुल अमल चितार, वासमती सुखदासके। जन्मरो० ॥३॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

महकैं फूल अपार, अलि गुंजैं ज्यों थुति करैं। जन्मरो० ॥४॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगंधयुत। जन्मरो० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

दीपरतनमय सार, जोत प्रकाशै जगतमें । जन्मरो० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूरकी । जन्मरो० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

फल शोभा अधिकार, लोंग छुहारे जायफल । जन्मरो० ॥८॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

आठदरब निरधार, उत्तमसों उत्तम लिये । जन्मरो० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

सम्यकदरशन ज्ञान, व्रत शिवमग तीनों मयी ।
पार उतारन यान, 'द्यानत' पूजों व्रतसहित ॥ १० ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

दर्शनपूजा ।

दोहा—सिद्ध अष्टगुनमय प्रगट, मुक्त जीवसोपान ।
जिहँविन ज्ञानचरित अफल, सम्यकदर्श प्रधान ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

सोरठा ।

नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै ।
सम्यकदर्शनसार, आठअंग पूजौं सदा ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जल केंसर घनसार, ताप हरै सीतल करै । सम्यकद० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै । सम्यकद० ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै । सम्यकद० ॥४॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै। सम्यकद० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

दीपज्योति तमहार, घटपट परकाशै महा। सम्यकद० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

धूप घ्रानसुखकार, रोग विघन जड़ता हरै। सम्यकद० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

श्रीफलआदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै। सम्यकद० ।८।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फलफूल चरु। सम्यकद० ॥ ९ ॥

ओं ह्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

जयमाला ।

दोहा—आप आप निहचै लखै, तत्त्वप्रीति व्योहार।
रहितदोष पचीस है, सहित अष्ट गुन सार ॥ १ ॥

चौपाई-मिश्रित गीताछन्द।

सम्यकदरशन रतन गहीजे। जिनवचमें संदेह न कीजे।
इह भव विभवचाह दुखदानी। परभवभोग चहै मत प्रानी ॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरमगुरुप्रभु परखिये ॥
परदोष ढकिये धरम डिगतेको, सुथिर कर हरषिये ॥
चहुंसंघको वातसल्य कीजै, धरमकी परभावना।
गुन आठसों गुन आठ लहिकैं, इहां फेर न आवना ॥ २ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसहितपंचविंशतिदोषरहिताय सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामि०।

ज्ञानपूजा ।

दोहा—पंचभेद जाके प्रगट, ज्ञेयप्रकाशन भान।
मोह-तपन-हर-चंद्रमा, सोई सम्यकज्ञान ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

सोरठा ।

नीरसुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै ।
सम्यकज्ञान विचार, आठभेद पूजों सदा ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टविधिसम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जलकेसर घनसार, ताप हरै शीतल करै । सम्यकज्ञा० ॥२॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अक्षत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै । सम्यकज्ञा० ।३।

ओं ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

पहुपसुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै । सम्यक० । पुष्पं
नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै । सम्यकज्ञा० । नै०
दीप ज्योति तमहार, घटपट परकाशै महा । सम्यक० । दीपं
धूप घ्रानसुखकार, रोग विघन जडता हरै । सम्यकज्ञा० । धूपं
श्रीफल आदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै । सम्य० । फलं
जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु । सम्यकज्ञा० । अर्घं

अथ जयमाला ।

दोहा—आप आप जानै नियत, ग्रंथपठन व्योहार ।
संसय विभ्रम मोह विन, अष्टअंग गुनकार ॥ १ ॥

चौपाई-मिश्रित गीताछंद ।

सम्यकज्ञान रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया ।
अच्छर शुद्ध अरथ पहिचानौ, अच्छर अरथ उभय सँग जानौं
जानौ सुकालपठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये ।
तपरीति गहि बहु मान देकैं, विनयगुन चितलाइये ॥
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पन देखना ।

इस ज्ञानहीसों भरत सीझा, और सब पटपेखना ॥ २ ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

चारित्रपूजा ।

दोहा—विषयरोग औषध महा, दवकषायजलधार ।
तीर्थंकर जाको धरैं, सम्यकचारितसार ॥ १ ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ॥

सोरठा ।

नीरसुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै ।
सम्यकचारितसार, तेरहविध पूजौं सदा ॥ १ ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै । सम्यकचारित० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै । सम्यकचा० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

पहुपसुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै । सम्यकचारित० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

नेवज विविधप्रकार छुधा हरै थिरता करै । सम्यकचा० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यकचारित्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

दीपजोति तमहार, घटपट परकाशै महा । सम्यकचा० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा । ६ ॥

धूप घ्रान सुखकार, रोग विघन जडता हरै । सम्यकचा० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै । सम्यकचा० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु। सम्यकचा० ॥
ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

अथ जयमाला।

दोहा—आप आप थिर नियत नय, तपसंजम व्योहार।
स्वपरदया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार ॥ १ ॥

चौपाई मिश्रित गीताछंद।

सम्यकचारित रतन सँभालौ, पांच पाप तजिके व्रत पालौ।
पंचसमिति त्रय गुपति गहीजै, नरभव सफल करहु तन छीजै ॥
छीजै सदा तनको जतन यह एक संजम पालिये।
बहु रुल्यो नरक निगोदमाहीं, विषकषायनि टालिये।
शुभकरम जोग सुघाट आया, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरमकी नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है ॥ २ ॥
ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

अथ समुच्चय जयमाला।

दोहा—सम्यकदरशन-ज्ञान-व्रत, इन विन मुकति न होय।
अंध पंगु अरु आलसी, जुदे जलैं दव-लोय ॥ १ ॥

चौपाई १६ मात्रा।

जापै ध्यान सुथिर बन आवै। ताके करमबंध कट जावै ॥
तासों शिवतिय प्रीति बढावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥१॥
ताको चहुंगतिके दुख नाहीं। सो न परै भवसागरमाहीं ॥
जनमजरामृतु दोष मिटावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥ ३ ॥
सोई दशलच्छनको साधै। सो सोलहकारण आराधै।
सो परमातम पद उपजावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥ ४ ॥
सोई शक्रचक्रिपद लेई। तीनलोकके सुख विलसेई ॥

सो रागादिक भाव बहावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥ ५॥
सोई लोकालोक निहारै। परमानंददशा विसतारै॥
आप तिरै औरन तिरवावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥ ६॥
दोहा—एकस्वरूपप्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, 'द्यानत' कों सुखदाय॥ ७॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

(अर्घके बाद विसर्जन करना चाहिये)

६६। दीपावली श्रीवर्द्धमानजिनपूजा।

मत्तगयंद।

श्रीमतवीर हरैं भवपीर, भरैं सुखसीर अनाकुलताई।
केहरिअंक अरीकरदंक, नये हरिपंकतिमौलि सुआई॥
मैं तुमको इत थापतु हौं प्रभु, भक्ति समेत हिये हरखाई।
हे करुणाधनधारक देव, इहां अब तिष्ठ हु शीघ्रहि आई॥

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेंद्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्॥ १॥
ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेंद्र। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः॥ २॥
ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेंद्र! अत्र ममसन्निहितो भव भव। वषट्॥ ३॥

अष्टक।

छंद अष्टपदी।

(द्यानतरायकृत नंदीश्वराष्टकादिक अनेक रागोंमें भी बनती है)

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचनभृंग भरों।
प्रभु वेग हरो भवपीर, यातैं धार करों॥
श्रीवीरमहा अतिवीर सन्मतिनायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर सन्मतिदायक हो॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

मलयागिरचंदनसार, केसरसंग घसौं।

प्रभु भव आताप निवार, पूजत हिय हुलसों ॥ श्रीवीर० ॥

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

तंदुलसित शशिसम शुद्ध, लीनों थार भरी।

तसु पुंज धरों अविरुद्ध, पावों शिवनगरी ॥ श्री वीर० ॥

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि स्वाहा ॥ ३ ॥

सुरतरुके सुमन समेत, सुमन सुमनप्यारे।

सो मनमथभंजनहेत, पूजों पद थारे ॥ श्रीवी० ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय कामबाणविध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

रसरज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थारे भरी।

पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी ॥ श्रीवीर० ५ ॥

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

तमखंडित मंडितनेह, दीपक जोवत हों।

तुम पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हों। श्रीवीर० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

हरिचंदन अगर कपूर, चूर सुगन्ध करा।

तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा ॥ श्रीवीर० ७ ॥

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्रायअष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

रितुफल कलवर्जित लाय, कंचनथार भरों।

शिव फलहित हे जिनराय, तुमढिंग भेट धरों। श्रीवीर०।८।

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जलफल वसु सजि हिमथार, तनमनमोद धरों।

गुण गाऊं भवदधितार, पूजत पाप हरों। श्रीवीर० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेंद्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

पंचकल्याणक।

राग टप्पाचालमें।

मोहि राखो हो सरना, श्रीवर्द्धमान जिनरायजी, मोहि राखो०॥

गरभ साढ सहित छट्ठ लियो तिथि, त्रिशला उर अघ हरना।
सुर सुरपति तितसेव कर्यो नित, मैं पूजों भवतरना। मो०१॥

ओं ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय अर्घ्यं नि०॥

जनम चैतसित तेरसके दिन, कुंडलपुर कनवरना। सुरगिर,
सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भवहरना॥ मोहिरा०॥ २॥

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय अर्घं निर्व०॥

मँगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना।
नृप कुमारघर पारन कीनों, मैं पूजों तुम चरना। मोहिरा०॥

ओं ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनद्राय अर्घं नि०।

शुकलदशैं वैशाखदिवस अरि, घात चतुक छयकरना॥
केवललहि भवि भवसर तारे, जजों चरन सुख भरना। मो०।

ओं ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानकल्याणप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं नि०॥

कातिक श्याम अमावस शिवतिय, पावापुरतैं परना।
गनफनिवृंद जजे तित वहुविधि, मैं पूजों भयहरना। मो०५।

ओं ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय अर्घं नि०।

जयमाला।

छंद हरिगीता २८ मात्रा।

गनधर अशनिधर, चक्रधर, हरधर, गदाधर वरवदा।
अरु चापधर, विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा॥
दुखहरन आनँदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं।
सुकुमाल गुनमनिमाल उन्नत, भालकी जयमाल हैं॥ १॥

छंद घत्तानन्द।

जय त्रिशलानंदन, हरिकृतवंदन, जगदानंदन, चंदवरं।
भवतापनिकंदन, तनकनमंदन, रहित सपंदन नयन धरं॥२॥

छंद तोटक ।

जय केवलभानुकलासदनं । भविकोकविकाशनकंदवनं ॥
जगजीत महारिपु मोहहरं । रजज्ञानदृगावर चूरकरं ॥ १ ॥
गर्भादिकमंगलमंडित हो । दुखदारिदको नित खंडित हो ॥
जगमाहिं तुमी सत पंडित हो । तुम ही भवभावविहंडित हो ।
हरिवंशसरोजनकों रवि हो । बलवंत महंत तुमी कवि हो ॥
लहि केवल धर्मप्रकाश कियो । अबलों सोई मारगराजति यो
पुनि आपतने गुनमाहिं सही । सुर मग्न रहैं जितने सबही ॥
तिनकी वनिता गुनगावत हैं । लयमाननिसों मनभावत हैं ॥
॥ ४ ॥ पुनि नाचत रंग उमंग भरी । तुअ भक्तिविषै पग एम
धरी ॥ झननं झननं झननं झननं । सुरलेत तहाँ तननं तननं
॥५॥ घननं घननं घनघंट बजैं । दृमदं दृमदं मिरदंग सजै ॥
गगनांगनगर्भगता सुगता । ततता ततता अतता वितता
॥ ६ ॥ धृगतां धृगतां गति बाजत है । सुरताल रसाल जु
छाजत है ॥ सननं सननं सननं नभमें । इकरूप अनेक जु धारि
भमें ॥ ७ ॥ कई नारि सु वीन बजावति हैं । तुमरो जस
उज्जल गावति हैं ॥ करतालविषै करताल धरैं । सुरताल
विशाल जु नाद करैं ॥ ८ ॥ इन आदि अनेक उछाहभरी ।
सुरभक्ति करैं प्रभुजी तुमरी ॥ तुमही जगजीवनके पितु हो ।
तुमही विनकारनते हितु हो ।९। तुमही सब विघ्न विनाशन हो ।
तुमही निज आनँद भासन हो ॥ तुमही चितचिंततदायक
हो, जगमाहिं तुमी सब लायक हो ।१०। तुमरे पनमंगलमाहिं
सही । जिय उत्तम पुन्नलियो सब ही ॥ हमको तुमरी सरना-

गत है। तुमरे गुनमें मन पागत है ॥ ११ ॥ प्रभु मोहिय आप सदा बसिये। तबलों वसुकर्म नहीं नसिये॥ तबलों तुम ध्यान हिये वरतो। तबलों श्रुतचिंतन चित्त रतो ॥ १२॥ तबलों व्रत चारित चाहतु हों। तबलों शुभभाव सुगाहतु हों तबलों सतसंगति नित्त रहौ। तबलों मम संजम चित्त गहौ ॥ १३ ॥ जबलों नहिं नाश करों अरिको। शिवनारि वरों समता धरिको॥ यह द्यो तबलों हमको जिनजी। हम जाचतु हैं इतनी सुनजी। ॥ १४ ॥

घत्तानंद।

श्रीवीरजिनेशा नमितसुरेशा, नागनरेशा भगति भरा।
'वृंदावन' ध्यावै विघन नशावै बांछित पावै शर्म वरा ॥१५॥

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

दोहा—श्रीसनमतिके जुगल पद, जो पूजै धरि प्रीत।
वृंदाबन सो चतुर नर, लहै मुक्तिनवनीत ॥ १६ ॥

इत्याशीर्वादः। परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।

१०० । निर्वाणकांड (गाथा)।

अट्ठावयम्मि उसहो चंपाए वासुपुज्जजिणणाहो। उज्जंते णेमिजिणो पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥ १ ॥ वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुरवंदिदा धुदकिलेसा। सम्मेदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ २ ॥ वरदत्तो य वरंगो सायरदत्तो य तारवरणयरे। आहुट्ठयकोडीओ णिव्वायगया णमो तेसिं ॥३॥ णेमिसामि पज्जण्णो संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो। बहत्तरिकोड़ीओ उज्जंते सत्तसया सिद्धा ॥ ४ ॥ रामसुत्रा

वेण्णि जणा लाडणरिंदाण पंचकोडीओ। पावागिरिवरसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ ५ ॥ पंडुसुआ तिण्णिजणा दविडणरिंदाण अट्ठकोडीओ। सेत्तुंजयगिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ ६ ॥ संते जे बलभद्दा जदुब णरिंदाण अट्ठकोडीओ। गजपंथे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥७॥ रामहणू सुग्गीओ गवयगवाक्खो य णीलमहणीलो। णवणवदीकोडीओ तुंगीगिरिणिव्वुदे वंदे ॥ ८ ॥ णंगाणंगकुमारा कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया। सुवणागिरिवरसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ ९ ॥ दहमुहरायस्स सुवा कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया। रेवाउहयतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१०॥ रेवाणइए तीरे पच्छिमभायम्मि सिद्धवरकूडे। दो चक्की दह कप्पे आहुट्ठयकोडिणिव्वुदे वंदे ॥ ११ ॥ वडवाणीवरणयरे दक्खिणभायम्मि चूलगिरिसिहरे। इंदजीदकुंभयणो णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ १२ ॥ पावागिरिवरसिहरे सुवण्णभद्दाइमुणिवरा चउरो। चलणाणईतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ १३ ॥ फलहोडीवरगामे पच्छिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे। गुरुदत्ताइमुणिंदा णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ १४ ॥ णायकुमारमुणिंदो बालि महावालि चैव अज्झेया। अट्ठावयगिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ १५ ॥ अच्चलपुरवरणयरे ईसाणे भायमेढगिरिसिहरे। आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ १६ ॥ वंसत्थलवणणियरे पच्छिमभायम्मि कुंथुगिरिसिहरे। कुलदेसभूसणमुणी णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ १७ ॥ जंसरहरायस्स सुआ पंचसयाइं कलिंगदेसम्मि।

कोडिसिलाकोडिमुणि णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ १८ ॥ पासस्स समवसरणे सहिया वरदत्तमुणिवरा पंच । रिस्सिंदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ १९ ॥

अथ अइसयखेत्तकंडं—अतिशयक्षेत्रकांडं ।

पासं तह अहिणंदण णायद्दहि मंगलाउरे वंदे । अस्सारम्मे पट्टणि मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि ॥१॥ बाहूबलि तह वंदमि पोयणपुरहत्थिणापुरं वंदे । सांति कुंथव अरिहो वाणारसिए सुपासपासं च ।२। महुराए अहिछित्ते वीरं पासं तहेव वंदामि । जंबुमुणिंदो वंदे णिव्वुइपत्तोवि जंबुवणगहणे ॥ ३ ॥ पंचकल्लाणठाणइं जाणवि संजादमज्झलोयम्मि । मणवयणकायसुद्धी सव्वं सिरसा णमस्सामि ॥ ४ ॥ अग्गलदेवं वंदमि वरणयरे णिवडकुंडली वंदे । पासं सिवपुरि वंदमि होलागिरिसंखदेवम्मि ॥ ५ ॥ गोमटदेवं वंदमि पंचसयं धणुहदेहउच्चतं । देवा कुणंति वुट्ठी केसरिकुसुमाण तस्स उबरिम्मि ॥ ६ ॥ णिव्वाणठाण जाणिवि अइसयठाणाणि अइसए सहिया । संजादमिच्चलोए सव्वे सिरसा णमस्सामि ॥ ७ ॥ जो जण पढइ तियालं णिव्वुइकंडंपि भावसुद्धीए । भुंजदि णरसुरसुक्खं पच्छा सो लहइ णिव्वाणं ॥ ८ ॥ इति अइसइखित्तकंडं ।

१०१ । अथ निर्वाणकांड भाषा ।

दोहा—वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय ।
कहूं कांड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय ॥ १ ॥

चौपाई १५ मात्रा ।

अष्टापद आदीसुरस्वामि । बासुपूज्य चंपापुरि नामि ॥

नेमिनाथस्वामी गिरनार । बंदौं भाव भगति उरधार ॥ २ ॥ चरम तीर्थंकर चरम शरीर । पावापुरि स्वामी महावीर ॥ शिखरसमेद जिनेसुर बीस । भावसहित बंदौं निशदीस ॥ ३ ॥ वरदत्तराय रु इंद मुनिंद । सायरदत्त आदि गुणवृंद ॥ नगरतारवर मुनि उंठकोड़ि । बंदौं भावसहित कर जोड़ि ॥ ४ ॥ श्रीगिरनारशिखर विख्यात । कोडि बहत्तर अरु सौ सात ॥ संबु प्रदुम्न कुमर द्वै भाय । अनिरुध आदि नमूं तसु पाय ॥ ५ ॥ रामचंद्रके सुत द्वै वीर । लाडनरिंद आदि गुण-धीर ॥ पांचकोडि मुनि मुक्तिमझार । पावागिरि बंदौं निर-धार ॥ ६ ॥ पांडव तीन द्रविडराजान । आठकोडि मुनि मुकति पयान ॥ श्रीशत्रुंजयगिरिके सीस । भावसहित बंदौं निशदीस ॥ ७ ॥ जे बलभद्र मुकतिमें गये । आठकोडि मुनि औरहिं भये ॥ श्रीगजपंथशिखर सुविशाल । तिनके चरण नमूं तिहुंकाल ॥८॥ राम हनू सुग्रीव सुडील । गवगवाख्य नील महानील ॥ कोडि निन्याणवै मुक्तिपयान । तुंगीगिरि बंदौं धरि ध्यान ॥ ९ ॥ नंग अनंगकुमार सुजान । पांचकोडि अरु अर्ध प्रमान ॥ मुक्ति गये सोनागिरिशीश । ते बंदौं त्रिभुवनपति ईश ॥ १० ॥ रावणके सुत आदिकुमार । मुक्ति गये रेवातट सार ॥ कोडि पंच अरु लाख पचास । ते बंदौं धरि परम हुलास ॥ ११ ॥ रेवानदी सिद्धवरकूट । पश्चिम-दिशा देह जहँ छूट ॥ द्वै चक्री दश कामकुमार । ऊठकोडि बंदौं भवपार ॥ १२ ॥ बड़वानी बडनयर सुचंग । दक्षिण

१—साढ़े तीन किरोड़ ।

दिश गिरिचूल उतंग ॥ इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण । ते बंदौं भवसायर तर्ण ॥ १३ ॥ सुवरणभद्र आदि मुनि चार । पावा-गिरिवर शिखरमझार ॥ चलना नदी तीरके पास । मुक्ति गये बंदौं नित तास ॥ १४ ॥ फलहोडी वडगाम अनूप । पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप ॥ गुरुदत्तादि मुनीसुर जहां । मुक्ति गये बंदौं नित तहां ॥ १५ ॥ बाल महाबाल मुनि दोय । नाग-कुमार मिले त्रय होय ॥ श्रीअष्टापद मुक्तिमझार । ते बंदौं नित सुरत संभार ॥ १६ ॥ अचलापुरकी दिश ईशान । तहां मेढ़गिरि नाम प्रधान ॥ साढे तीन कोडि मुनिराय । तिनके चरण नमूं चित लाय ॥ १७ ॥ वंसस्थल वनके ढिंग होय । पश्चिमदिशा कुंथुगिरि सोय ॥ कुलभूषण दिशभूषण नाम । तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥ १८ ॥ जसरथराजाके सुत कहे । देश कलिंग पांचसौ लहे ॥ कोटि शिला मुनि कोटि-प्रमान । बंदन करूं जोर जुगपान ॥ १९ ॥ समवसरण श्रीपार्श्वजिनंद । रेसंदीगिरि नयनानंद ॥ वरदत्तादि पंच ऋषि-राज । ते बंदौं नित धरमजिहाज ॥२०॥ तीन लोकके तीरथ जहां । नितप्रति बंदन कीजे तहां ॥ मन वच कायसहित सिर-नाय । वंदन करहिं भविक गुणगाय ॥ २१ ॥ संवत सतरहसौ इकताल । अश्विनसुदि दशमी सुविशाल । 'भैया' वंदन करहिं त्रिकाल । जय निर्वाणकांड गुणमाल ॥ २२ ॥ इति ॥

१०२ महावीराष्टक भाषा।

जिन्होंकी प्रज्ञामें, मुकुरसम चैतन्य जड़ भी, स्थिती ध्रौव्योत्पत्ती, युत झलकते साथ सब ही। जगद्ज्ञाता मार्ग,

प्रकटकरता सूर्यसम जो, महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ १ ॥ जिन्होंके दो चक्षू, पलक अरु लाली रहित हो, जनोंको दर्शाते, हृदयगत क्रोधातिलयको। जिन्होंकी शांतात्मा अतिविमलमूर्ती स्फुटमहा, महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ २ ॥ नमंते इंद्रोंके, मुकुटमणिकी कांति धरता, जिन्होंके पादोंका, युग, ललित, संतप्त जनको। भवाग्नीका हर्ता, स्मरण करते ही सुजल है, महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ३ ॥ जिन्होंकी पूजासे, मुदितमन हो मेंढक जबै, हुआ स्वर्गी ताही, समय गुणधारी अतिसुखी। लहै जो मुक्तिके सुख भगत तो विस्मय कहा, महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रगट वे ॥ ४ ॥ तपे सोने ज्योंभी, रहित वपुसे, ज्ञानगृह हैं, अकेले नाना भी, नृपतिवर सिद्धार्थ सुत हैं। न जन्मे भी श्रीमान्, भवरत नहीं अद्भुतगती, महावीर स्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ५ ॥ जिन्होंकी वाग्गंगा, अमल नयकल्लोल धरती, न्हवाती लोगोंको, सुविमल महा ज्ञानजलसे। अभी भी सेते हैं, बुधजन महाहंस जिसको, महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रगट वे ॥ ६ ॥ त्रिलोकीका जेता मदनभट जो दुर्जय महा, युवावस्थामें भी, वह दलित कीना स्वबलसे। प्रकाशी मुक्तीके, अतिसुसुखदाता जिन-विभू, महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रगट वे ॥ ७ ॥ महा-मोहव्याधी, हरणकरता वैद्य सहज, विना इच्छा बंधू, प्रथित-जगकल्याण करता। सहारा भव्योंको सकल जगमें उत्तम गुणी, महावीरस्वामी दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ८ ॥

सँस्कृत वीराष्टक रच्यो, भागचंद रुचिवान ।
तस भाषा अनुवाद यह, पढि पावै निर्वान ॥ १ ॥

१०३ । श्रीसम्मेदाचल पूजा ।

दोहा—सिद्धक्षेत्र तीरथ परम, है उतकृष्ट सुथान ।
शिखरसमेद सदा नमों, होय पापकी हान ॥ १ ॥
अगणित मुनि जहतैं गए, लोकशिखरके तीर ।
तिनके पदपंकज नमो, नाशैं भवकी पीर ॥ २ ॥

अडिल्ल ।

है उज्वल वह क्षेत्र सुअति निरमल सही ।
परम पुनीत सुठौर महा गुणकी मही ॥
सकल सिद्धिदातार महा रमणीक है ।
बंदों निज सुखहेत अचल पद देत है ॥ ३ ॥

सोरठा ।

शिखरसमेद महान, जगमें तीर्थ प्रधान है ।
महिमा अदभुत जान, अल्पमती मैं किमि कहों ॥ ४ ॥

सुन्दरी छंद ।

सरस उन्नत क्षेत्र प्रधान है । अति सु उज्वल तीर्थ महान है ॥
करहिं भक्ति सु जे गुण गायकें । वरहिं सुर शिवके सुख जायकें ॥

अडिल्ल ।

सुर हरि नर इन आदि और बंदन करें ।
भवसागरतैं तिरें, नहीं भवमें परें ।
सफल होय तिन जन्म शिखर दरशन करें,
जनमजनमके पाप सकल छिनमें टरें ॥ ६ ॥

पद्धड़ी छंद ।

श्रीतीर्थंकर जिनवर जु वीश, अरु मुनि असंख्य सब गुणन ईश

पहुंचे जहँतैं कैवल्य धाम, तिनको अब मेरी है प्रणाम ॥ ७ ॥

गातिका छंद।

सम्मेदगढ है तीर्थ भारी सबहिकों उज्वल करै।
चिरकालके जे कर्म लागे दर्शतैं छिनमें टरै ॥
है परमपावन पुण्यदायक अतुलमहिमा जानिये।
अरु है अनूप सुरूप गिरिवर तासु पूजन ठानिये ॥ ८ ॥

दोहा—श्रीसम्मेदशिखर सदा, पूजों मनवचकाय।
हरत चतुर्गतिदुःखकों, मनवांछित फल दाय ॥ १ ॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

इस प्रकार तीन बार ठोनेमें पुष्पोंसे आह्वननादि करें।

अथ अष्टक।

अडिल्ल।

क्षीरोदधि सम नीर सुनिरमल लीजिये।
कनक कलशमें भरके धारा दीजिये ॥
पूजों शिखरसमेद सुमनवचकाय जी।
नरकादिकदुख टरें अचलपद पाय जी ॥ १ ॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

पयसों घसि मलयागिरिचंदन लाइये। केसरि आदि कपूर सुगंध मिलाइये ॥ पूजों शिखरसमेद० ॥ नरका० ॥ चदनं ॥२॥
तन्दुल धवल सुवासित उज्वल धोयकैं। हेमरतनके थार भरों शुचि होयकें ॥ पूजों शिखरसमेद० ॥ अक्षतान् ॥ ३ ॥
सुरतरुके सम पुष्प अनूपम लीजिये। कामदाहदुखहरण

चरण प्रभु दीजिये ॥ पूजों शिखरसमेद० ॥ पुष्पं ॥ ४ ॥
कनकथार नैवेद्य सु षटरसतैं भरे । देखत क्षुधा पलाय सुजिन आगैं धरे ॥ पूजों शिखरसमेद० ॥ नरकादि० ॥ नैवेद्यं ॥५॥
लेकर मणिमय दीप सुज्योति प्रकाश है । पूजत होत सुज्ञान मोहतम नाश है ॥ पूजों शिखरसमेद० ॥ नरका०॥ दीपं ॥६॥
दशविधि धूप अनूप अगनिमैं खेवहूं । अष्टकर्मको नाश होत सुख लेवहूं ॥ पूजों सिखरसमेद० ॥ नरका० ॥ धूपं ॥७॥
एला लौंग सुपारी श्रीफल लाइये । फल चढाय मनवांछित शिवफल पाइये ॥ पूजों शिखरसमेद० ॥ नरका०॥ फलं ॥८॥
जल गंधाक्षत पुष्प सुनेवज लीजिये । दीप धूप फल लेकर अर्घ सु दीजिये ॥ पूजों शिखरसम्मेद ॥ नरका०॥ अर्घ्यं ॥९॥

पद्धडि छंद ।

श्रीविंशति तीर्थंकर जिनेंद्र । अरु असंख्यात जहतैं मुनेंद्र ॥
तिनको करजोरि करौं प्रणाम । जिनको पूजों तजि सकल काम ॥ महार्घं ॥

अडिल्ल ।

जे नर परम सुभावनतैं पूजा करैं ।
हरि हलि चक्री होंय राज छह खँड करैं ॥
फेरि होंय धरणेंद्र इंद्रपदवी धरैं ।
नानाविध सुख भोगि बहुरि शिवतिय वरैं ॥ ११ ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

छंद जोगीरासा ।

श्रीसम्मेदशिखरगिरि उन्नत, शोभा अधिक प्रमानों ।
विंशति तिहँपर कूट मनोहर अदभुत रचना जानो ॥

श्रीतीर्थंकर वीस तहांतैं, शिपुर पहुंचे जाई ।
तिनके पदपंकज जुग पूजौं, अर्घ प्रत्येक चढाई ॥ १ ॥
पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

नं० २४ अजितनाथ सिद्धवर कूट ।

प्रथम सिद्धवर कूट सुजानों, आनंद मंगलदाई ।
अजितनाथ जहंतैं शिव पहुंचे पूजों मनवचकाई ॥
कोडि जु अस्सी एक अरब मुनि, चौवन लाख जु गाई ।
कर्म काटि निर्वाण पधारे, तिनकों अर्घ चढाई ॥ २ ॥
ॐ ह्रीं श्रीसम्मेदसिखरसिद्धक्षेत्रसिद्धवरकूटतैं अजितनाथजिनेंद्रादिमुनि असीकोटि एक अरब चौवनलाख सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

नं० १४ सम्भवनाथ धवलकूट ।

धवलदत्त है कूट दूसरो, सब जियको सुखकारी ।
श्रीसम्भव प्रभु मुक्ति पधारे पापतिमिरिकों टारी ॥
धवलदत्त दे आदि मुनी, नव कोडाकोडी जानो ।
लाख बहत्तरि सहस वियालिस, पंचशतक ऋषि मानो ॥
कर्मनाश करि शिवपुर पहुंचे, बंदों शीश नवाई ।
तिनके पदजुग जजहुं भावसों, हरषि २ चितलाई ॥ ३ ॥
ओं ह्रीं श्रीसम्मेदसिखरशिद्धक्षेत्रधवलकूटतैं सम्भवनाथजिनेंद्रादि मुनि नौकोडाकोडी बहत्तरलाखव्यालीसहजारपांचसौसिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्व० स्वाहा ॥३॥

नं० १६ अभिनंदननाथ आनंदकूट ।

चौपाई ।

आनँदकूट महासुखदाय । अभिनंदन प्रभु शिवपुर जाय ॥
कोडाकोडि बहत्तर जान । सत्तरकोडि लखछत्तिस मान ॥
सहस वियालिस शतक जु सात । कहे जिनागममैं इह भांत
ए ऋषि कर्म काटि शिव गए । तिनके पदजुग पूजत भये ॥४॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र आनंदकूटतैं श्रीअभिनंदनजिनेंद्रादिमुनिबहत्तरकोडाकोडी सत्तरकोडिछत्तीसलाखब्यालिसहजारसातसौसिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥

नं० १९ सुमतिनाथ अविचल कूट ।

अडिल्ल ।

अविचल चौथो कूट महासुख धाम जी। जहँते सुमतिजिनेश गये निर्वाण जी ॥ कोडाकोडी एक मुनीश्वर जानिये । कोटि चौरासी लाख बहत्तरि मानिये । सहस इक्यासी और सातसौ गाइये । कर्म काटि शिव गये तिन्हें शिर नाइये ॥ सो थानक मैं पूजूं मनवचकाय जी । पाप दूर होजांय अचलपद पाय जी ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रअविचलकूटत सुमतिनाथजिनद्रादि मुनि एककोड़ाकोड़ी चौरासीकौड़ि बहत्तरलाख इक्यासीहजार सातसौ सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्र भ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

नं० ८ पद्मप्रभ मोहन कूट ।

मोहन कूट महान परम सुंदर कह्यो । पद्मप्रभ जिनराज जहां शिवपुर लह्यो ॥ कोटि निन्यानव लाख सतासी जानिये । सहस तियालिस और मुनीश्वर मानिये ॥ सप्त सैंकरा सत्तर ऊपर वीस जू । मोक्ष गए मुनि तिन्हें नमूं नित शीसजू ॥ कहै जवाहरलाल दोयकर जोरिकै । अविनाशी पद दे प्रभु कर्मन तोरिके ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रम, हनकूटतैं पद्मप्रभजिनेंद्रमुनि निन्यानवेकोडि सतासीलाख तितालीसहजार सातसौ नब्बै सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं नि०॥६॥

नं० २२ सुपार्श्वनाथप्रभासकूट ।

सोरठा ।

कूट प्रभास महान, सुंदर जनमन मोहनों ।
श्रीसुपार्श्व भगवान, मुक्तिगए अघनाशके ॥

कोडाकोडि उनचास, कोडि चुरासी जानिये।
लाख बहत्तर मान, सात सहस हैं सात सौ ॥
और कहे व्यालीस जहंतैं मुनि मुक्ती गए।
तिनहीं नमै नित शीश, दास जवाहर जोरकर ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रप्राभासकूटतैं श्रीसुपार्श्वनाथजिनेंद्रादिमुनि उनचास-कोड़ाकोडी चौरासीकोडि बहत्तरलाख सातहजार सातसौ वियालीस सिद्धपद-प्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

नं० १० चंद्रप्रभु ललितकूट।

दोहा—पावन परम उतंग है, ललितकूट है नाम।
चंद्रप्रभ शिवकों गये बंदों आठों जाम ॥
कोडाकोडी जानिये, चौरासी ऋषिमान।
कोडि बहत्तर इम कहे, अस्सीलाख प्रमान ॥
सहस चुरासी पंचशत, पचपन कहे सुनिंद ।
वसुकरमनको नाशकर, पायो सुखको कंद।
ललितकूटतैं शिवगए, बंदौं शीश नमाय ॥
जिनपद पूजौं भावसौं, निजहित अर्घ चढ़ाय ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रललितकूटतैं चंद्रप्रभजिनेंद्रआदि मुनिचौरासीकोड़ा-कोड़ीबहत्तरकोडिअसीलाख चौरासीहजार पांचसौ पचपन सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

नं० ७ पुष्पदंत सुप्रभकूट।

पद्धड़ी छन्द।

श्रीसुप्रभकूट सु नाम जान। जहँ पुष्पदंतको मुकति थान ॥
मुनि कोड़ाकोड़ि कहे जु भाख। नव ऊपर नवधर कहे लाख ॥
शतचारि कहे अरु सहससात। ऋषि अस्सी और कहे विख्यात
मुनि मोक्षगए हनिकर्मजाल। बंदौ करजोरि नमाय भाल ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदसिखरसिद्धक्षेत्रसुप्रभकूटतें पुष्पदन्तजिनेंद्रादिमुनि एककोडाकोडी-निन्न्यानवेलाख सातहजार चारसौ असी सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ ६ ॥

नं० १२ शीतलनाथ विद्युतकूट ।

सुन्दरी छंद ।

सुभग विद्युत कूट सु जानिये । परम अदभुत तापर मानिये ॥
गए शिवपुर शीतलनाथजी । नमहुं तिन इह करधर माथजी ॥
सुनि जु कोडाकोडि अठारहू । सुनि जु कोडिवियालीस जानहू ॥
कहे और जु लाखबत्तीस जू । सहसब्यालिस कहे यतीश जू ॥
अवर नौसौ पांच जु जानिये । गए मुनि शिवपुरको मानिये ॥
करहिं जे पूजा मन लायकैं । धरहिं जन्म न भवमें आयकैं ॥१०॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रविद्युतकूटतैं शीतलनाथजिनेंद्रादिमुनि अठारहकोडा-कोडीब्यालीसकोडिबत्तीसलाखब्यालीसहजारनौसैपांच सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

नं० ६ श्रेयांसनाथ संकुलकूट ।

जोगीरासा ।

कूट जु संकुल परम मनोहर, श्रीश्रेयान् जिनराई ।
कर्मनाश कर शिवपुर पहुंचे, बंदौं मनवचकाई ॥
छ्यानव कोडाकोडी जानो, छ्यानवकोडि प्रमानो ।
लाख छ्यानवे सहस मुनीश्वर, साढे नव अब जानो ॥
ता ऊपर ब्यालीस कहे हैं श्रीमुनिके गुण गावैं ॥
त्रिविधयोग करि जो कोई पूजै, सहजानँदपद पावै ॥
सिद्ध नमों सुखदायक जगमें, आनँद मंगलदाई ।
जजौं भावसों चरण जिनेश्वर, हाथजोड़ि शिरनाई ।
परम मनोहर थान सु पावन, देखत विघन पलाई ॥
तीन काल नित नमत जवाहर मेटो भवभटकाई ।

जहँतें जे मुनि सिद्ध भए हैं, तिनको शरण गहाई।
जा पदको तुम प्राप्त भए हो, सो पद देहु मिलाई ॥११॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसंकुलकूटतें श्रीश्रेयांसनाथजिनेंद्रादिमुनि छयानवे-कोड़ाकोड़ी छयानवेकोड़ि छयानवेलाख नवहजार पांचसौ बियालीस सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

नं० २३ विमलनाथ सुवीरकुलकूट।

कुसुमलता छंद।

श्रीसुवीरकुल कूट परम सुंदर सुखदाई,
विमलनाथ भगवान जहां पंचमगति पाई।
कोडि जु सत्तर सात लाख षटसहस जु गाई,
सात सतक मुनि और बियालीस जानो भाई॥
दोहा। अष्टकर्मको नष्टकर, मुनि अष्टमछिति पाय।
तिनप्रति अर्घ चढावहूं, जनम मरण दुख जाय॥
विमलदेव निरमल करण, सब जीवन सुखदाय।
मोतीसुत वंदत चरण, हाथजोर शिरनाय॥ १२॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसुवीरकुलकूटतें श्रीविमलनाथजिनेंद्रआदिमुनि सत्तरकोडि सातलाख छहहजार सातसौब्यालीस सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ १२॥

नं० १३ अनन्तनाथ स्वयंभूकूट।

अडिल्ल।

कूट स्वयंभू नाम परम सुन्दर कह्यो।
प्रभु अनंतजिननाथ जहां शिवपद लह्यो॥
मुनि जु कोडाकोडि छ्यानवे जानिये।
सत्तर कोडि जु सत्तरलाख प्रमानिये॥
सत्तर सहस जु और मुनीश्वर गाइये।

सात सतक ता ऊपर तिनको ध्याइये ॥
कहैं जवाहरलाल सुनो मनलायके ।
गिरिवरकों नित पूजो अति सुखपायके ।

सोरठा

पूजत विघन पलाय, ऋद्धि सिद्धि आनँद करै ॥
सुर शिवको सुखदाय, जो मनवच पूजा करै ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रस्वयंभूकूटतें अनंतनाथजिनेंद्रादि मुनि छ्यानवैकोड़ाकोड़ी सत्तरिकोडि सत्तरलाख सत्तरहजार सातसौ सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १३ ॥

नं० १८ धर्मनाथसुदत्तकूट ।

चौपाई ।

कूट सुदत्त महासुभ जान । श्रीजन धर्मनाथको थान ॥
मुनि कोडाकोडी उनईस । औरकहे ऋषि कोडि उनीश ॥
लाखजु नव नौसहस सुजान । सात शतक पंचावन मान ॥
मोक्ष गये वे कर्मनचूर । दिवसरु रयनि नमों भरपूर ॥
महिमा जाकी अतुल अनूप । ध्यावत वर इंद्रादिक भूप ॥
शोभत महा अचलपद पाय । पूजों आनँद मंगल गाय ॥
दोहा—परम पुनीत पवित्र अति, पूजत शत सुरराय ।
तिह थानककों देख कर, मोतीसुत गुणगाय ॥
पावन परम सुहावनो, सब जीवन सुखदाय ।
सेवत सुर हरि नर सकल, मनवांछितपदपाय ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसुदत्तकूटतें धर्मनाथजिनेन्द्रादिमुनि उन्नीस कोडाकोडी उन्नीसकोड़ि नोलाख नौहजार सातसौ पंचानवै सिद्धपदप्राप्तेभ्यो अर्घं० ॥१४॥

नं० २० शान्तिनाथ शांतिप्रभकूट ।

सुगीतिका छंद ।

श्रीशांति प्रभ है कूट सुन्दर, अतिपवित्र सु जानिये ।

श्रीशांतिनाथ जिनेंद्र जहंतैं, परमधाम प्रमानिये ।
नवजु कोडाकोडि मुनिवर, लाख नव अब जानिये ।
नौ सहस नवसे मुनि निन्यानव, हृदयमें धर मानिये ॥
दोहा—कर्मनाश शिवको गए, तिन प्रति अर्घ चढाय ।
त्रिविधयोग करि पूज है, मनबांछित फलपाय ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रशांतिप्रभकूटतैं शांतिनाथजिनेन्द्रादिमुनि नौकोडाकोडि नोलाख नोहजार नोसै निन्नानवै सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं नि० ।

नं० २ कुन्थुनाथ ज्ञानधरकूट ।

गीतिका छंद ।

ज्ञानधर शुभकूट सुंदर, परम मन मोहन सही ।
जहतैं श्रीप्रभु कुन्थुस्वामी, गये शिवपुरकी मही ॥
कोडा सु कोडि छ्यानबे, मुनि कोडिछ्यावन जानिये ।
अर लाख बत्तिस सहसछ्यावन, शतकसात प्रमानिये
दोहा—और कहे ब्यालीस मुनि, सुमिरों हिये मझार ।
तिनपद पूजों भावसों, करै जु भवदधि पार ॥ १६ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदसिखरसिद्धक्षेत्रज्ञानधरकूटतैं श्रीकुन्थनाथजिनेंद्रादिमुनि छ्यानवेकोड़ाकोड़ी छ्यानवै कोडि बत्तीसलाख छ्यानवे हजार सातसौ ब्यालीस सिद्धपदप्राप्तभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१६॥

नं० ४ अरनाथ नाटककूट ।

दोहा—कूट जु नाटक परमशुभ, शोभा अपरम्पार ।
जहंतैं अरजिनराज जी, पहुंचे मुक्तिमझार ॥
कोडिनिन्यानव जानि मुनि, लाखनिन्यानव और ।
कहे सहस निन्यानवै बंदों कर जुग जोर ॥
अष्ठकर्मको नष्ट करि, मुनि अष्टमक्षिति पाय ।
ते गुरु मो हिरदै बसो, भवदधि पार लगाय ॥

सोरठा ।

तारण तरण जिहाज, भवसमुद्रके वीचमें ।
पकरो मेरी बांह, डूबतसे राखो मुझे ॥
अष्टकरम दुख दाय, ते तुमने चूरे सबै ।
केवलज्ञान उपाय,अविनाशी पद पाइयो ॥
मोती सुत गुणगाय, चरणन शीश नवायके ।
मेटो भवभटकाय, मांगत अब बरदान यों ॥ १७ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रनाटककूटतैं अरनाथजिनेन्द्रादि मुनि निन्यावैकोडि निन्यानवै लाख निन्यानवै हजार सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति ।

नं० ५ मल्लिनाथ सम्बलकूट।

सुन्दरी छंद ।

कूट सम्बल परमपवित्र जू । गये शिवपुर मल्लिजिनेश जू ॥
मुनि जु छ्यानवकोडि प्रमानिये । पदजजते हृदय सुख आनिये ॥

मोतीदाम छंद ।

भजो प्रभुनाम सदा सुखरूप, जजो मनमें धरभाव अनूप ।
टरें अघपातिक जाहिं सु दूर, सदा जनको सुख आनँदपूर ॥
डरै ज्यों नाग गरुडको देखि, भजै गजजुत्थ जु सिंहहिं पेख ।
तुमनाम प्रभू दुखहरण सदा, सुखपूर अनूपम होय मुदा ॥
तुमदेव सदा अशरणशरणं, भट मोहबली प्रभुजी हरणं ।
तुम शरणगही हम आय अबै, मुझ कर्मबली दिढ चूर सबै ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसम्बलकूटतैं श्रीमल्लिनाथजिनेंद्रादि मुनि छ्यानवैं कोडी मुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १८ ॥

नं० ९ मुनिसुव्रत निर्जरकूट ।

मदअवलिप्तकपोल छंद ।

मुनिसुव्रत जिननाथ सदा आनंदके दाई ।
सुंदर निर्जरकूट जहांतैं शिवपुर जाई ॥

निन्यानवकोडाकोडि कहे मुनि कोडि सत्ताना।
नव लख जोडि मुनिन्द कहै नौसै निन्न्यान॥

सोरठा।

कर्मनाशि ऋषिराज पंचमगतिके सुख लहे।
तारणतरणजिहाज, मो दुख दूर करो सकल॥

भुजंगप्रयात।

बली मोहकी फौज प्रभुजी भगाई, जग्यो ज्ञानपंचम महा-सुक्खदाई। समोशरण धरणेंद्रने तब बनायो, तवै देव सुर-पति सबै शीसनायो॥ जयो जय जिनेंद्र सुशब्दं उचारी, भए आज दरशन सबै सुक्खकारी। गए सर्व पातिक प्रभू दूरहीतैं, जबै दर्श कीने प्रभू दूरहीतैं॥ सुनी नाथ श्रवनो जु तेरी बड़ाई, गही शरण हमने तुम्हारो सुहाई। बली कर्म नाशे जबै मुक्ति पाई, तिन्हें हाथ जोरें सदा शीश नाई॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रनिर्जरकूटतैंमुनिसुव्रतनाथजिनेंद्रादिमुनि निन्या-नवेकोडाकोडी सत्तानवे कोडि नोलाखनौसैनिन्यानवै सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ १९॥

नं० ३ नमिनाथ मित्रधरकूट।

जोगीरासा।

कूट मित्रधर परममनोहर, सुंदर अति छविदाई।
श्रीनमिनाथ जिनेश्वर जहतैं, अविनाशी पदपाई॥
नौसै कोडाकोडी मुनिवर, एक अरब ऋषि जानो।
लाख पैंतालिस सातसहस अरु, नौसै व्यालिस मानो॥
दोहा—वसु करमनको नाश कर, अविनाशी पदपाय।
पूजों चरणसरोजकों, मनवांछितफलदाय॥ २०॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रमित्रधरकूटतैं नमिनाथजिनेंद्रादिमुनि नौसो

कोड़ाकोड़ि एकअरब पैंतालीसलाख सातहजार नौसो ब्यालीस सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २० ॥

नं० २६ पार्श्वनाथसुवर्णभद्रकूट ।

दोहा–सुवरणभद्र जु कूटपै, श्रीप्रभुपारसनाथ ।
जहँतैं शिवपुरको गए, नमों जोरिजुगहाथ ॥

त्रिभंगी छंद ।

मुनि कोडिबियासी लाख चुरासी शिवपुरवासी सुखदाई ।
सहसहि पैंतालिस सातसौ ब्यालिस तजिके आलस गुणगाई ॥
भवदधितैं तारण पतित उधारण सबदुखहारण सुखकीजे ।
यह अरज हमारी सुनि त्रिपुरारी शिवपदभारी मोदीजे ॥

छंद ।

यह दर्शनकूट अनंत लह्यो । फल षोडशकोटि उपास कह्यो ।
जगमें यह तीर्थ कह्यो भारी । दर्शन करि पाप कटैं सारी ॥

मोतीदाम छंद ।

टरैं गति वंदत नर्क तिर्यंच । कबहुं दुखको नहिं पावै रंच ॥
यही शिवको जगमें है द्वार । अरे नर वंदो कहत 'जवार' ॥
दोहा–पारशप्रभुके नामतैं, विघन दूरि टरि जाय ।
ऋद्धि सिद्धि निधि तासुको, मिलि है निसिदिन आय ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसुवर्णकूटतैं श्रीपार्श्वनाथादिमुनि बियासीकरोड-चुरासीलाखपैंतालिसहजारसातसौबियालीससिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥२१॥

अडिल्ल ।

जे नर परमसुभावनतैं पूजा करैं । हरिहलि चक्री होय राज्य षटखँड करैं ॥ फेरि होय धरणेंद्र इंद्रपदवी धरैं, नानाविधि सुख भोगि बहुरि शिवतिय वरैं ॥

आशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

नोट—जिनको प्रत्येक अर्घवाली बड़ी पूजा करनेको थिरता न हो उनको नीचे लिखी पूजा करलेना चाहिये ।

१०४। अथ समुच्चयलघुपूजा।

दोहा।

श्रीजिन बीस जिनेशके, बीसों शिखर महान।
और असंख्य मुनीश जहं, पहुंचे शिवपदथान॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्रावतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्र मम संनिहितो भव भव। वषट्॥

अथ अष्टक।

गीतिका छंद।

पदमद्रहको नीर निर्मल हेमझारीमें भरों।
तृषारोग निवारनेको, चरणतर धारा करों॥
सम्मेदगढतें मुनि असंख्ये, करमहर शिवपुर गये।
सो थान परमपवित्र पूजों, तासु फल पुनि संचये॥१॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यो श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥१॥

चंदन कपूर मिलाय केसर, नीरसों घसि लाइये।
जिनराज पापविनाश हमरे; भवाताप मिटाइये॥ सम्मेद०॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः चंदनं॥२॥

चंद्रके सम ल्याय तंदुल, कनकथारनमें भरों।
अक्षय सु पदके कारणे, जिनराजपद पूजा करों॥ सम्मेद०॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यो श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः अक्षतान्॥३॥

कुंद कमलादिक चमेली गंधकर मधुकर फिरैं।
मदनबाण विनाशवेकों, प्रभुचरण आगैं धरैं॥ सम्मेदगढ०॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरक्षेत्रेभ्यः पुष्पं॥४॥

नेवज मनोहर थालमैं भर, हरषकर ले आवने।
करहुं पूजा भावसों, नर क्षुधा रोग मिटावने॥ सम्मेदगढ०॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः नैवेद्यं ॥५॥

दीप ज्योति प्रकाश करके, प्रभूके गुण गावने।
मोहतिमिर विनाश करके, ज्ञान भानु प्रकाशने ॥सम्मेदगढ०॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो दीपं ॥६॥

वर धूप सुंदर ले दशांगी, ज्वलनमांहि सु खेइये।
वसु कर्मनाशनके सु कारण, पूज प्रभुपद बेइये ॥ सम्मेद० ॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः धूपं ॥७॥

उतकृष्ट फल जगमांहिं जेते, ढूंढ करकें लाइये।
जो नेत्र रसना लगैं सुंदर, फल अनूप चढाइये ॥ सम्मेदगढ०

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो फलं ॥ ८ ॥

वसुद्रव्ययुत शुभ अर्घ लेकर, मन प्रफुल्लित कीजिये।
तुमदास यह वरदान मांगैं, मोछलछमी दीजिये ॥
सम्मेदगढतैं मुनि असंख्ये, कर्महर शिवपुर गये।
सो थान परमपवित्र पूजों, तासु फल मुनि संचये ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ ९ ॥

नितकरैं जे नरनारि पूजा, भाव भक्ति सु लायके।
तिनको सुजस कहता, 'जवाहर' हरषमनमें धारके ॥
ते हैं सुरेश नरेश खगपति, समझ पूजाफल यही।
सम्मेदगिरिकी करहु पूजा, पायहो शिवपुरमही ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदसिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः पूर्णार्घ ॥ १० ॥

अथ आशीर्वाद।

रोलाछंद।

परम शिखरसम्मेद सबहीको है सुख करता।
बंदें जे नरनारि तिन्होंके अघ सब हरता ॥
नरकपसू गति टरें सुक्ख जगके बहु पावें।

नरपति सुरपति होंय फेरि शिवपुरको जावें ॥

इत्याशीर्वादः ।

उपदेश ।

दोहा—जे तीरथ वंदें नहीं, सुनें धर्म नहिं सार ।
ते भववनमें भ्रमहिंगे, कबहुं न पावें पार ॥
नरभव उत्तम पायके, श्रावककुल अवतार ।
पूजा जिनवरकी करें, ते उतरें भवपार ॥
सबविधिजोग जु पायके, शिखर न बंदें सार ।
रतन पदारथ पाय ते, दे समुद्रमें डार ॥

नोट—हुंडावशर्पिणीकालदोषतें अबकीबार चार तीर्थंकर अन्य अन्य जगहसे मुक्तिधाम पधारे हैं। श्वेताम्बरोंने सम्मेदशिखरजी पर चार कूट उनके भी स्थापन कर दिये हैं उनको अर्घ चढ़ानेके लिये श्लोक व मंत्र ।

नं० ११ आदिनाथ सर्वार्सिद्धवरकूट ।

ढाल कातिक ।

प्राणी हो आदीश्वर महाराजजी, अष्टापद शिवथान हो ।
पूजत सुर हर नर सकल, सो पावे निर्वाण हो ॥
प्राणी हम पूजत इनहीं सदा, ये नाशैं भवभव भीति हो ।
प्राणी पूजौ मन वच काय कर, ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभनाथजिनेंद्रादिमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीकैलाशगिरिसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ।

नं० १५ वासुपूज्य मंदारागिरि ।

सोरठा ।

वासुपूज्य जिनराय, चम्पापुरतें शिव गये ।
मनवचजोग लगाय, पूजों पदयुग अर्घ ले ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं वासपूज्यसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति ॥ २ ॥

नं० २५ नेमिनाथ ऊर्जयंतकूट ।

दोहा—नेमीश्वर तजि राजमति, लीनी दीक्षा जाय ।
सिद्ध भये गिरनारतैं, पूजों अर्घ बनाय ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीगिरनारिसिद्धक्षेत्रेभ्यः अर्घं ॥ ३ ॥

नं० २१ महावीर ।

सुन्दरी छंद ।

वर्द्धमान जिनेश्वर पूजिये, सकलपातक दूर सु कीजिये ।
गयहु पावापुरतैं मोक्षको, तिनहिं पूजत अर्घसंजोयके ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति ॥ ४ ॥

नं० १ चौवीसगणधर प्रथमटोंक ।

दोहा—तीर्थंकर चौवीसके, गणनायक हैं जेह ।
तिनको पूजों अर्घ ले, मनवच धारि सनेह ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिजिनगणधरचरणकमलेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

सिद्धक्षेत्र जे और हैं, भरतक्षेत्रके ठांहि ।
और जे अतिशयक्षेत्र हैं, कहे जिनागम मांहि ॥
तिनके नाम सु लेतही, पाप दूर होजाय ।
ते सब पूजों अर्घ ले, भवभवमें सुखदाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीभरतक्षेत्रसम्बन्धी सिद्धक्षेत्राऽतिशयसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं नि० ॥ ६

सोरठा ।

द्वीप अढाईमांहि सिद्धक्षेत्र जे और हैं ।
पूजों अर्घ चढाय, भवभवके अघनाश हैं ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं ढाई द्वीपके विषै विद्यमान समस्त क्षेत्रेभ्योऽर्घं नि० ॥ ७ ॥

अडिल्ल ।

पूजों तीस चौवीसि परम सुखदाय जू ।
भूत भविष्यत वर्तमान गुणगाय जू ।

अरु विदेहके वीस नमों शिरनाय जू
अर्चों अर्घ बनाय सु विघन पलाय जू

ओं ह्रीं श्रीभूतभविष्यद्वर्त्तमानसंबंधित्रिशच्चतुर्विंशतिजिनेंद्रेभ्यो विदेहक्षेत्रे शाश्वतविद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्यश्च अर्घं नि० ॥ ८ ॥

दोहा—कृत्याकृत्रिम जे कहे, तीन लोकके माय।
ते सब पूजों अर्घ ले, हाथ जोर शिरनाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीतीनलोकसंबंधी कृत्याकृत्रिमजिनायलस्थ जिनबिंबेभ्यो अर्घं नि० ॥

अथ जयमाला।

लोलतरंग छंद।

मनमोहन तीरथ शुभ जानो, पावन परम सुक्षेत्र प्रमानो।
उन्नत शिखर अनूपम सोहै, देखत ताहि सुरासुर मोहै ॥

दोहा—तीरथ परम सुहावनो, शिखर समेद विशाल।
कहत अल्पबुधि उक्ति सों, सुखदायक जयमाल ॥

चौपाई १५ मात्रा।

सिद्धक्षेत्र तीरथ सुखदाइ, वंदत पाप दूर हुइ जाइ।
शिखरशीशपर कूट मनोग्य, कहे वीस अति शोभायोग्य ॥ १ ॥
प्रथम सिद्धवरकूट सुजान, अजितनाथको मुक्ति सुथान।
कूटतनो दरशन फल एह, कोटि बतीस उपास गिनेह ॥ २ ॥
दूजो धवलकूट है नाम, संभवप्रभु जहँतें शिवधाम।
दरश कोटि प्रोषधफल जान, लाख बियालिस कह्यो बखान ॥
आनँदकूट महासुखदाय, जहंतें अभिनंदन शिवजाय।
कूटतनो दरशन इमि जान, लाख उपासतणो फलमान ॥ ४ ॥
अविचल कूट महासुखवेश, मुक्ति गये जहं सुमति जिनेश।
कूट भावधरि पूजे कोय, एक कोटि प्रोषधफल होय ॥ ५ ॥

मोहनकूट मनोहर जान, पद्मप्रभ जहंतैं निर्वान।
कूटपूज फल लेहु सुजान, कोटि उपास कह्यो भगवान ॥ ६ ॥
मनमोहन है कूट प्रभास, मुक्ति गए जहँ नाथ सुपास।
पूजे कूट महाफल होय, कोटि बतीस उपास जु सोय ॥
चंद्रप्रभका मुक्ति सु धाम, परमविशाल ललितघट नाम।
कूटतनो दरशन फलजान, प्रोषध सोलह लाख बखान ॥८॥
सुप्रभ कूट महासुख दाय, जहँतैं पुष्पदंत शिवपाय।
पूजो कूट महाफल लेव, कोडि उपास कह्यो जिनदेव ॥ ९ ॥
श्री विद्युतवर कूट महान, मोक्षगये शीतल धरि ध्यान।
पूजै त्रिविधजोग करकोय, कोडि उपासतनो फल होय ॥१०॥
संकुलकूट महा शुभ जान, श्रीश्रेयांश गये शिव थान।
कूटतनों दरसनफल सुन्यो, कोडि उपास जिनेश्वरभन्यो ॥११॥
कूट सुवीर परम सुखदाय, विमल जिनेश जहां शिवपाय।
मन वच दरश करै जो कोय, कोटि उपासतनो फल होय।१२।
कूट स्वयंभू सुभग सु नाम, गये अनंत अमरपुर धाम।
यही कूटको दरशन करै, कोडि उपासतनो फल धरै ॥ १३ ॥
है सुदत्तवर कूट महान, जहंतैं धर्मनाथ निरवान।
परम विशाल कूट है सोय, कोटि उपास दरश फल होय ॥१४॥
कूट प्रभास परमशुभ कह्यो, शांतिनाथ जहँतैं शिव लह्यो।
कूट तनो दरशन है सोय, एक कोडि प्रोषधफल होय ॥१५॥
परम ज्ञानधर है शुभकूट, शिवपुर कुन्थु गये अघछूट।
जाकों पूजै जो कर जोड़ि, फल उपवास कहो इक कोडि।१६।
नाटककूट महाशुभ जान, जहंतैं शिवपुर अर भगवान।

दरशन करै कूटको जोय, छ्यानव कोडि वास फल होय ॥१७॥
संवलकूट मल्लिजिनराज, जहँतैं मोक्ष भये शुभकाज।
कोडिदरशफल कह्यो जिनेश, एककोड़ि प्रोषध शुभ वेश।१८।
निर्जर कूट कह्यो सुखदाय, मुनिसुव्रत जहँतैं शिव जाय।
कूटतनो अब दरशन सोय, एक कोडि प्रोषध फल होय ॥१९॥
कूट मित्रधरतैं नमि मुक्त, पूजत पाय सुरासुर युक्त।
कूटतनो फल है सुखकंद, कोटि उपास कह्यो जिनचंद ॥२०॥
श्रीप्रभु पार्श्वनाथ जिनराज, चहुंगतितैं छूटे महाराज।
सुवरणभद्र कूटको नाम तासों मोक्ष गये सुखधाम ॥ २१ ॥
तीन लोक हितकरण अनूप, वंदत ताहि सुरासुर भूप।
चिंतामणि सुरवृक्ष समान, ऋद्धि सिद्धि मंगलसुखदान ॥२२॥
नवविधि चित्रावेलि समान, जातैं सुक्ख अनूपम जान।
पारस और कामसुरधेन, नानाविध आनँदको देन ॥ २३ ॥
व्याधिविकार जाहिं सबभाज, मनचीते पूरे ह्वै काज।
भवदधिरोगविनाशक सोय, औषधिजगमें अवर न कोय ॥२४॥
निरमल परम थान उत्कृष्ट, वंदत पाप भजैं अरु दुष्ट।
जो नर ध्यावतपुण्य कमाय, जशगावत सबकर्म नशाय ॥२५॥
कटैं अनादिकालके पाप, भजें सकल छिनमें संताप।
नरपति इंद्र फणेंद्र जु सवै, और खगेंद्र मृगेंद्र जु नवैं ॥ २६ ॥
नित सुर सुरी करैं उच्चार, नाचत गावत विविधप्रकार।
बहुविध भक्ति करैं मनलाय, विविधप्रकार वादित्र बजाय।२७।
द्रम द्रम द्रमता बजै मृदंग, घन घन घंट बजै मुहचंग।
झुनझुन झुनझुन झुनिया झुनैं, सर सर सर सारंगी धुनैं ॥२८॥

मुरली बीन बजै धुनि मिष्ट, पटहा तूर सुरान्वित पुष्ट।
सब सुरगण थुति गावत सार, सुरगण नाचत बहुत प्रकार॥
झन नन नन ना नूपुर वान, तन नन नन ना तोरत तान।
ताथेइ थेइ थेइ थेइ कर चाल, सुर नाचत नावत निज भाल॥
नाचत गावत नाना रंग, लेत जहां सुर आनँद संग।
नितप्रति सुरजहँ वंदत जाय, नानाविधिके मंगल गाय॥३१॥
अनहदधुनिकी मोद जु होय, प्रापति वृषकी अतिही होय।
तातैं हमको सुख दे सोय, गिरवर वंदों करधरि दोय॥३२॥
मारुत मंद सुगंध चलेय, गंधोदक जहँ नित वर्षेय।
जियकी जातिविरोध न होय, गिरिवर वंदों करधरि दोय॥
ज्ञान चरन तप साधन सोय, निजअनुभवको ध्यान जु होय।
शिवमंदिरको द्वारो सोय, गिरिवर वंदों करधरि दोय॥३४॥
जो भवि वंदै एकहि बार, नरक निगोद पशू गति टार।
सुर शिवपदको पावै सोय, गिरिवर वंदों करधरि दोय॥३५॥
जाकी महिमा अगम अपार, गणधर कहत न पावैं पार।
तुच्छबुद्धि मैं मति कर हीन, कही भक्तिवश केवल लीन॥३६॥

घत्ता छंद।

श्रीसिधखेतं अति सुखदेतं, शीघ्रहि भवदधि पार करं।
अरिकर्म विनाशन शिवसुखभासन, जय गिरिवर जगतारवरं

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा—शिखर सु पूजैं जो सदा, मन वचतन हरखाय।
दास जवाहर यों कही, सो शिपुरको जाय॥

इत्याशीर्वादः।

इति सम्मेदाचलपूजा समाप्ता।

१०५। कवि परिचयादि।

अडिल्ल।

पिता सु मोतीलाल "जवाहर" के कहे। काका हीरालाल गुणन पूरे लहे।
भारू मूरी गोत जु भारिल जानिये, शरण जिनेश्वर धर्म यही उर आनिये ॥१॥
दोहा। यशके लहने ना कही, कही धर्मके काज।
श्रीजिनवर की भक्तिसे, मिलिहैं सुक्ख समाज ॥ २ ॥

अडिल्ल।

रहे छतरपुर शहर जवाहरलालजी। मुक्तागिरिको चले हरष उर धार जी।
वन्दन करि फिर आये पुर अमरावती। मामनके घर रहे भई जह सुभमती ॥ ३ ॥
देख्यो शिखरविशाल सुमति हिरदय धरी, ताके अब अनुसार शिखर पूजा करी।
सुनिये बुधिजन विनती बालक मैं सही, शुद्ध अशुद्ध जु होय समझ लीजै यही ॥४॥
लीज्यो चतुर सुधार सुबुधि जन भव्य जू, मोहि दोष मत दीज्यो कीज्यो शुद्ध जू।
मोमैं नहीं विवेक सुमति करि हीन हों, पंडित चतुर सुजान तुमहिं परवीन हो ॥५॥

दोहा।

अमरावति नगरीविषैं,पूजा पूर्ण सुकीन, क्षमा जु सब जन तुम करो, मोहि दोष मति दीन
करि जिनपूजा अष्टविध, भावभगति मनलाय, मोतीसुत यह थुति करै,हाथजोरि शिरनाय

लावनी।

प्रभू नहि समरथ है कोई, जगसमुद्रयश थारा स्वामी, क्यों वरणन होई।
थके मुनिं गणधरसे ज्ञानी, हमसे मन्द कहा कह सकते, बुधिकरि अज्ञानी ॥ १ ॥
यही उर जानत है दीना, अगमअपार कही निज महिमा, वरणेको कीना ॥
प्रभू तुम त्रिभुवनके नाथा, जगचंद्रोपम चूडामणिसम परमधरमदाता ॥ २ ॥
करम तुम चूरण कर डारे, जय शिवकामिनिकन्त जिनेश्वर, सबहीके प्यारे ॥
प्रभू तुम अगणित बलधारी, अतुलअनंतचतुष्टयधारक सबको सुखकारी ॥ ३ ॥
प्रभू तुम तपलछमी धरता, धरमधुरंधर धीर जिनेश्वर, स्वर्गमुक्ति करता।
प्रभू तुम रत्नत्रयधारी, तारणतरण जिनेश्वर स्वामी, सबको हितकारी ॥ ४ ॥
प्रभू तुम संशयमदहारी, निर्विकार निर्दोष जिनेश्वर, गुणअनन्तधारी।
प्रभू तुम कामसुभटविजई, धर संजम व्रतपाल जिनेश्वर चारितदलसजई ॥ ५ ॥
प्रभू तुम मोहमहा मारयो, क्रोधमानमायाको त्याग्यो शिवपदको धारयो।
प्रभू गुणसागर हो भारी, ज्ञानजिहाज बैठके गणधर पहुंचे नहिं पारी ॥ ६ ॥
प्रभू गुणकीरति वेलिबढी, यतन बिना जगमंडपऊपर, आपुहितैं जु चढी।

कुदेव यश अब जो नित चाहैं, पै अपने घरहीके भीतर, यशको नहिं लाईं ॥ ७ ॥
प्रभू तुम सबको सुखदाई, जनमजनमके पाप कटत हैं तुमरे गुणगाई ।
जगतमें बहु पदार्थ जानों, सुरतरु चिंतामणि पारस हैं, नवनिधिको मानो ॥८॥
अरे इक भव जानो भाई, जो नियोग इह जियको होई, किंचित सुखदाई ।
करूं मैं प्रभु चरणन सेवा, जनम जनम सुखदायक प्रभुजी तुमही हो देवा ॥ ९ ॥
तुमही हो कृपानाथ स्वामी, तुम बांधव जगतात दयानिधि अन्तरके जामी ।
प्रभू तुम सब सुखके दाता, जगजीवनको पार लगावत देते सुखसाता ॥ १० ॥
प्रभू तुम गुणरत्ननखाना, तुम पुनीत समदर्शी प्रभुजो तुमहो सब जाना ॥
प्रभु बिन तीन कालमाही, नहिं नहिं शरण जीवको कोई या जगके माहीं ॥ ११ ॥
प्रभू तुम करुणानिधि नाथा, तुमसनमुख हम ठाढ़े निशिदिन जोरे जुग हाथा ॥
होय नहिं जबलों निरवाना, जगनिवास छूटै अब नाहीं दुखको जो दाना ॥ १२ ॥
प्रभू तुम चरणांवुजवासा, भवभव मिलै करत या अरजी है 'जवार' दासा ।
और नहिं मांगत प्रभु तुमसों, ह्वै दयाल दीजै वरदाना सुखी होय हमसों ॥ १३ ॥

दोहा—त्रिभुवनपति अरजी सुनो, कृपानाथ गुणखान ।
भवसागरतैं काढिये, शिवपद दे भगवान ॥ १ ॥

अडिल्ल ।

अथ वैशाख वदी नवमी शुभ जानिये । शुक्रवारके दिना समापत मानिये ॥
इक वसु नव को अंक एक अब फिर लिखो । संवत यही प्रमान सरस मनमें लखो ॥

दोहा—जे नर नारी भावसों, पूजैं श्रीजिनदेव ।
नानाविध सुख भोगके, पावैं शिव स्वयमेव ॥ ३ ॥
तिहं को इक दृष्टांत हैं, सुनो भव्य जन लोय ।
श्रद्धातैं पूजा करै, रत्नसमान जु होय ॥ ४ ॥
विन श्रद्धा पूजा करै, कांच समान सु जान ।
रतन बड़ो है मोलको, थुरमोलो काच समान ॥ ५ ॥
बहुत करी तो क्या भई, भाव न मनमें लाय ।
श्रद्धासे थोरी करै, पावै पद सुख दाय ॥ ६ ॥
श्रद्धासे थोरी करौ, लेहु बहुत कर मान ॥
प्रापति होवै पुण्यकी, पावै पद निरवान ॥ ७ ॥
तुच्छ बुद्धि मेरी सही, पंडित करो विचार ।
भूल चूक अब होय जो, लीज्यो चतुर सुधार ॥ ८ ॥

समाप्त ।

१०६ । श्रीगिरनारक्षेत्र पूजा ।

दोहा—वंदौं नेमि जिनेश पद, नेम धर्म दातार ।
नेम धुरंधर परम गुरु, भविजन सुख कर्तार ॥ १ ॥
जिनवाणीको प्रणमिकर, गुरु गणधर उरधार ।
सिद्धक्षेत्र पूजा रचौं, सब जीवन हितकार ॥ २ ॥
उर्जयंत गिरिनाम तस, कह्यो जगति विख्यात ।
गिरिनारी तासों कहत, देखत मन हर्षात ॥ ३ ॥

द्रुतविलंवित तथा सुंदरी छंद ।

गिरिसुउन्नत सुभगाकार है । पंचकूट उत्तंग सुधार है ॥
वन मनोहर शिला सुहावनी । लखत सुंदर मनको भावनी ॥
अवर कूट अनेक बने तहां । सिद्ध थान सुअति सुन्दर जहां ॥
देखि भविजन मन हर्षावते । सकल जन वंदनको आवते ॥५

त्रिभंगी छंद ।

तहँ नेमकुमारा व्रत तप धारा कर्मविदारा शिव पाई ।
मुनि कोडि बहत्तर सात शतक धर तागिरि ऊपर सुखदाई ॥
भये शिवपुर वासी गुणके राशी विधिथिति नाशी ऋद्धि धरा
तिनके गुणगाऊं पूज रचाऊं मन हर्षाऊं सिद्धिकरा ।
दोहा—ऐसे क्षेत्र महान तिहिं, पूजों मन वच काय ।
थापना त्रयबार कर, तिष्ठ तिष्ठ इत आय ॥

ओं ह्रीं श्रीगिनारिसिद्धक्षेत्र अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

अष्टक ।

लेकर नीर सुक्षीरसमान महा सुखदान सुप्रासुक भाई ।
दे त्रय धार जजों चरणा हरना मम जन्मजरा दुखदाई ॥

नेमपती तज राजमती भये बालयती तहँतैं शिवपाई ॥
कोडि बहत्तरि सातसौ सिद्ध मुनीश भये सु जजों हरषाई ।१।

ओं ह्रीं श्रीगिरनारिसिद्धक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

चंदनगारि मिलाय सुगंध सु ल्याय कटोरीमें धरना । मोह-
महातममेटनकाज सु चर्चतु हों तुम्हरे चरना ॥ नेम० । चंदनं ।
अक्षत उज्वल ल्याय धरों, तहं पुंज करो मनको हर्षाई । देहु
अखयपद प्रभु करुणाकर, फेर न या भव बास कराई । ने०अक्षतं
फूल गुलाब चमेली बेल कदंब सुचंपक तीर सुल्याई । प्राशुक-
पुष्प लवंग चढाय सुगाय प्रभू गुणकाम नशाई ॥ने० ॥ पुष्पं ॥
नेवज नव्य करों भरथाल सुकंचनभाजनमें धर भाई । मिष्ट
मनोहर क्षेपत हों यह रोग क्षुधा हरियो जिनराई ॥ नेम० ॥ नैवेद्यं
धूप दशांग सुगंधमई कर खेवहुं अग्निमझार सुहाई । शीघ्रहि
अर्ज सुनो जिनजी मम कर्म महावन देउ जराई ॥ ने० ॥ धूपं ॥
ले फल सार सुगंधमई रसनाहृद नेत्रनको सुखदाई । क्षेपत हों
तुम्हरे चरणा प्रभु देहु हमें शिवकी ठकुराई ॥ नेम० ॥ फलं ॥
ले बसु द्रव्यसु अर्घ करों धर थाल सु मध्य महा हरषाई ।
पूजत हों तुमरे चरणा हरिये बसुकर्मबली दुखदाई । ने० । अर्घं
दोहा—पूजत हों बसु द्रव्य ले, सिद्धक्षेत्र सुखदाय ।
निज हित हेतु सुहावनो, पूरण अर्घ चढाय ॥ पूर्णार्घ ॥ १० ॥

पंचकल्याणक अर्घ ।

छंद पाइता ।

कार्तिक सुदिकी छठि जानो । गर्भागम तादिन मानो ॥
उत इंद्र जजे उस थानी । इत पूजत हम हरखानी । ॥ १ ॥

ओं ह्रीं कार्तिकशुक्लाषष्ठ्यां गर्भमंगलप्राप्ताय नेमिनाथजिनेंद्राय अर्घं ॥

श्रावणसुदि छठि सुखकारी। तब जन्ममहोत्सव धारी।
सुरराजगिरि अन्हवाई। हम पूजत इत सुख पाई॥ २॥
ओं ह्रीं श्रावणशुक्लाषष्ठ्यां जन्ममंगलप्राप्ताय नेमिनाथजिनेंद्राय अर्घं॥ २॥

सित सावनकी छठि प्यारी। तादिन प्रभु दिक्षाधारी॥
तप घोर वीर तहँ करना। हम पूजत तिनके चरणा॥ ३॥
ओं ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्यां दीक्षामंगलप्राप्ताय नेमिनाथजिनेंद्राय अर्घं॥ ३॥

एकम सुदि अश्विन भासा। तब केवल ज्ञान प्रकाशा॥
हरि समवसरण तब कीना। हम पूजत इत सुख लीना॥ ४॥
ओं ह्रीं आश्विनशुक्ला प्रतिपदि केवलज्ञानप्राप्ताय नेमिनाथजिनेंद्राय अर्घं॥ ४॥

सित अष्टमि मास आषाढा। तब योग प्रभूने छांड़ा॥
जिन लई मोक्ष ठकुराई। इत पूजत चरणा भाई॥ ५॥
ओं ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठ्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय नेमिनाथजिनेंद्राय अर्घं॥ ५॥

अडिल्ल।

कोडि बहत्तरि सप्त सैंकडा जानिये।
मुनिवर मुक्ति गये तहँतैं सुप्रमाणिये॥
पूजों तिनके चरण सु मनवचकायके।
वसुविध द्रव्य मिलाय सुगाय बजायके॥ पूर्णार्घं॥

जयमाला।

दोहा—सिद्धक्षेत्र गिरनार शुभ, सब जीवन सुखदाय।
कहों तासु जयमालिका, सुनतहि पाप नशाय॥ १॥

पद्धरी छंद।

जय सिद्धक्षेत्र तीरथ महान। गिरिनारि सुगिरि उन्नत बखान
तहँ झूनागढ है नगर सार। सौराष्ट्रदेशके मधिविथार॥ २॥
तिस झूनागढसे चले सोइ। समभूमि कोस वर तीन होइ॥
दरवाजेसे चल कोस आध। इक नदी बहत है जल अगाध॥

पर्वत उत्तरदक्षिण सु दोय। मधि वहत नदी उज्वल सुतोय॥
ता नदीमध्य कइ कुंड जान। दोनों तट मंदिर वने मान॥
तहँ वैरागी वैष्णव रहाय। भिक्षाकारण तीरथ कराय॥
इक कोस तहां यह मच्यो ख्याल। आगैं इक वरनदि वहत नाल॥
तहँ श्रावकजन करते सनान। धो द्रव्य चलत आगैं सुजान॥
फिर मृगीकुंड इक नाम जान। तहँ वैरागिनके वने थान॥६॥
वैष्णव तीरथ जहँ रच्यो सोइ। वैष्णव पूजत आनंद होइ॥
आगैं चल डेढ सु कोस जाव। फिर छोटे पर्वतको चढाव॥७॥
तहँ तीन कुंड सोहैं महान। श्रीजिनके युग मंदिर वखान॥
मंदिर दिगंवरि दोय जान। श्वेतांवरके वहुते प्रमान॥८॥
जहँ वनी धर्मशाला सु जोय। जलकुंड तहां निर्मल सुतोय॥
तहँ श्वेतावरगण दिशाजाय। ताकुंडमाहिं नितही नहाय॥९॥
फिर आगैं पर्वत पर चढाउ। चढ प्रथम कूटको चले जाउ॥
तहँ दर्शन कर आगैं सुजाय। तहँ द्वितिय टोंकका दर्श पाय॥
तहँ नेमनाथके चरण जान। फिर है उतार भारी महान॥
तहँ चढकर पंचम टोंक जाय। अतिकठिन चढाव तहां लखाय
श्रीनेमनाथका मुक्ति थान। देखत नयनों अति हर्ष मान॥
इक विंव चरनयुग तहां जान। भवि करत वंदना हर्ष ठान॥
कोउ करते जय जय भक्ति लाइ। कोऊ थुति पढते तहँ भनाय
तुम त्रिभुवनपति त्रैलोक्यपाल। मम दुःख दूर कीजे दयाल॥
तुम राजऋद्धि भुगती न कोइ। यह अथिररूप संसार जोइ
तज मातपिता घर कुटुम द्वार। तज राजमतीसी सती नार॥
द्वादशभावन भाई निदान। पशुवंदि छोड दे अभयदान॥

शेसावनमें दीक्षा सुधार। तप करके कर्म किये सुछार ॥१५॥
ताही बन केवल ऋद्धि पाय। इंद्रादिक पूजे चरण आय ॥
तह समवसरण रचियो विशाल। मणिपंच वर्णकर अति रसाल
तहं वेदी कोट सभा अनूप। दरवाजे भूमि बनी सुरूप ॥
वसु प्रातिहार्य छत्रादि सार। वर द्वादश सभा बनी अपार ॥
करके विहार देशों मझार। भवि जीव करे भवसिंधु पार ॥
पुन टोंक पंचमीको सुजाय। शिवथान लह्यो आनंद पाय ॥
सो पूजनीक वह थान जान। बंदत जन तिनके पाप हान ॥
तहँतैं सुवहत्तर कोडि और। मुनि सातशतक सब कहे जोर ॥
उस पर्वतसों सब मोक्ष पाय। सब भूमि पूजने योग्य थाय ॥
तहँ देश देशके भव्य आय। वंदन कर बहु आनंद पाय ॥२०॥
पूजन कर कीने पाप नाश। बहु पुण्यबंध कीनो प्रकाश ॥
यह ऐसो क्षेत्र महान जान। हम करी वंदना हर्ष ठान ॥२१॥
उनईस शतक उनतीस जान। संवत अष्टमि सित फाग मान ॥
सब संग सहित वंदन कराय। पूजा कीनी आनंद पाय ॥२२॥
अब दुःख दूर कीजे दयाल। कहें 'चंद्र' कृपा कीजे कृपाल ॥
मैं अल्पबुद्धि जयमाल गाय। भवि जीव शुद्ध लीज्यो बनाय ॥

घत्ता—

तुम दयाविशाला सब क्षितिपाला तुम गुणमाला कंठधरी
ते भव्य विशाला तज जगजाला नावत भाला मुक्तिवरी ॥२४॥

ॐ ह्रीं श्रीं गिरनारतीर्थक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

इति श्री गिरनार क्षेत्र पूजा।



१०७। श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्रपूजा।

दोहा–उतसव किय पनवार जहं, सुरगन युत हरि आय।
जजों सुथल वसुपूज्य सुत, चंपापुर हर्षाय ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्री चंपापुरसिद्धक्षेत्र अत्रावतरावतर। संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

अष्टक। चाल नंदीश्वर पूजनकी।

सम अमिय विगतत्रस वारि, लै हिम कुंभ भरा।
लख सुखद त्रिगदहरतार, दै त्रय धार धरा॥
श्रीवासुपूज्य जिनराय, निर्वृतिथान प्रिया।
चंपापुर थल सुखदाय, पूजों हर्ष हिया॥

ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥

कश्मीरी केशर सार, अतिही पवित्र खरी।
शीतलचंदन सँगसार लै भव तापहरी॥ श्रीवासु०॥ सुगंधं
मणिद्युतिसम खंडविहीन, तंदुल लै नीके। सौरभयुत नववर वीन, शालि महानीके॥ श्रीवासुपूज्य०॥ अक्षतान्॥ ३॥
अलि लुभन शुभन दृग घ्राण, सुमन जु सुर द्रुमके। लै वाहिम अर्जुनबान, सुमन दमन झुमके॥ श्रीवासुपूज्य०॥ पुष्पं।४।
रस पुरित तुरित पकवान, पक्व यथोक्त घृती। क्षुधगदमदप्रदमन जान, लैविध युक्तकृती॥ श्रीवासुपूज्य०॥ नैवेद्यं॥५॥
तमअज्ञनाशक सूर, शिवमगपरकाशी। लै रत्नदीप द्युति पूर, अनुपम सुखराशी॥ श्रीवासुपूज्य जिन०॥ दीपं॥ ६॥
वर परिमल द्रव्य अनूप, सोध पवित्र करी। तसुचूरण कर कर धूप, लै विधिकुंज हरी॥ श्रीवासुपूज्य०॥ धूपं॥ ७॥

फल पक्व मधुररसवान, प्रासुक बहुविधके। लखि सुखद रसनदृगघ्रान, ले प्रद पद सिधके ॥ श्रीवासु० ॥ फलं ॥ ८ ॥
जलफलवसु द्रव्य मिलाय, लै भर हिमथारी ॥ वसु अंग धरापर ल्याय, प्रमुदित चितधारी ॥ श्रीवासुपूज्य० ॥ अर्घं ॥

अथ जयमाला।

दोहा—भये द्वादशम तीर्थपति, चंपापुर निर्वान।
तिन गुणकी जयमाल कछु, कहों श्रवणसुखदान ॥१॥

पद्धड़िछंद ॥

जय जय श्रीचंपापुर सु धाम। जहँ राजत नृप वसुपूज नाम ॥ जब पौन पल्यसे धर्महीन। भवभ्रमन दुःखमयलख प्रवीन ॥१॥ उर करुणाधर सो तम विडार। उपजे किरणावलि धर अपार ॥ श्रीवासुपूज्य तिनकेजुबाल। द्वादशम तीर्थंकर्ता विशाल ॥२॥ भवभोग देहतैं विरत होय। वय बालमाहिं ही नाथ सोय ॥ सिद्धन नमि महाव्रतभार लीन। तप द्वादशविध उग्रोग्र कीन ॥ तहँ मोह सप्तत्रय आयु येह। दश प्रकृति पूर्व ही क्षय करेह ॥ श्रेणीजु क्षपक आरूढ होय। गुण नवमभाग नवमाहिं सोय ॥ ४ ॥ सोलह वसु इक इक षट इकेय। इक इक इक इम इन क्रम सहेय ॥ पुन दशम थान इक लोभटार। द्वादशम थान सोलह विडार ॥ ५ ॥ है अनँत चतुष्टययुक्त स्वाम। पायो सब सुखद सयोग ठाम ॥ तहँ काल त्रिगोचर सर्वज्ञेय। युगपत हि समय इकमहि लखेय ॥ ६ ॥ कछु काल दुविध वृष अमिय वृष्टि। कर पोषे भविसुविधान्यसृष्टि ॥ इक मास आयु अवशेष जान। जिन योगनकी सुप्रवृत्ति

हान ॥ ७ ॥ ताहीथल तृतिशितध्यान ध्याय। चतुदशम थान निवसे जिनाय ॥ तहँ दुचरम समयमझार ईश। प्रकृति जु बहत्तर तिनहि पीश ॥ ८ ॥ तेरहनठ चरम समयमझार। करके श्रीजगतेश्वर प्रहार॥ अष्टमि अवनी इक समयमद्ध। निवसे पाकर निज अचल रिद्ध ॥ ९ ॥ युत गुण वसु प्रमुख अमित गुणेश। ह्वैरहे सदाही इमहि वेश ॥ तबहीतैं सो थानक पवित्र। त्रैलोक्य पूज्य गायो विचित्र ॥ मैं तसु रज निज मस्तक लगाय। वंदौं पुन पुन भुवि शीशनाय ॥ ताही पद वांछा उरमझार। धर अन्य चाहबुद्धी विडार ॥ ११ ॥

दोहा—श्रीचंपापुर जो पुरुष, पूजै मनवच काय।
वर्णी "दौल" सो पाय ही, सुखसंपति अधिकाय ॥१२॥

इत्याशीर्वादः।

१०८। श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्र पूजा।

दोहा—नहिं पावापुर छित अघति, हत सन्मत जगदीश।
भये सिद्ध शुभ थान सो, जजों नाय निज शीश ॥

ओं ह्रीं श्री पावापुरसिद्धक्षेत्र ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं श्री पावापुरसिद्धक्षेत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्री पावापुरसिद्धक्षेत्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

अथ अष्टक। गीताछन्द।

शुचि सलिल शीतौ कलिल रीतौ श्रमन चीतो लै जिसो। भर कनक झारी त्रिगद हारी दै त्रिधारी जित तृषो ॥ वर पद्म-वन भर पद्मसरवर बहिर पावाग्रामही। शिवधाम सन्मत स्वामि पायो जजों, सो सुखदा मही ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीपावापुरक्षेत्रे वीरनाथजिनेंद्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपा० ॥

भव भ्रमत भ्रमत अशर्म तपकी, तपन कर तप ताईयो। तसु बलयं कंदन मलय चंदनं, उदकसँग घिस ल्याइयो॥ वरपद्म ॥ चंदनं ॥ तंदुल नवीन अखंड लीने, लै महीने ऊजरे। मणि कुंद इंदु तुषारद्युतिजित कनरकाबीमें धरे ॥ वरपद्म० ॥ अक्षतं॥ मकरंदलोभन सुमन शोभन सुरभि चोभन लेय जी। मद समर हरवर अमर तरुके, घान दृग हरवेयजी॥ वरपद्म० ॥ पुष्पं॥ नैवेद्य पावन छुध मिटावन सेव्य भावन युत किया। रस मिष्ट पूरति इष्ट सूरति लेयकर प्रभु हित्त हिया॥ वरपद्म० ॥ नैवेद्यं॥ तमअज्ञनाशक स्वपरभाशक ज्ञेय परकाशक सही। हिम पात्रमैं धर मौल्य विन वर द्योत धर मणि दीपही ॥ वरपद्म० ॥ दीपं॥ आमोदकारी वस्तु सारी विध दुचारी जारनी। तसु तूप कर कर धूप लै दश दिश सुरभि विस्तारनी॥ वरपद्म० ॥ धूपं॥ फल भक्क पक्क सुचक्य सोहन सुक जनमन मोहने। वर सुरस पूरित तुरत मधुरत लेयकर अत सोहने॥ वरपद्म० ॥ फलं॥ जल गंध आदि मिलाय वसुविध थार स्वर्ण भरायकें। मन प्रमुद भाव उपाय कर ले आय अर्घ बनायके॥ वरपद्म॥ अर्घ॥ १॥

अथ ज़यमाला।

दोहा—चरम तीर्थं करतार श्री, वर्द्धमान जगपाल।
कलमलदल विध विकल हुय, गाऊं तिन जयमाल॥१॥

पद्धडि छंद।

जय जय सुवीर जिन मुक्तिथान। पावापुरवनसर शोभवान॥
जे शित अषाड छट स्वर्ग धाम। तजे पुष्पोत्तर सु विमान

ठाम ॥ १ ॥ कुंडलपुर सिद्धारथ नृपेश । आये त्रिशला जननी उरेश ॥ शित चैत्र त्रियोदशि युत त्रिज्ञान । जन्में तम अज्ञ निवार भान ॥ २ ॥ पूर्वान्ह धवल चउदशि दिनेश । किय नव्हन कनकगिरि शिर सुरेश । वय वर्ष तीस पद कुमर काल । सुखदिव्य भोग भुगते विशाल ॥३॥ मारगशिर अलि दशमी पवित्र । चढ चंद्रप्रभा शिवका विचित्र ॥ चलिपुरसों सिद्धन शीश नाय । धार्यो संजम वर शर्मदाय ॥ ४ ॥ गत वर्ष दुदश कर तप विधान । दिन शित वैशाख दशैं महान ॥ रिजुकूला सरिता तट स्व सोध । उपजायो जिनवर चरम बोध ॥ ५ ॥ तबही हरि आज्ञा शिर चढाय । रचि समवसरणवर धनदराय ॥ चउसंघ प्रभृति गौतम गनेश । युत तीस वरष विहेर जिनेश ॥ ६ ॥ भविजीवदेशना विविध देत । आये वर पावानगर खेत ॥ कार्तिक अलि अंतिम दिवस ईश । कर योग निरोध अघातिपीस ॥ ७ ॥ है अकल अमल इक समय माहिं । पंचम गति पाई श्रीजिनाह ॥ तब सुरपति जिन रवि अस्त जान । आये तुरंत चढि निज विमान ॥ ८ ॥ कर वपु अरचा थुति विविध भांत । लै विविध द्रव्य परिमल विख्यात ॥ तब ही अगनींद्र नवाय शीश । संस्कार देह की त्रिजगदीश ॥ ९ ॥ कर भस्म वंदना स्व महीय । निवसे प्रभु गुन चितवन स्वहीय । पुन नरमुनि गनपति आय आय । बंदी सो रज सिर नाय नाय ॥ १० ॥ तबहीसों सो दिन पूज्यमान । पूजत जिनगृह जन हर्ष मान । मैं पुन पुन तिस सुवि शीश धार । वंदो तिन गुणधर उर मझार ॥११॥ जिन

हीका अब भी तीर्थ एह। वर्तत दायक अति शर्म गेह ॥ अरु दुखम काल अवसान ताहि। वर्तैगो भवथिति हर सदाहि ॥१२॥

कुसमलता छंद।

श्री सन्मति जिनअंघ्रिपद्म युग जजे भव्य जो मन वच काय।
ताके जन्म जन्म संचित अघ जावहिं इक छिन मांहिं पलाय॥
धनधान्यादिक शर्म इंद्रपद लहै सो शर्म अतीन्द्री पाय।
अजर अमर अविनाशी शिवथल वर्णी दौल रहै शिर नाय॥

ओं ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

६। छठा अध्याय।

आरती—संग्रह।

१०९। पंचपरमेष्ठी आदिकी आरती।

इहविधि मंगलआरति कीजे, पंच परमद भज सुख लीजे ॥ टेक ॥ प्रथम आरती श्रीजिनराजा। भव-दधिपारउतारजिहाजा ॥ इहिविध० ॥१॥ दूसरि आरति सिद्धनकेरी। सुमिरन करत मिटै भवफेरी ॥ इहविध० ॥ २ ॥ तीजी आरति सूर मुनिंदा। जनममरनदुख दूर करिंदा ॥ इहविध० ॥ ३ ॥ चौथी आरति श्रीउवझाया। दर्शन देखत पाप पलाया ॥ इहविध० ॥ ४ ॥ पांचमि आरति साधु तिहारी। कुमतिविनाशन शिवअधिकारी ॥ इहविध० ॥ ५ ॥ छट्ठी ग्यारह प्रतिमा धारी। श्रावक वंदों आनँदकारी ॥ इहविध० ॥ ६ ॥ सातमि आरति श्रीजिनबानी। 'द्यानत' सुरगमुकतिसुखदानी ॥ इहविध० ॥ ७ ॥

११०। आरती श्रीजिनराजकी।

आरति श्रीजिनराज तिहारी, करमदलन संतनहितकारी ॥ टेक ॥ सुरनरअसुर करत तुम सेवा। तुम ही सब देवनके देवा ॥ आरति श्री० ॥ १ ॥ पंचमहाव्रत दुद्धर धारे। रागरोष परिणाम विदारे ॥ आरति श्री० ॥२॥ भवभय भीत सरन जे आये। ते परमारथपंथ लगाये ॥ आरति श्री० ॥ ३ ॥ जो तुम नाम जपै मनमाहीं। जनममरनभय ताको नाहीं ॥ आरति श्री० ॥४॥ समवसरनसंपूरन शोभा। जीते क्रोधमान-छललोभा ॥ आरति श्री० ॥ ५ ॥ तुम गुण हम कैसें करि गावै। गणधरकहत पार नहिं पावै ॥ आरति श्री० ॥ ६ ॥ करुणासागर करुणा कीजे। 'द्यानत' सेवकको सुख दीजे ॥ आरति श्री० ॥ ७ ॥

१११। आरती मुनिराजकी।

आरति कीजे श्रीमुनिराजकी, अधमउधारन आतम-काजकी ॥ आरति कीजे० ॥ टेक ॥ जा लच्छीके सब अभि-लाखी। सो साधन करदमवत नाखी ॥ आरति कीजे० ॥१॥ सब जग जीत लियो जिन नारी। सो साधन नागनि-वत छारी ॥ आरति० ॥ २ ॥ विषयन सब जगजिय वश कीने। ते साधन विषवत तज दीने ॥ आरति० ॥ ३ ॥ भुविको राज चहत सब प्रानी। जीरन तृणवत त्यागत ध्यानी ॥ आरति० ॥ ४ ॥ शत्रुमित्र दुखसुख सम मानै। लाभअ-लाभ बराबर जानै ॥ आरति० ॥ ५ ॥ छहोंकायपीहरव्रत धारें। सबको आप समान निहारें ॥ आरति० ॥ ६ ॥ इह

आरती पढ़ै जो गावै। 'द्यानत' सुरगमुकति सुख पावै॥ आरति कीजे० ॥ ७ ॥

११२। निश्चय आरती।

इहविध आरति करौं प्रभु तेरी। अमल अबाधित निज-गुणकेरी ॥ टेक ॥ अचल अखंड अतुल अविनाशी। लोका-लोक सकल परकाशी ॥ इह० ॥ १ ॥ ज्ञानदरससुखबल गुणधारी। परमातम अविकल अविकारी ॥ इह० ॥ २ ॥ क्रोधआदि रागादि न तेरे। जनम जरामृत कर्म न नेरे॥ इह० ॥ ३ ॥ अवपु अबंध करण-सुखनाशी। अभय अनाकुल शिवपदवासी ॥ इह० ॥ ४ ॥ रूप न रेख न भेख न कोई। चिनमूरत प्रभु तुम ही होई ॥ इह० ॥ ५॥ अलख अनादि अनंत अरोगी। सिद्ध विशुद्ध सुआतम भोगी॥ इह० ॥ ६ ॥ गुन अनंत किम वचन बतावै। 'दीपचंद' भवि भावन भावै ॥ इह विध० ॥ ७ ॥

११३। आत्माकी आरती।

करौं आरती आतम देवा, गुणपरजाय अनंत अभेवा ॥ करौं० ॥ टेक ॥ जामें सब जग जो जगमाहीं। बसत जगतमैं जगसम नाहीं ॥ करौं ॥ १ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ध्यावैं। साधु-सकल जिहँको गुण गावैं। करौं० ॥ २ ॥ बिन जाने जिय चिरभव डोले। जिहँ जाने ते शिवपट खोले॥ करौं० ॥ ३ ॥ व्रती अविरती विधव्योहारा। सो तिहुंकाल करमसों न्यारा ॥

इन्द्रियसुख।

करौं० ॥ ४ ॥ गुरुशिख उभय वचनकरि कहिये । वचनातीतदशा तस लहिये ॥ करौं०॥ ५ ॥ स्वपर भेदको खेद उछेदा । आप आपमैं आप निवेदा ॥ करौं० ॥ ६ ॥ सो परमातम शिवसुख दाता । होहि 'विहारीदास' विख्याता ॥ करौं० ॥ ७ ॥

११४ । आरती श्रीवर्द्धमानकी ।

राग गौरी ।

करौं आरती वर्धमानकी । पावापुरनिरवानथानकी ॥ करौं० ॥ टेक ॥ राग-बिना सब जगजन तारे । द्वेष-विना सब करम विदारे ॥ करौं० ॥ १ ॥ शील-धुरंधर शिव-तिय-भोगी । मनवचकायन कहिये जोगी ॥ करौं० ॥ २ ॥ रतन-त्रयनिधि परिगह-हारी । ज्ञान-सुधा-भोजन व्रतधारी ॥ करौं० ॥ ३ लोकअलोकव्याप निजमांहीं । सुखमय इंद्रियसुखदुख नाहीं ॥ करौं० ॥ ४ ॥ पंचकल्याणकपूज्य विरागी । विमल-दिगंबर अंबर-त्यागी ॥ करौं० ॥ ५ ॥ गुनमनि-भूषन-भूषित स्वामी । जगतउदास जगंतरजामी ॥ करौं० ॥ ६ ॥ कहै कहाँ लौं तुम सब जानौं । 'द्यानत' की अभिलाष प्रमानौं ॥ करौं० ॥ ७ ॥

११५ आरती निश्चयआत्माकी ।

चौपाई ।

मंगलिआरति आतमराम । तनमंदिर मन उत्तम ठाम ॥ मंगल० ॥ टेक ॥ समरसजलचंदन आनंद । तंदुल तत्त्वस्वरूप अमंद ॥ मंगल० ॥ १ ॥ समयसारफूलनकी माल । अनुभवसुखनेवज भरि थाल ॥ मंगल० ॥ २ ॥ दीपकज्ञान,

ध्यानकी धूप। निरमलभाव महाफलरूप ॥ मंगल० ॥ ३ ॥ सुगुण भविकजन इकरँगलीन। निहचै नवधाभक्तिप्रवीन ॥ मंगल० ॥ ४ ॥ धुनि उतसाह सु अनहद गान। परमसमाधिनिरत परधान ॥ मंगल० ॥ ५ ॥ बाहिज आतमभाव बहाव। अंतर ह्वै परमातम ध्याव ॥ मंगल० ॥ ६ ॥ साहब-सेवकभेद मिटाय। 'द्यानत' एकमेक होजाय ॥ मंगल० ॥ ७ ॥

उपर्युक्त आरतियोंमेंसे इच्छानुसार एक या दो आरती बोलकर नीचे लिखा श्लोक, दोहा और मंत्र पढ़कर आरतीको मस्तकपर चढ़ावै।

११६। दीपधूप चढानेके मंत्रादि।

ध्वस्तोद्यमांधीकृतविश्वविश्वमोहांधकारप्रतिघातदीपान्।
दीपैः कनत्कांचनभाजनस्थैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥

दोहा—स्वपरप्रकाशनज्योति अति, दीपक तमकरहीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ओं ह्रीं मोहतिमिरविनाशनाय देवशास्त्रगुरुभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥

धूप चढ़ाते समय अथवा धूपकी आशिका लेते समय नीचे लिखा श्लोक, दोहा और मंत्र बोलना चाहिये।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टज्वालसंधूपने भासुरधूमकेतून्।
धूपैर्विधूतान्यसुगंधिगंधैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥

दोहा—अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ओं ह्रीं अष्टकर्मविनाशनाय देवशास्त्रगुरुभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥

७ सातवाँ अध्याय।

विनती-संग्रह।

(११७)

दोहा—विश्वभाव व्यापी तदपि, एक विमल चिद्रूप।
ज्ञानानंदमयी सदा, जयवंतौ जिनभूप॥ १॥

छंद चाल (१४ मात्रा)

सफली मम लोचनद्वंद। देखत तुमको जिनचंद॥ मम तन मन शीतल एम। अम्रतरस सींचत जेम॥ २॥ तुम बोध अमोघ अपारा। दर्शन पुनि सर्व निहारा॥ आनंद अतिंद्रिय राजै॥ बल अतुल स्वरूप न त्यागै॥३॥ इत्यादिक स्वगुन अनंता। अंतर्लक्ष्मी भगवंता॥ बाहिज विभूति बहु सोहै। वरनन समर्थ कवि को है॥ ४॥ तुम वृच्छ अशोक सुस्वच्छ। सब शोकहरनको दच्छ॥ तहँ चंचरीक गुंजारें। मानों तुम स्तोत्र उचारें॥५॥ शुभरत्नमयूख विचित्र। सिंहासनशोभ पवित्र॥ तहँ वीतराग छवि सोहै। तुम अंतरीछ मन मोहै॥ ६॥ वर कुन्दकुन्द-अवदात। चामरव्रज सव सुहात॥ तुम ऊपर मघवा ढारैं। धरि भक्तिभाव अघ टारैं॥७॥ मुक्ताफलमाल-समेत। तुम ऊर्ध्व छत्रत्रय सेत॥ मानो तारान्वित चंद। त्रय मूर्ति धरी द्युतिवृंद॥८॥ शुभ दिव्य पटह बहु बाजैं। अतिशय जुत अधिक विराजैं॥ तुमरौ जस घोकैं मानौं। त्रैलोक्यनाथ यह जानौं॥ ९॥ हरिचंदन सुमन सुहाये। दशदिशि सुगंध महकाये॥ अलिपुंज विगुंजत जामैं। शुभ वृष्टि होत तुम सामैं॥ १०॥ भामंडलदीप्ति अखंड। छिप जात कोटि मार्तंड॥

जग लोचनको सुखकारी । मिथ्यातमपटल निवारी ॥ ११ ॥ तुमरी दिव्यध्वनि गाजै ॥ विन इच्छा भविहित काजे ॥ जीवादिक तत्त्वप्रकाशी । भ्रमतमहर सूर्यकलासी । १२। इत्यादि विभूति अनंत । बाहिज अतिशय अरहंत ॥ देखत ममभ्रमतम भागा। हित अहित ज्ञान उरजागा ॥ १३ ॥ तुम सबलायक उपगारी । मै दीन दुखी संसारी ॥ तातैं सुनिये यह अरजी । तुम शरन लियौ जिनवरजी ।१४। मैं जीवद्रव्य बिनअंग । लाग्यो अनादि विधिसंग ॥ ता निमित पाय दुख पाये । हम मिथ्यातादि महाये ।१५। निजगुन कबहूं नहिं भाये । सब परपदार्थ अपनाये ॥ रति अरति करी सुख दुखमैं । ह्वैकरि निजधर्मविमुख मैं ॥१६॥ परचाहदाह नित दाह्यो । नहिं शांतसुधा अवगाह्यो ॥ पशु नारकनरसुरगत मैं । चिर भ्रमत भयो भ्रममतमैं ॥१७॥ कीने बहु जामन मरना । नहिं पायो सांचौ शरना ॥ अब भाग उदय मो आयौ । तुम दर्शन निर्मल पायौ ॥१८॥ मन शांत भयो उर मेरो । बाढ्यो उछाह शिवकेरो ॥ परविषयरहित आनंद । निज रस चाख्यो निरद्वंद ॥१९॥ मुझ काजतने कारन हो । तुम देव तरन तारन हो ॥ तातैं ऐसी अब कीज्यो । तुम चरन भक्ति मोहि दीज्यो ॥२०॥ दृगज्ञानचरन परिपूर । पाऊं निश्चय भवचूर ॥ दुखदायक विषय कषाय । इनमें परनति नहिं जाय ॥ २१ ॥ सुरराज समाज न चाहौं । आतम समाधि अवगाहौं ॥ अरु इच्छा मो मनमानी । पूरौ सब केवलज्ञानी ॥ २२ ॥

दोहा—गनपति पार न पावहीं, तुम गुनजलधि विशाल ।

'भागचंद' तुव भक्ति ही, करै हमैं वाचाल ॥ २३ ॥

(११८)

हरिगीतिका (२८ मात्रा)

तुम परम पावन देव जिन अरि, रजरहस्य विनाशनं। तुम ज्ञान-दृग-जलबीच त्रिभुवन, कमलवतप्रतिभासनं ॥ आनंद निजज अनंत अन्य, अचिंत संतत परनये। बल अतुलकलित स्वभावतैं नहिं, खलितगुन अमिलित थये ॥ सब रागरुषहन परम श्रवन, स्वभावघननिर्मलदशा। इच्छारहित भविहित खिरत वच, सुनत ही भ्रमतम नशा। एकांत गहनसुदहन स्यात्पद, बहनमय निजपर दया। जाके प्रसाद विषादबिन, मुनिजन सपदि शिवपद लहा ॥ २ ॥ भूषनवसनसुमनादिविनतन, ध्यानमयमुद्रा दिपै। नासाग्रनयन सुपलक हलय न, तेजलखि खगगन छिपै ॥ पुनि वदननिरखत प्रशमजल, वरखत सुहरखतउर धरा। बुधि स्वपर परखत पुन्य आकर, कलिकलिलदरखत जरा ॥३॥ इत्यादि बहिरंतर असाधारन, सुविभवनिधानजी। इंद्रादिवंदपदारविंद, अनिंद तुम भगवानजी ॥ मैं चिरदुखी परचाहतैं, तुम धर्म नियत न उर धर्यो ॥ परदेव सेव करी बहुत, नहिं काज एक तहां सर्यो ॥ ४ ॥ अब भागचंद उदय भयो, मैं शरन आयो तुम तनी। इक दीजिये वरदान तुम जस, स्वपददायक बुधमनी ॥ परमाहिं इष्ट-अनिष्ट-मति-तजि, मगन निज गुनमें रहौं। दृग-ज्ञान-चरन समस्त पाऊं, 'भागचन्द' न पर चहौं ॥ ५ ॥

(११६)

त्रिभुवनगुरु स्वामीजी, करुनानिधिनामीजी। सुनि अंतरयामी, मेरी वीनतीजी ॥१॥ मैं दास तिहाराजी, दुखिया बहु भाराजी। दुख मेटनहारा तुम जादौंपतीजी ।२। भरम्यौ संसाराजी, चिर विपति-भँडाराजी। कहिं सार न सार, चहुंगति डोलियाजी ॥ ३ ॥ दुख मेरुसमानाजी, सुख सरसों-दानाजी। अब जान धरि ज्ञान, तराजू तोलियाजी ॥ ४ ॥ थावर तन पाया जी, त्रसनाम धरायाजी। कृमि कुंथ कहाया, मरि भंवरा हुवा जी ॥ पशुकायासारीजी, नानाविधि धारीजी। जलचारी थलचारी, उडन पखेरुवाजी ॥ ६ ॥ नरकनके माहींजी, दुखओर न काहींजी। अतिघोर जहां है, सरिता खारकीजी ॥ ७ ॥ पुनि असुर सघाँरैंजी, निज बैर विचारैंजी। मिल बांधै अरु मारैं, निरदय नारकीजी ॥ ८ ॥ मानुष अवतारैंजी, रह्यौ गरभमंझारैंजी। रटि रोयो जनमत, बारैं मैं घनोंजी ॥ ९ ॥ जोवन तन रोगीजी, कै विरह वियोगीजी। फिर भोगी बहु विध, विरधपनाकी वेदनाजी ॥ १० ॥ सुर पदवी पाईजी, रंभा उर लाईजी। तहां देखि पराई, संपति झूरियोजी ॥११॥ माला मुरझानीजी, जब आरति ठानीजी। थिति पूरन जानी मरत विसूरियोजी ॥१२॥ यों दुख भवकेरा जी, भुगते बहु-तेराजी। प्रभु ! मेरे कहते, पार न हैं कहींजी ॥ १३ ॥ मिथ्या-मदमाताजी, चाही नित साताजी। सुखदाता जगत्राता, तुम जाने नहींजी ॥१४॥ प्रभु भागनि पायेजी, गुन श्रवण सुहाये जी। तकि आया सब सेवककी, विपदा हरौजी ॥ १५ ॥

भववास वसेराजी, फिरि होय न फेराजी । सुख पावै जन तेरा, स्वामी सो करौजी ॥ १६ ॥ तुम शरनसहाईजी, तुम सज्जन भाईजी । तुम माई तुम्हीं बाप, दया मुझ लीजियेजी ॥ १७ ॥ भूधर कर जोरैजी ठाड़ो प्रभु ओरै जी । निजदास निहारौ, निरभय कीजियेजी ॥ १८ ॥

(१२०)

ढाल-परमादी ।

अहो जगतगुरु एक, सुनियो अरज हमारी । तुम हो दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी ॥ १ ॥ इस भववनके मांहि, काल अनादि गमायो । भ्रम्यो चहूंगतिमांहिं, सुख नहिं दुख बहु पायो ॥२॥ कर्म महारिपु जोर, एक न कान करैजी । मनमाने दुख देहिं, काहूसों न डरैजी ॥ कबहूं इतर निगोद, कबहूं नरक दिखावै । सुरनरपशुगति मांहिं, बहुविधि नाच नचावैं ॥ ४ ॥ प्रभु इनको परसंग, भवभवमांहिं बुरोजी । जे दुख देखे देव !, तुमसों नाहिं दुरो जी ॥५॥ एक जनमकी बात, कहि न सकौं सुनि स्वामी । तुम अनंत परजाय, जानतु अंतरजामी ॥६॥ मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे । कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे ॥ ७ ॥ ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबल करि डार्‍यो । इनही तुम मुझमांहिं, हे जिन ! अंतर पार्‍यो । पापपुन्य मिल दोय, पायनि बेरीं डारी । तनकाराग्रहमांहिं, मोहि दियो दुख भारी ॥ ९ ॥ इनको नेक बिगार, मैं कछु नाहिं कियोजी । विनकारन जगवंद्य ! बहुविधि वैर लियौजी ॥ १० ॥ अब आयौ तुम पास, सुन जिन सुजस तिहारौ । नीतिनिपुन

जगराय। कीजे न्याव हमारो ॥ ११ ॥ दुष्टन देहु निकाल साधुनकौं रखि लीजै। विनवै 'भूदरदास' हे प्रभु ढील न कीजै ॥ १२ ॥

(१२१)

चौपाई।

प्रभु इस जग समरथ ना कोय। जासौं तुम जस वर्णन होय॥ चार ज्ञानधारी मुनि थकैं। सों मंद कहा कहि सकैं ॥ १ ॥ यह उर जानत निश्चय कीन। जिनमहिमा वर्णन हम हीन ॥ पर तुम भक्तिथकी बाचाल। तिस वस हो, गाऊं गुण-माल ॥२॥ जय तीर्थंकर त्रिभुवनधनी। जय चन्द्रोपम चूडा-मनी ॥ जय जय परम धरम दातार। कर्म कुलाचल चूरन-हार ॥३॥ जय शिवकामिनिकन्त महन्त। अतुल अनंत चतुष्टयवंत ॥ जय जय आश-भरन बडभाग। तपलक्ष्मीके सुभग सुहाग ॥४॥ जयजय धर्मध्वजाधर धीर। स्वर्ग-मोक्ष-दाता वर वीर ॥ जय रत्नत्रय रत्नकरंड। जय जिन तारन तरन तरंड ॥५॥ जय जय समवसरनशृंगार। जय संशयवन दहन तुषार ॥ जय जय निर्विकार निर्दोष। जय अनंतगुण-माणिककोष ॥ ६ ॥ जय जय ब्रह्मचर्य दल साज। कामसुभट-विजयी भटराज ॥ जय जय मोहमहातरु करी। जय जय मदकुंजरकेहरी ॥ ७ ॥ क्रोधमहानलमेघ प्रचंड। मान-महीधर दामिनिदंड ॥ मायावेलि धनंजय दाह। लोभसलिलशोषण दिननाह ॥८॥ तुम गुणसागर अगम अपार। ज्ञान जहाज न पहुंचे पार ॥ तट ही तट पर डोलै सोय। कारज सिद्ध तहां

ही होय ॥९॥ तुम्हरी कीर्तिबेलि बहु बढी । यत्न बिना जगमंडप चढी ॥ और कुदेव सुयश निज चहैं । प्रभु अपने थल ही यश लहैं ॥१०॥ जगत जीव घूमैं विन ज्ञान । कीनौं मोहमहा विषपान ॥ तुम सेवा विषनाशक जरी । यह मुनिजन मिलि निश्चय करी ।११। जन्म-लता मिथ्यामत मूल । जन्म मरण लागैं तहँ फूल ॥ सो कबहूं विन भक्ति कुठार । कटै नहीं दुख फल-दातार ॥ १२ ॥ कल्पतरूवर चित्राबेलि कामपोरषा नवनिधि मेलि ॥ चिंतामणि पारस पाषान । पुण्य पदारथ और महान ।१३ ये सब एक जन्म संजोग । किंचित सुखदातार नियोग ॥ त्रिभुवननाथ तुम्हारी सेव । जन्म जन्म सुखदायक देव ॥१४॥ तुम जगबांधव तुम जगतात । अशरण-शरण विरद विख्यात ॥ तुम सब जीवनके रखवाल । तुम दाता तुम परम दयाल ॥१५॥ तुम पुनीत तुम पुरुष प्रमान । तुम समदर्शी तुम सब-जान ॥ जय जिन यज्ञ पुरुष परमेश । तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेश ॥१६॥ तुम जगभर्ता तुम जगजान । स्वामि स्वयंभू तुम अमलान ॥ तुम विन तीन काल तिहु लोय । नाहीं मरण जीवको कोय ।१७। यातैं अब करुणानिधि नाथ । तुम सन्मुख हम जोडैं हाथ ॥ जवलौं निकट होय निर्वान । जगनिवास छूटै दुखदान ॥१८॥ तबलौं तुम चरणांबुज वास । हम उर होऊ यही अरदास ॥ और न कुछ बांछा भगवान । हो दयाल दीजे वरदान ॥ १९ ॥

(१२२)

शेर ।

हे दीनबंधु श्रीपति करुणानिधानजी । यह मेरी विथा क्यों

न हरो वार क्या लगी ॥ टेक ॥ मालिक हो दो जहानके जिनराज आपही । एबो हुनर हमारा तुमसे छिपा नहीं ॥ बेजानमें गुनाह मुझसे बन गया सही । ककरीके चोरको कटार मारिये नहीं ॥ हो० ॥ १ ॥ दुखदर्द दिलका आपसे जिसने कहा सही । मुश्किल कहर बहरसे लिया है भुजा गही ॥ जस वेद औ पुरानमें प्रमान है यही । आनंदकंद श्रीजिनंद देव है तुही ॥ हो० ॥ २ ॥ हाथीपे चढ़ी जाती थी सुलोचना सती । गंगामें ग्राहने गही गजराजकी गती ॥ उस वक्तमें पुकार किया था तुम्हें सती । भय टारके उबार लिया हे कृपापती ॥ हो० ॥ ३ ॥ पावक प्रचंड कुंडमें उमंड जब रहा । सीतासे शपथ लेनेको तब रामने कहा ॥ तुम ध्यान-धार जानकी पग धारती तहां । तत्काल ही सर स्वच्छ हुआ कौंल लहलहा ॥ हो० ॥ ४ ॥ जब चीर द्रोपदीका दुशासनने था गहा । सबही सभाके लोग थे कहते हहा हहा ॥ उस वक्त भीर पीरमें तुमने करी सहा । परदा ढका सतीका सुजस जक्तमें रहा ॥ हो० ॥ ५ ॥ श्रीपालको सागरविषै जब सेठ गिराया । उनकी रमासे रमनेको आया वो बेहया ॥ उस वक्तके संकटमें सती तुमको जो ध्याया । दुखदंदफंद मेटके आनंद बढाया ॥ हो० ॥ ६ ॥ हरिषेनकी माताको जहां सौत सताया । रथ जैनका तेरा चलै पीछे यों बताया ॥ उस वक्तके अनसनमें सती तुमको जो ध्याया । चक्रीस हो सुत उसकेने रथजैन चलाया ॥ हो० ॥ ७ ॥ सम्यक्तशुद्ध शीलवति चंदना सती । जिसके नगीच लगती थी ज़ाहिर रती रती । बेरीमें

परी थी तुम्हैं जब ध्यावती हती। तब वीर धीरने हरी दुख-दंदकी गती ॥ हो० ॥ ८ ॥ जब अंजना सतीको हुआ गर्भ उजारा। तब सासने कलंक लगा घरसे निकारा ॥ बनवर्गके उपसर्गमें तब तुमको चितारा। प्रभुभक्त व्यक्त जानिके भय देव निवारा ॥ हो० ९ ॥ सोमासे कहा जो तु सती शील विशाला। तो कुंभतैं निकाल भला नाग जु काला ॥ उस वक्त तुम्हें ध्यायके सतिहाथ जब डाला। तत्काल ही वह नाग हुआ फूलकी माला ॥ हो० ॥ १० ॥ जब कष्ट रोग था हुआ श्रीपालराजको। मैना सती तब आपको पूजा इलाजको ॥ तत्काल ही सुंदर किया श्रीपाल राजको। वह राजरोग भाग गया मुक्तराजको ॥ हो० ॥ ११ ॥ जब सेठ सुदर्शनको मृषा दोष लगाया। रानीके कहे भूपने सूलीपै चढाया ॥ उस वक्त तुम्हें सेठने निज ध्यानमें ध्याया। सूलीसे उतारुस्को सिंहासनपै बिठाया ॥ हो० ॥ १२ ॥ जब सेठ सुधन्नाजीको वापीमें गिराया। ऊपरसे दुष्ट फिर उसे वह मारने आया ॥ उस वक्त तुम्हें सेठने दिल अपनेमें ध्याया। तत्काल ही जंजालसे तब उसको बचाया ॥ हो० ॥ १३ ॥ इक सेठके घरमें किया दारिद्रने डेरा। भोजनका ठिकाना भी न था साँझ सबेरा ॥ उस वक्त तुम्हें सेठने जब ध्यानमें घेरा। घर उसकेमें तब कर दिया लक्ष्मीका बसेरा ॥ हो० ॥ १४ ॥ बलि वादमें मुनिराजसों जब पार ना पाया। तब रातको तलवार ले शठ मारने आया ॥ मुनिराजने निजध्यानमें मन लीन लगाया। उस वक्त हो प्रत्यक्ष तहां देव बचाया। हो० ॥ १५ ॥ जब रामने

हनुमंत को गढ़ लंक पठाया। सीताकी खबर लेनेको सह-सैन्य सिधाया॥ मग बीच दो मुनिराजकी लख आगमें काया। झट वारि मूसलधारसे उपसर्ग बुझाया॥ हो०॥ १६॥ जिननाथहीको माथ नवाता था उदारा। घेरेमें पड़ा था वह कुलिशकरण विचारा॥ उस वक्त तुम्हें प्रेमसे संकटमें चितारा रघुवीरने सब पीर तहां तुरत निवारा॥ हो०॥ १७॥ रण-पाल कुंवरके पड़ी थी पांवमें बेरी। उस वक्त तुम्हें ध्यानमें ध्याया था सवेरी॥ तत्काल ही सुकुमालकी सब झड़ पड़ी बेरी। तुम राजकुँवरकी सभी दुखदंद निवेरी॥ हो० ॥१८॥ जब सेठके नंदनको डसा नाग जु कारा। उस वक्त तुम्हें पीरमें धरधीर पुकारा॥ ततकाल ही उस बालका विष भूर उतारा॥ वह जाग उठा सोके मानों सेज सकारा॥ हो०॥ १९॥ मुनि मानतुंगको दई जब भूपने पीरा। तालेमें किया बंद भरी लोहजँजीरा॥ मुनिईशने आदीशकी थुति की है गंभीरा। चक्रेश्वरी तब आनिके झट दूर की पीरा॥ हो०॥ २०॥ शिवकोटिने हट था किया सामंतभद्रसों॥ शिवपिंडकी वंदन करौ शंको अभद्रसों॥ उस वक्त स्वयंभू रचा गुरु भावभद्रसों। जिनचंदकी प्रतिमा तहां प्रगटी सुभद्रसों॥ हो०॥ २१॥ सूवेने तुम्हें आनिके फल आम चढ़ाया। मेंडक ले चला फूल भरा भक्तिका भाया॥ तुम दोनोंको अभिराम स्वर्गधाम वसाया। हम आपसे दातारको लख आज ही पाया॥ हो० ॥ २२॥ कपि स्वान सिंह नेवला अज बैल विचारे। तिर्यंच जिन्हें रंच न था बोध चितारे॥ इत्यादिको सुरधाम दे शिव-

धाममें धारे। हम आपसे दातारको प्रभु आज निहारे ॥ हो० ॥ २३ ॥ तुम ही अनंत जंतुका भय भीर निवारा। वेदो-पुरानमें गुरू गणधरने उचारा ॥ हम आपकी सरनागतीमें आके पुकारा। तुम हो प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष इच्छिताकारा ॥ हो० ॥ २४ ॥ प्रभु भक्त व्यक्त जक्त भक्त मुक्तके दानी। आनंद-कंद वृंदको हो मुक्तके दानी ॥ मोहि दीन जान दीनबंधु पातक भानी। संसार विषम खार तार अंतरजामी ॥ हो० ॥ २५ ॥ करुणानिधानवानको अब क्यों न निहारी। दानी अनंतदानके दाता हो सँभारी ॥ वृषचंदनंद वृंदका उपसर्ग निवारौ। संसार विषम खारसे प्रभु पार उतारौ ॥ हो दीन-बंधु श्रीपति करुणानिधानजी। अब मेरी व्यथा क्यों ना हरौ वार क्या लगी ॥ २६ ॥

(१२३)

दोहा—जासु धर्मपरभावसों, संकट कटत अनंत।
मंगलमूरति देव सो, जैवंतौ अरहंत ॥ १ ॥
हे करुणानिधि सुजनको, कष्टविषैं लखि लेत।
तजि विलंब दुख नष्ट किय, अब विलंब किह हेत ॥२॥

षट्पद।

तव विलंब नहिं कियो, दियो नमिको रजताचल। तव विलंब नहिं कियो, मेघवाहन लंकाथल ॥ तव विलंब नहिं कियो, शेठ सुत दारिद भंजे। तव विलंब नहिं कियो, नाग जुग सुरपद रंजे ॥ इमि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतियरवन। प्रभु मोर दुःखनाशनविषैं, अब विलंबकारन

फवन ॥ ३ ॥ तब विलंब नहिं कियो, सिया पावक जल कीन्हौं । तब विलंब नहिं कियो, चंदना शृंखल छीन्हौं ॥ तब विलंब नहिं कियो, चीर द्रुपदीको बाढ़्यो । तब विलंब नहिं कियो, सुलोचन गंगा काढ़्यो ॥ इमि० प्रभु० ॥ ४ ॥ तब विलंब नहिं कियो, सांप किय कुसुम सु माला । तब विलंब नहिं कियो, उर्मिला सुरथ निकाला ॥ तब विलंब नहिं कियो शील-बल फाटक खुले । तब विलंब नहिं कियो अंजना वन मन फुले ॥ इमि० प्रभु० ॥ ५ ॥ तब विलंब नहिं कियो, शेठ सिंहासन दीन्हौं । तब विलंब नहिं कियो, सिंधु श्रीपाल कढ़ीन्हौं ॥ तब विलंब नहिं कियो, प्रतिज्ञा वज्रकर्ण पल । तब विलंब नहिं कियो, सुधन्ना काढ़ि वापि थल ॥ इमि० प्रभु० ॥ ६ ॥ तब विलंब नहिं कियो, कंस भय त्रिजुग उबारे । तब विलंब नहिं कियो, कृष्णसुत शिला उतारे ॥ तब विलंब नहिं कियो खड्ग मुनिराज बचायो । तब विलंब नहिं कियो नीरमातंग उचायो ॥ इमि० प्रभु० ७ ॥ तब विलंब नहिं कियो, शेठ सुत निरविष कीन्हौं । तब विलंब नहिं कियो, मानतुँगबंध हरी-न्हौं ॥ तब विलंब नहिं कियो, वादिमुनिकोढ़ मिटायौ । तब विलंब नहिं कियो, कुमुद जिनपास मिटायौ ॥ इमि० प्रभु० ॥ ८ ॥ तब विलंब नहिं कियो, अंजनाचोर उबार्यो । तब विलंब नहिं कियो, पूरवा भील सुधार्यो ॥ तब विलंब नहिं कियो, गृद्धपक्षी सुंदर तन । तब विलंब नहिं कियो, भेक दिय सुर अद्भुत धन ॥ इमि० प्रभु० ॥ ९ ॥ इहविधि दुख निरवार, सारसुख प्रापति कीन्हौं । अपनो दास निहारि,

भक्तवत्सल गुन चीन्हौं ॥ अब विलंब किहिं हेत, कृपाकर इहां लगाई । कहा सुनो अरदास नाहिं, त्रिभुवनके राई ॥ जनवृंद सुमनवचतन अबै, गही नाथ तुम पद शरन । सुधि ले दयाल मम हालपै, कर मंगल मंगलकरन ॥ १० ॥

(१२४)

दोहा—सहज शुद्ध ज्ञायक सकल, सकल गुननिकरयुक्त ।
निर्विकार निर्दुंदमय, वंदों जिन विधिमुक्त ॥ १ ॥

पद्धड़ी छंद ।

जय त्रिभुवननायक त्रिजगईस । जय करणकुरंगनको मृगीस ॥ जय मोहशैलविध्वंसकार । जय जगतशिरोमणि स्वच्छवार ॥ २ ॥ जय अनुपम अद्भुत सुगुणधार । जय धर्मपोत जगजियउबार ॥ जय चरण शुद्ध अवलंब लंब । जय बोधशुद्ध प्रतिबिंब बिंब ॥ ३ ॥ जय एनमुक्त तुम उक्त उक्त । जय क्रांतिभार अति युक्त युक्त ॥ विधि नष्टअष्ट गुण अष्टपुष्ट । जय जंतुतुष्ट अति सुष्ट सुष्ट ॥ ४ ॥ जय मानमदोद्धतकरी तंग । जय मीनकेतुमद किमपि भंग । जय कर्मभर्म भान्यौ प्रवीन । जय मर्मज्ञान ज्ञाता कहीन ॥५॥ जय सुद्धातम प्रतिबोध बोध । जय आस्रवभाव विरोधरोध ॥ जय भवलजालजग चूरचूर । जय आस जगतकी पूरपूर ॥ ६ ॥ जय भूलधूलनासनसमीर । जय स्वातमरसफलभोगकीर ॥ जय विदितसप्ततत्त्वार्थअर्थ । जय सुगतिगमन चिंताचिंतव्यर्थ ॥ ७ ॥ जय लब्धिनवौंपूरित पुनीत । जय ज्ञानांबुधभासक सुनीत ॥ जय अनँतचतुष्टय इष्ट अंग । जय चतुकचमूविधि-

संगभंग ॥ ८ ॥ जय समवसरनलक्ष्मीनिवास। जय प्रातिहार्य-वसुजुत विभास ॥ जय कल्पबेलबांछक सुदैन। जयचिंतामणि मनचिंत लैन ॥ ९ ॥ जय जगभूरुहनासनकुठार। जय भवि-जनचातकवारिधार ॥ जय मलिनकलिलकालिमपखाल। जय मुखअरविंदअधरप्रवाल ॥ १० ॥ जय पुरहुत सुरनरनाग ईस। जय नायमाथ ध्यावत मुनीस ॥ जय आनँदकंदउदोत-सूर। जय तारणतरणतरंड भूर ॥ ११ ॥ जय सबविधिलायक तुम दयाल। जय मोहनमूरति सृष्टिपाल ॥ जय जीवनमूल सुमूलमंत्र। जय अधमउधारक भूमितंत्र ॥ १२ ॥ जय ताप-तप्तजगइंदुअंस। जय आरतरुद्रउड़ायवंस ॥ जय जगअनाथ तुम नाथकीन। जय अमल अचलचिद्रूपचीन ॥ १३ ॥ नहिं चाह नाथ कछु और मोय। हे दीनदयाल कृपाल होय। कर जोर जुगल विनतीविथार। संसारखारदुखवारतार ॥ १४ ॥

दोहा—दुख भंजन रंजन भविक, अंजनमंजनत्यागि।
गंजनगर्भ अरीनके, नमैं 'चंद' पद लागि ॥ १५ ॥

१२५। पुकार पच्चीसी ॥

दोहा—जे या भव संसारमें, भुगतें दुःख अपार।
तिन पुकारपचीसिका, करौं कवित इक ढार ॥ १ ॥

तेईसा छंद।

श्रीजिनराज गरीबनिवाज सुधारन काज सबै सुखदाई।
दीनदयाल बडे प्रतिपाल दयागुणमाल सदा शिर नाई ॥
दुर्गति टारन पापनिवारन हो भवितारन को भवताई। बार-ही वार पुकारतु हों जनकी विनती सुनिये जिनराई ॥ १ ॥

जन्मजरामरणो त्रय दोष लगे हमको प्रभु कालअनाई। तासु नसावनको तुम नाम सुन्यो हम वैद्य महासुखदाई॥ सो त्रय दोष निवारनको तुम्हरे पद सेवतु हौं चितल्याई। बारही०॥ २॥ जो इक द्वै भवको दुख होय तो राख रहौं मनको समुझाई। यह चिरकाल कुहाल भयो अबलों कहुं अंत पर्यो न दिखाई॥ मोपर या जगमांहि कलेश परे दुख घोर सहे नहिं जाई। बारही०॥ ३॥ देख दुखीपर होत दयाल सु है इक ग्रामपती शिरनाई। हो तुम नाथ त्रिलोकपती तुमसे हम अर्ज करैं शिरनाई॥ मो दुख दूर करो भवके वसु कर्मनतें प्रभु लेउ छुडाई॥ बारही०॥ ५॥ कर्म बडे रिपु हैं हमरे हमरी बहु हीन दशा कर पाई। दुःख अनंत दिये हमको हर भांतिन भांतिन दोष लगाई॥ मैं इन वैरिनके वश है करिके भटक्यो सु कह्यो नहिं जाई। बारही०॥ ५॥ मैं इस ही भव काननमें भटक्यो चिरकाल सुहाल गमाई। किंचित ही तिलसे सुखको बहुभांति उपाय करे ललचाई॥ चार गतें चिरमें भटक्यो जहँ मेरु समान महा दुखदाई। बारही०॥ ६॥ नित्य निगोद अनादि रह्यो त्रसके तनकी जहँ दुर्लभताई। ज्यों क्रमसों निकस्यो तिहतैं त्यों इतरनिगोद रह्यो चिरछाई॥ सूक्षम बादर नाम भयो जबहीं इह भांति धरी परजाई। बारही०॥ ७॥ जबहीं पृथिवी जल तेज भयो पुनि मारुत होय वनस्पतिकाई। देह अघात धरी जब सूक्षम घातत बादर दीरघताई॥ एक उदै परतेक भयो साधारण एक निगोद बसाई। बारही०॥ ८॥

इंद्रिय एक रही चिरमें कब लब्धि उदै खउपशमताई। वे त्रय चार धरी जब इंद्रिय देह उदय विकलत्रय आई ॥ पंचन आदि किधौं पर्यंत धरी इन इंद्रियके त्रस काई । बारही० ॥ ॥ ९ ॥ काय धरी पशुकी बहु बार भई जल जंतुनकी पयाई जो थलमांहि अकाश रह्यो चिर होय पखेरू पंख लगाई ॥ मैं जितनी परजाय धरीं तिनके वरणे कहुं पार न पाई। बारही० ॥ १० ॥ नर्कमझार लियो अवतार पर्यो दुख भार न कोई सहाई। जो तियके सुख हेत किये अघते सब नर्कनमें सुधि आई ॥ ता तियके तनकी पुतली हमरे हियरा करि लाल भिराई ॥ बारही ॥११॥ रत्नप्रभा सु मही जहँ है अरु शर्कर रेत उन्हार बताई। पंकप्रभा जु धुआंवत है तमसी सु प्रभासु महातम ताई ॥ जो जन लाख जु आयसपिंड तहां इकही छिनमें गल जाई ॥ बारही ॥ १२ ॥ जे अघ घात महा–दुखदायक मैं विषयारसके फल पाई। काटत हैं जबहीं निर्दय तबहीं सरिता महिं देत बहाई॥ देव अदेव कुमार जहां विच पूरव वैर चितावत जाई॥ बारही० ॥ १३ ॥ जो नरदेह मिली क्रमसों करि गर्भ कुवास महा दुखदाई। जे नवमास कलेश सहे मलमूत्र अहार महाजय ताई॥ ये दुख देखि जबै निकस्यो पुनि रोवत बालपने दुखदाई। बारही० ॥ १४ ॥ योवनमें तनरोग भयो कबहूं विरहानल व्याकुलताई। मानविषै रसभोग चख्यो उन्मत्त भयो सुख मानत ताही। आय गयो क्षणमें विरधापन यह नरभव इहभांति गमाई ॥ बारही ॥ १५ ॥ देव भयो सुरलोक विषै तब मोहि

रह्यो परियां उरलाई। पाय विभूति बढे सुरकी परसम्पति देखते झूरत जाई॥ माल जबै मुरझाय रही थित पूरण जानि तबै बिललाई॥ बारही०॥ १६॥ जे दुख मैं भुगते भवके तिनके बरणे कहुं पार न पाई। काल अनादिन आदि भयो तहँ मैं दुखभाजन हो अघमांही॥ सो दुख जानत हो तुमहीं जबहीं इहभांति धरी पर्यायी। बारही०॥ १७॥ कर्म अकाज करे हमरे हमको चिरकाल भये दुखदाई। मैं न बिगाड़ कियो इनको बिन कारण पाप भये अरि आई॥ मात पिता तुम हो जगके तुम छांडि फिराद करों कहँ जाई। बारही०॥ १८॥ सो तुमसों सब दुःख कहों प्रभु जानत हो तुम पीर पराई। मैं इनको सत्संग कियो दिनहूं दिन आवत मोहि बुराई॥ ज्ञानमहानिधि लूट लियो इन रंक कियो इहभांति हराई। बारही०॥ १९॥ मैं प्रभु एक सरूप सह्यो सब यह इन दुष्टनकी कुटलाई। पाप रु पुण्य दुहूं निज मारगमें हमको यह फांसि लगाई। मोहि थकाय दियो जगसे विरहानल देह दहै न बुझाई॥ बारही०॥ २०॥ यह विनती सुन सेवककी निज मारगमैं प्रभु लेहु लगाई॥ मैं तुव दास रह्यो तुमरे संग लाज करो शरणागति आई॥ मैं तुव दास उदास भयो तुमरी गुणमाल सदा उरलाई। बारही०॥ २१॥ देर करो मत श्रीकरुणानिधि जू पतिराखनहार निकाई। योग जुरे क्रमसों प्रभुजी यह न्याय हजूर भयो तुम आई॥ आन रह्यो शरणागति हों तुमरी सुनिके तिहुंलोक बडाई॥ बारहिंबार०॥ २२॥ मैं प्रभुजी तुम्हरी

समहूं इन अंतर पार कियो दुसराई। न्याय न अंत कर्यो हमरो न मिली हमको तुमसी ठकुराई॥ संतन राख करो अपने ढिग दुष्टनि देहु निकास बहाई। वारही०॥२३॥ दुष्टनकी सत्संगतिमें हमको कछु जान परी न निकाई। सेवक साहबकी दुविधा न रहै प्रभुजी करिये सु भलाई॥ फेर नमों सु करौं अरजी जसु जाहर जान परै जगताई। वारही०॥२४॥ यह विनती प्रभुके शरणागति जे नर चित्त लगाय करैंगे। जे जगमें अपराध करैं अघ ते क्षणमात्र भरेमें हरेंगे। जे गति नीच निवास सदा अवतार सुधी स्वर-लोक धरेंगे। देवीदास कहै क्रमसों पुनि ते भवसागर पार तरैंगे॥२५॥

८। आठवां अध्याय।

भावना संग्रह।

१२६। बारह भावना। भैया भगौतीदासकृत।

चौपाई।

पंचपरमपद वंदन करों। मनवचभावसहित उरधरों॥
बारहभावन पावन जान। भाऊं आतम गुण पहिचान॥१॥
थिर नहिं दीखै नयनों वस्त। देहादिक अरु रूप समस्त॥
थिरविन नेह कौनसों करों। अथिर देख ममता परिहरों॥२॥
अशरण तोहि शरण नहिं कोय। तीनलोकमें दृगधर जोय॥
कोइ न तेरा राखनहार। कर्मनवश चेतन निरधार॥३॥
अरु संसार भावना एह। परद्रव्यनसों कीजै नेह॥
तू चेतन वे जड सरबंग। तातैं तजहु परायो संग॥४॥

जीव अकेला फिरै त्रिकाल । ऊरधमध्यभुवन पाताल ॥
दूजा कोइ न तेरे साथ । सदा अकेलो भ्रमै अनाथ ॥ ५ ॥
भिन्न सदा पुदगल तैं रहै । भर्मबुद्धितैं जडता गहै ॥
वे रूपी पुदगलके खंध । तू चिनमूरति सदा अबंध ॥ ६ ॥
अशुचि देख देहादिक अंग । कौन कुवस्तु लगी तो संग ॥
अस्थीमांस रुधिर गद गेह । मलमूत्रनि लख तजहु सनेह ॥७॥
आस्रव परसों कीजे प्रीत । तातैं बंध बढहि विपरीत ॥
पुदगल तोहि अपनपो नाहिं । तू चेतन वे जड सब आँहि ॥
संबर परको रोकन भाव । सुख होवेको यही उपाव ॥
आवें नहीं नये जहँ कर्म । पिछले रुकि प्रगटै निजधर्म ॥ ९ ॥
थिति पूरी है खिर खिर जाहिं । निर्जर भाव अधिक अधिकाहिं
निर्मल होय चिदानँद आप । मिटै सहज परसंग मिलाप ।१०।
लोकमाहिं तेरो कछु नाहिं । लोक अन्य तू अन्य लखाहिं ॥
वह सब षटद्रव्यनको धाम । तू चिन्मूरति आतमराम ॥११॥
दुर्लभ परको रोकनभाव । सो तो दुर्लभ है सुनु राव ॥
जो तेरो है ज्ञान अनंत । सो नहिं दुर्लभ सुनो महंत ॥ १२ ॥
धर्मस्वभाव आपही जान । आपस्वभाव धर्म सोइ मान ।
जब वह धर्म प्रगट तोहि होय । तब परमातम पद लख सोय ॥
येही बारह भावन सार । तीर्थंकर भावहिं निरधार ॥
है वैराग महाव्रत लेहि । तब भवभ्रमण जलांजुलि देहि ॥१४॥
'भैया' भावहु भाव अनूप । भावत होहु तुरत शिवभूप ॥
सुख अनंत विलसो निशदीश । इम भाष्यो स्वामी जगदीश ॥
इति बारहभावना भैयाभगवतीदास कृत सम्पूर्ण ॥

१२७ । बारह भावना भूधरदासकृत ।

दोहा—राजा राणा छत्रपति, हाथिनके असवार ।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ॥ १ ॥
दलबलदेई देवता, मात पिता परिवार ।
मरती बिरियां जीवको, कोई न राखनहार ॥ २ ॥
दामविना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान ।
कहूं न सुख संसारमें, सब जग देख्यो छान ॥ ३ ॥
आप अकेलो अवतरै, मरै अकेलो होय ।
यूं कवहूं इस जीवका, साथी सगा न कोय ॥ ४ ॥
जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय ।
पर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥ ५ ॥
दिपै चामचादरमढी, हाड पींजरा देह ।
भीतर यासम जगतमें, और नही घिनगेह ॥ ६ ॥

सोरठा ।

मोहनींदके जोर, जगवासी घूमै सदा ।
कर्मचोर चहुं ओर, सरबस लूटैं सुध नहीं ॥ ७ ॥
सतगुर देय जगाय, मोहनींद जब उपशमैं ।
तब कछु बनै उपाय । कर्मचोर आवत रुकें ॥ ८ ॥

दोहा—ज्ञानदीपतपतेल भर, घरशोधै भ्रम छोर ।
याविध बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर ॥ ९ ॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार ।
प्रबल पंच इंद्री विजय, धार निर्जरा सार ॥ १० ॥
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान ।

तामैं जीव अनादितैं, भरमत हैं विनज्ञान ॥ ११ ।
जाचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंता रैन ।
विन जाचें विन चिंतये धर्म सकल सुख दैन ॥ १२ ॥
धनकनकंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान ।
दुर्लभ है संसारमें, एक जथारथ ज्ञान ॥ १३ ॥

इति बारह भावना भूधरदासकृत ।

१२८। बारहभावना बुधजनकृत।

गीताछंद ।

जेती जगतमें वस्तु तेती अथिर परणमती सदा ।
परणमनराखन नाहिं समरथ इंद्र चक्री मुनि कदा ॥
सुतनारियौवन और तन धन जान दामिनि दमकसा ।
ममता न कीजे धारि समतामानिजलमें नमकसा ॥ १ ॥
चेतन अचेतन सब परिग्रह हुआ अपनी थिति लहैं ।
सो रहैं आप करार माफिक अधिक राखे ना रहैं ॥
अब शरण काकी लेयगा जब इंद्र नाही रहत हैं ।
शरण तो इक धर्म आतम जाहि मुनि जन गहत हैं ॥ २ ॥
सुर नर नरक पशु सकल हेरे कर्म-चेरे बन रहे ।
सुख शाश्वता नहिं भासता सब विपतिमें अतिसन रहे ॥
दुख मानसी तो देवतिमें नारकी दुख ही भरैं ।
तिर्यंच मनुज वियोग रोगी शोक संकटमें जरैं ॥ ३ ॥
क्यों भूलता शठ फूलता है देख परिकरथोकको ।
लाया कहां लेजायगा क्या फौज भूषण रोक को ॥
जनमत मरत तुझ एकलेको काल केता होगया ।

सँग और नाहीं लगे तेरे सीख मेरी सुन भया ॥ ४ ॥
इंद्रीनतैं जाना न जावै तू चिदानंद अलक्ष है।
स्वसंवेदन करत अनुभव होत तब परत्यक्ष है ॥
तन अन्य जड जानो सरूपी तू अरूपी सत्य है।
कर भेद ज्ञान सो ध्यान धर निज और बात असत्य है ॥५॥
क्या देख राचा फिरै नाचा रूपसुन्दरतन लहा।
मल मूत्र भांडा भरा गाढा तू न जानै भ्रम गहा ॥
क्यों सूग नाही लेत आतुर क्यों न चातुरता धरै।
तुहि काल गटकै नाहिं अटकै छोड तुझको गिर परै ॥ ६ ॥
कोइ खरा अरु कोइ बुरा नाहीं वस्तु विविध स्वभाव है।
तू वृथा विकलप ठान उरमैं करत राग उपाव है ॥
यूं भाव आस्रव बनत तूही द्रव्य आस्रव सुन कथा।
तुझ हेतुसे पुद्गल करम न निमित्त हो देते व्यथा ॥ ७ ॥
तन भोग जगत सरूप लख डर भविक गुर शरणा लिया।
सुन धर्म धारा भर्म गारा हर्षि रुचि सन्मुख भया।
इंद्री अनिंद्री दावि लीनी त्रस रु थावरबँध तजा।
तब कर्म आस्रव द्वार रोकै ध्यान निजमें जा सजा ॥ ८ ॥
तज शल्य तीनों बरत लीनो बाह्यभ्यंतर तप तपा।
उपसर्ग सुरनर जड पशू कृत सहा निज आतम जपा ॥
तब कर्म रसविन होन लागे द्रव्यभावन निर्जरा।
सब कर्म हरकै मोक्ष वरकै रहत चेतन ऊजरा ॥ ९ ॥
विच लोक नंतालोक माहीं लोकमें द्रव सब भरा।
सब भिन्नभिन्न अनादिरचना निमितकारणकी धरा ॥

जिनदेव भाषा तिन प्रकाशा भर्मनाशा सुन गिरा।
सुर मनुष तिर्यक नारकी हुइ ऊर्ध्व मध्य अधोधरा ॥ १० ॥
अनंत काल निगोदअटका निकस थावर तनधरा।
भू वारितेजबयार ह्वैकै बेइंद्रिय त्रस अवतरा ॥
फिर हो तिइंद्री वा चौइंद्री पंचेंद्री मनबिन बना।
मनयुत मनुषगतिहोनदुर्लभ ज्ञान अति दुर्लभ घना ॥११॥
जिय ! न्हान धोना तीर्थ जाना धर्म नाहीं जपजपा।
तननग्न रहना धर्म नाहीं धर्म नाहीं तप तपा ॥
वर धर्म निज आतम स्वभावी ताहि विन सब निष्फला।
बुधजन धरम निज धार लीना तिनहिं कीना सब भला ॥
दोहा—अथिराशरणसंसार है, एकत्वअनित्यहि जान।
अशुचि आस्रव संवरा, निर्जर लोक बखान ॥ १३ ॥
बोध रु दुर्लभ धरम ये, बारह भावन जान।
इनको भावे जो सदा, क्यों न लहै निर्वान ॥ १४ ॥

इति बारह भावना बुधजन कृत सम्पूर्ण।

बज्रनाभि चक्रवर्तीकी।

१२९। वैराग्यभावना।

दोहा—बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म निसारै नाहिं ॥ १ ॥

योगीरासा वा नरेन्द्र छंद।

इहविध राज करै नरनायक भोगै पुण्य विशालो।
सुखसागरमैं रमत निरंतर जात न जान्यो कालो ॥
एक दिवस शुभ कर्मसँजोगे क्षेमंकर मुनि बंदे।

देख सिरीगुरुके पद पंकज लोचन अलि आनंदे ॥ २ ॥
तीन प्रदक्षिण दे सिर नायो कर पूजा थुति कीनी ।
साधुसमीप विनय कर बैठ्यो चरननमें दिठि दीनी ॥
गुरु उपदेश्यो धर्मशिरोमणि सुन राजा वैरागे ।
राजरमा बनितादिक जे रस ते रस वेरस लागे ॥ ३ ॥
मुनिसूरजकथनीकिरणावलि लगत भरम बुधि भागी ।
भवतनभोगस्वरूप विचार्यो परमधरम अनुरागी ॥
इह संसार महाबनभीतर भ्रमते ओर न आवे ।
जामन मरन जरा दों दाझै जीव महादुख पावै ॥ ४ ॥
कबहूं जाय नरक थिति भुंजे छेदन भेदन भारी ।
कबहूं पशु परजाय धरै तहँ बध बंधन भयकारी ॥
सुरगतिमें परसम्पति देखे राग उदय दुख होई ।
मानुष योनि अनेक विपतिमय सर्व सुखी नहीं कोई ॥ ४ ॥
कोई इष्टवियोगी विलखे कोई अनिष्ट सँजोगी ।
कोई दीन दरिद्री विगूचे कोई तनके रोगी ॥
किस ही घर कलिहारी नारी कै वैरी सम भाई ।
किसहीके दुख बाहिर दीखे किसही उर दुचिताई ॥ ५ ॥
कोई पुत्र बिना नित झूरै होइ मरै तब रोवै ।
खोटी संततिसों दुख उपजै क्यों प्रानी सुख सोवै ॥
पुण्य उदय जिनके तिनके भी नाहिं सदा सुखसाता ।
यह जगबास जथारथ देखे सबही दीखैं दुखदाता ॥ ६ ॥
जो संसारविषै सुख होता तीर्थंकर क्यों त्यागे ।
काहेको शिवसाधन करते संजमसों अनुरागे ॥

देह अपावन अथिर घिनावनि यामें सार न कोई।
सागरके जलसों शुचि कीजे तो भी शुद्ध न होई ॥ ७ ॥
सात कुधातुभरी मलमूरत चर्मलपेटी सो है।
अंतर देखत या सम जगमें और अपावन को है॥
नवमलद्वार स्रवैं निशिबासर नाम लिये घिन आवै।
व्याधि उपाधि अनेक जहां तहँ कौन सुधी सुख पावै ॥ ८ ॥
पोषत तो दुख दोष करैं अति सोषत सुख उपजावै।
दुर्जनदेहस्वभाव बराबर मूरख प्रीति बढ़ावै॥
राचनजोग स्वरूप न याको विरचनजोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजे यामैं सार यही है॥ ९ ॥
भोग बुरे भवरोग बढ़ावें वैरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति सेवत लागें नीके॥
बज्र अगिनि विषसे विषधरसे ये अधिके दुखदाई।
धर्मरतनके चोर चपल अति दुर्गतिपंथ सहाई॥ १० ॥
मोहउदय यह जीव अज्ञानी भोग भले कर जानैं।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा सो सब कंचन मानैं॥
ज्यों ज्यों भोग सँयोग मनोहर मनवांछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंकै लहर जहरकी आवै॥ ११ ॥
मैं चक्रीपद पाय निरंतर भोगे भोग घनेरे।
तौ भी तनक भये नहिं पूरन भोग मनोरथ मेरे॥
राजसमाज महा अघकारण बैरबढ़ावनहारा।
वेश्यासम लछमी अति चंचल याका कौन पत्यारा॥ १२ ॥
मोहमहारिपु वैरविचार्यो जगजिय संकट डारे।

घरकाराग्रह बनिता बेडी परिजन जन रखवारे ॥
सम्यकदर्शन ज्ञानचरन तप ये जियके हितकारी ।
येही सार असार और सब यह चक्री चितधारी ॥ १३ ॥
छोड़े चौदह रत्न नवोंनिधि अरु छोड़े सँग साथी ।
कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी ॥
इत्यादिक संपति बहुतेरी जीरण तृण सम त्यागी ।
नीति विचार नियोगी सुतकों राज दियो बड़भागी ॥ १४ ॥
होय निशल्य अनेक नृपति सँग भूषण बसन उतारे ।
श्रीगुरु चरनधरी जिनमुद्रा पंच महाव्रत धारे ॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम धनि यह धीरजधारी ।
ऐसी संपति छोड़ बसे बन तिन पद धोक हमारी ॥ १५ ॥
दोहा—परिगहपोट उतार सब, लीनो चारित पंथ ।
निजस्वभावमें थिर भये, बज्रनाभि निरग्रंथ ॥ १६ ॥

इति श्रीवज्रनाभि चक्रवर्तीकी वैराग्यभावना समाप्ता ।

१३० । बारह भावना ।

दौलतरामजी कृत । चाल छन्द १४ मात्रा ।

१ । अनित्यभावना ।

जोवनगृह गोधन नारी । हयगयजन आज्ञा कारी ॥
इंद्रीयभोग छिन थाई । सुरधनु चपला चपलाई ॥ १ ॥

२ । असरन भावना ।

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते ।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावे कोई ॥ २ ॥

३ । संसार भावना ।

चहुंगति दुख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं ।

सबविधि संसार असारा, यामैं सुख नाहिं लगारा ॥ ३ ॥

४। एकत्व भावना।

शुभ अशुभकरमफल जेते, भोगै जिय एकहि ते ते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथके हैं भीरी ॥ ४ ॥

५। अन्यत्व भावना।

जलपय ज्यों जियतन मेला, पै भिन्न भिन्न नहिं भेला।
तौ प्रगट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिल सुत रामा ॥ ५ ॥

६। अशुचित्व भावना।

यह रुधिर राधमल थैली, कीकस बसादितैं मैली।
नवद्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किम यारी ॥ ६ ॥

७। आस्रव भावना।

जो जोगनकी चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकारि घनेरे, बुधवंत तिन्हैं निरवेरे ॥ ७ ॥

८। संवर भावना।

जिन पुण्य पाय नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिनही विधि आवत रोके, संवरलहि सुख अवलोके ॥ ८ ॥

९। निर्जरा भावना।

निजकाल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तपकर जो करम खपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥ ९ ॥

१०। लोक भावना।

किन हू न करचो न धरै को, षटद्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाहि विन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥१०॥

११। बोध दुर्लभ भावना।

अंतिम ग्रीवकलोंकी हद, पायो अनंत विरियां पद।
सम्यकज्ञान न लाध्यो, दुर्लभ निजमें मुनि साध्यो ॥११॥

। १२ । धर्म भावना ।

जो भाव मोहतैं न्यारे, दृग ज्ञानव्रतादिक सारे ।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै ॥ १२ ॥
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूत उचरिये ।
ताको सुनिकै भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥ १३ ॥

इति बारह भावना ।

१३१ । अथ बारह भावना ।

जयचंदजीकृत ।

दोहा—द्रव्यरूपकरि सर्व थिर, परजय थिर है कौन ।
द्रव्यदृष्टि आपा लखो, पर्जय नयकरि गौन ॥ १ ॥

सोरठा ।

जगमैं सरनौ दोय, शुद्धातम अरु पंच गुरु ।
आन कल्पना होय, मोह उदय जियकै वृथा ॥ २ ॥
दोहा—परद्रव्यनतैं प्रीति जो, है संसार अबोध ।
ताको फलगति चारमैं, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध ॥ ३ ॥
परमारथतैं आतमा, एकरूप ही जोय ।
कर्म निमित विकलप घने, तिन नासे शिव होय ॥ ४ ॥
अपने अपने सत्त्वकूं, सर्व वस्तु विलसाय ।
ऐसें चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय ॥ ५ ॥
निर्मल अपनी आतमा, देह अपावन गेह ।
जानि भव्य निजभावको, यासों तजो सनेह ॥ ६ ॥
आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय दृष्टि निहार ।
सब विभाव परिणाममय, आस्रव भाव विडार ॥ ७ ॥
निज स्वरूपमैं लीनता, निश्चय संवर जानि ।

समिति गुप्ति संयम धरम, धरें पापकी हानि ॥ ८ ॥
संवरमय है आतमा, पूर्व कर्म झड़ जाय ।
निज स्वरूपको पायकर, लोक शिखर जब थाय ॥ ९ ॥
दर्श ज्ञानमय चेतना, आतमधर्म बखानि ।
दया क्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जान ॥ १० ॥
लोक स्वरूप विचारिके, आतम रूप निहार ।
परमारथ व्यवहार मुणि, मिथ्या भाव निवारि ॥ ११ ॥
बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं ।
भवमें प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं ॥ १२ ॥

इति बारह भावना ।

१३२॥ अथ सोलहकारण भावना

चौपाई ।

आठदोषमद आठ मलीन, छह अनायतन शठता तीन ।
ये पचीस मल वर्जित होय, दर्श विशुद्धि कहावै सोय ॥ १ ॥
रत्नत्रयधारी मुनिराय, दर्शनज्ञान चरित समुदाय ।
इनकी विनय विषै परवीन, दुतिय भावना सो अमलीन ॥२॥
शीलधारि धारै समचेत, सहस अठारह अंग समेत ।
अतीचार नहिं लागै जहां, तृतिय भावना कहिये तहां ॥३॥
आगम कथित अरथ अवधार, यथाशक्ति निजबुधि अनुसार
करै निरंतर ज्ञान अभ्यास, तुरिय भावना कहिये तास ॥४॥
दोहा—धर्म धर्मके फल विषै, परतैं प्रीति विशेख ।
यही भावना पंचमी, लिखी जिनागम देख ॥ ५ ॥

चौपाई ।

अभय ज्ञान आहार, महादान ये चार प्रकार ।

शक्ति समान सदा निर्वहै, छटी भावना धारक वहै ॥ ६ ॥
अनसन आदि मुक्ति दातार, उत्तमतप बारह परकार।
बल अनुसार करै जो कोय सो सातमी भावना होय ॥ ७ ॥
यतीवर्गको कारन पाय, विघन होत जो करै सहाय।
साधु समाधि कहावै सोय, यही भावना अष्टमि होय ॥ ८ ॥
दश विध साधु जिनागम कहे, पथ पीडित रागादिक गहे।
तिनकी जो सेवा सतकार, यही भावना नौमी सार ॥ ९ ॥
परम पूज्य आतम अरहंत, अतुल अनंत चतुष्टयवंत।
तिनकी थुति नित पूजा भाव, दशमि भावना भव जल नाव ॥
जिनवर कथित अर्थ अवतार, रचना करै अनेक प्रकार।
आचारजकी भक्ति विधान, एकादशमि भावना जान ॥ ११ ॥
विद्यादायक विद्यालीन, गुणगरिष्ट पाठक परवीन।
तिनके चरन सदा चित रहै, बहु श्रुत भक्ति बारमी यहै ॥ १२ ॥
भगवत भाषित अरथ अनूप, गणधर ग्रंथित ग्रंथ स्वरूप।
तहां भक्ति बरतै अमलान, प्रवचनभक्ति तेरमी जान ॥ १३ ॥
षट आवश्यक क्रिया विधान, तिनकी कबहूं करै न हान।
सावधान वरतै थित चित्त, सो चौदहवीं परम पवित्त ॥ १४ ॥
कर जप तप पूजाव्रत भाव, प्रगट करै जिनधर्म प्रभाव।
सोई मारग परभावना, यही पंचदशमी भावना ॥ १५ ॥
चार प्रकार संघसों प्रीति, राखै गाय वत्सकी रीति।
यह सोलहमी सब सुखदान, प्रवचन वातसल्य अविधान ॥
दोहा—शोलिह कारन भावना, परम पुण्यको खेत।
भिन्न भिन्न अरु सोलहों, तीर्थंकर पद देत ॥ १७ ॥

बंध प्रकृति जिनमत विषै, कही एक सो बीस।
सौ सतरह मिथ्यातमैं, बांधत हैं निशदीस॥ १८॥
तीर्थंकर आहार द्विक, तीन प्रकृति ये जान।
इनको बंध मिथ्यातमैं, कह्यो नहीं भगवान॥ १९॥
तातैं तीर्थंकर प्रकृति, तीनों समकित मांहि।
सोलह कारण यों बँधैं, सबको निश्चय जांहिं॥ २०॥

सोरठा।

पूज्यपाद मुनिराय, श्री सरवारथ सिद्धिमैं।
कह्यो कथन इस न्याय, देख लीजिये सुबुधि जन॥ २०॥

इति सोलह कारण भावना।

१३३। बारह भावना।

दोहा छंद।

वँदूं श्री अरहंत पद, बीतराग विज्ञान।
बरणूं बारह भावना, जग जीवन हित जान॥ १॥

विश्नुपद छंद।

कहां गये चक्री जिन जीता, भरतखंड सारा।
कहां गये वह राम रु लछमन, जिन रावन मारा॥
कहां कृष्ण रुक्मिण सतभामा, अरु संपति सगरी।
कहां गये वह रंगमहल अरु, सुवरनकी नगरी॥ २॥
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रनमें।
गये राज तज पांडव बनको, अगिन लगी तनमें॥
मोहनींदसे उठ रे चेतन, तुझे जगावनको।
हो दयाल उपदेश करैं गुरु, बारह भावनको॥ ३॥

२ । अथिर भावना ।

सूरज चांद छिपै निकलै ऋतु, फिर फिर कर आवै ।
प्यारी आयू ऐसी बीते, पता नहीं पावै ॥
पर्वतपतितनदी सरिता जल, बहकर नहिं हटता ।
स्वांस चलत यों घटै काठ ज्यों, आरेसों कटता ॥ ४ ॥
ओसबूंद ज्यों गलै धूपमें, वा अंजुलि पानी ।
छिन छिन यौवन छीन होत है, क्या समझै प्रानी ॥
इंद्रजाल आकाश नगर सम, जगसंपति सारी ।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी ॥५॥

अशरण भावना ।

कालसिंहने मृगचेतनको, घेरा भववनमैं ।
नहीं बचावनहारा कोई, यों समझो मनमें ॥
मंत्र यंत्र सेना धन संपति, राज पाट छूटै ।
वश नहिं चलता काल लुटेरा, काय नगर लूटै ॥ ६ ॥
चक्ररतन हलधरसा भाई, काम नहीं आया ।
एक तीरके लगत कृष्णकी, विनश गई काया ॥
देव धर्म गुरु शरण जगतमें, और नहीं कोई ।
भ्रमसे फिरै भटकता चेतन, युँही उमर खोई ॥ ७ ॥

३ संसार भावना ।

जनममरन अरु जरारोगसे, सदा दुखी रहता ।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव, परिवर्तन सहता ॥
छेदनभेदन नरक पशूगति, बध बंधन सहना ।
राग उदयसे दुख सुरगतिमैं, कहां सुखी रहना ॥ ८ ॥
भोगि पुण्यफल हो इकइंद्री, क्या इसमैं लाली ।

कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली ॥
मानुषजन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पंचमगति सुख मिलै शुभाशुभका मेटो लेखा ॥ ९ ॥

४ एकत्व भावना ॥

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुखदुखका भोगी।
और किसीका क्या इक दिन यह, देह जुदी होगी ॥
कमला चलत न पैंड जाय मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुखकों रोवैं, पिता पुत्र दारा ॥ १० ॥
ज्यों मेलेमें पंथी जन मिलि, नेह फिरैं धरते।
ज्यों तरवरपै रैन बसेरा, पंछी आ करते ॥
कोस कोइ दोकोस कोइ उड फिर थक थक हारै।
जाय अकेला हंस संगमें कोइ न पर मारै ॥ ११ ॥

५ भिन्न भावना।

मोहरूप मृगतृष्णा जगमें मिथ्या जल चमकै।
मृग चेतन नित भ्रममैं उठ उठ दौडैं थक थककै ॥
जल नहिं पावै प्राण गमावै, भटक भटक मरता।
बस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता ॥ १२ ॥
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड तू ज्ञानी।
मिले अनादि यतनतें बिछुडै, ज्यों पय अरु पानी ॥
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जोलों पौरुष थकै न तौलों, उद्यमसों चरना ॥ १३ ॥

६। अशुचिभावना।

तू नित पोखै यह सूखै ज्यों, धोवै त्यों मैली।

निश दिन करै उपाय देहका, रोगदशा फैली ॥
मातपितारज वीरज मिलकर, बनी देह तेरी ।
मांस हाड नश लहू राधकी, प्रघट व्याधि घेरी ॥ १४ ॥
काना पौंढा पडा हाथ यह चूसै तौ रोवै ।
फलै अनंत जु धर्म ध्यानकी, भूमिविषै बोवै ॥
केसर चंदन पुष्प सुगंधित, वस्तु देख सारी ।
देह परसते हुये अपावन, निशदिन मलजारी ॥ १५ ॥

७ आस्रवभावना ।

ज्यों सरजल आवन मोरी त्यों, आस्रव, कर्मनको ।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब पुदगल भरमनको ॥
भावित आसूवभाव शुभाशुभ, निशदिन चेतनको ।
पाप पुण्यके दोनों करता, कारण बन्धनको ॥ १६ ॥
पन मिथ्यात योग पन्द्रह द्वादश अविरत जानो ।
पंचरु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो ॥
मोहभावकी ममता टारै, पर परणत खोते ।
करै मोखका यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते ॥ १७ ॥

८। संवरभावना ।

ज्यों मोरीमें डाट लगावै, तब जल रुक जाता ।
त्यों आस्रवको रोकै संवर, क्यों नहिं मन लाता ॥
पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर, वचन काय मनको ।
दशविधधर्म परीषहबाइस, बारह भावनको ॥ १८ ॥
यह सब भाव सतावन मिलकर, आसूवको खोते ।
सुपन दशासे जागो चेतन, कहां पडे सोते ॥
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध भावनसंवर पावै ।

डांट लगत यह नाव पड़ी मझधार पार जावे ॥ १९ ॥

९। निर्जराभावना।

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़े भारी।
संवर रोकै, कर्म निर्जरा, है सोखनहारी ॥
उदयभोग सविपाकसमय पकजाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावै, पाल विषै माली ॥ २० ॥
पहली सबके होय नहीं कुछ, सरै काम तेरा।
दूजी करै जु उद्यम करके, मिटै जगत फेरा ॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी।
इस दुलहनकी यही सहेली, जानै सब ज्ञानी ॥ २१ ॥

१०। लोक भावना।

लोक अलोक अकाश माहिं थिर, निराधार जानो।
पुरुष रूप कर कटी भये षट, द्रव्यनसों मानों ॥
इसका कोइ न करता हरता, अमिट अनादी है।
जीवरू पुद्गल नाचै यामैं, कर्म उपाधी है ॥ २२ ॥
पापपुन्यसों जीव जगतमें, नित सुख दुख भरता।
अपनी करनी आप भरै शिर, औरनके धरता ॥
मोहकर्मको नाश मेटकर, सब जगकी आसा।
निज पदमें थिर होय लोकके, शीश करो बासा ॥२३॥

११। बोधिदुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोदसे थावर, अरु त्रस गति पानी।
नरकायाको सुरपति तरसै, सो दुर्लभ प्रानी ॥
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावककुल पाना।
दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाना ॥ २४ ॥

दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षाका धरना।
दुर्लभ मुनिवरको व्रत पालन, शुद्धभाव करना॥
दुर्लभसे दुर्लभ हैं चेतन, बोधि ज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भवमें आवै॥ २५॥

१२। धर्मभावना

षट दरशन अरु बौद्ध रु नास्तिकने जगको लूटा।
मूसा ईसा और मुहम्मदका मजहब झूठा॥
हो सुछंद सब पाप करै सिर, करताके लावै।
कोई छिनक कोई करतासे, जगमैं भटकावै॥ २६॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिनकी वानी।
सप्त तत्त्वका वर्णन जामैं, सबको सुखदानी॥
इनका चितवन बार बार कर, श्रद्धा उर धरना।
मंगत इसी यतनतैं इक दिन, भवसागर तरना॥२७॥

इति बारहभावना मंगतरायजी सुलतानपुर निवासी कृत समाप्ता॥

१३४। भावना द्वात्रिंशतिका।

सोरठा।

दुखनाशक जिनराय, बसो हृदयमें मम सदा।
नाशो विषय कषाय, इस संसारी जीवके॥

शिखरनी छंद।

सुमैत्री जीवोंमें सुगुणि गणको देख उमगूं।
दयाको ही धारूं दुखित जनको देख करके॥
उपेक्षा हो मेरे मुदित मनमें क्रूर जनसे।
सदा स्वामिन्! ऐसी परिणति रहै बोध बलसे॥१॥

इन्द्रवज्रा छंद ।

मेरा प्रभो ! आत्म अनंत शक्ति-धारी सदा कर्मकलंकमुक्त । हो जाउँ मैं भिन्न, शरीरसे भी, ऐसी प्रभो ! हो मम शक्ति व्यक्त ॥ २ ॥ दुःखों सुखों शत्रु व वंधुओंमें मेले अकेले घरमें बनोंमें । मेरे सदा नाथ समानता हो विनाश निःशेष ममत्व-का हो ॥ ३ ॥ पदाब्ज तेरे मन माहिं मेरे गये उकेरे जड़ही गये वा । भानू सरीखे तम नाशकारी प्रभो ! सदा मैं उनका पुजारी ॥ ४ ॥ छोटे-बड़े जीव घने विदारे प्रमादसे हैं चलते हुए ने । वा दुःख दीने यदि जंतुओंको, हो देव ! मेरे वह पाप मिथ्या ॥ ५ ॥ कुमार्गगामी पथमुक्ति भूला कषाय इंद्री वश बुद्धिनाशी । जो खो लिया है स्वचरित्र मन हो देव मेरा वह पाप मिथ्या ॥६॥ मनो वचः काय कषायसे जो हैं पाप कीने भवदुःखमूल । स्वकीय निंदा गर्हा दिखाके करूं उन्हें नाश समस्तको ही ॥ ७ ॥ अति व्यती वा अतिचार मैंने तथा अनाचार चरित्रमें जो । किये कुबुद्धी व प्रमादसे हैं संताप भारी उनका मुझे है ॥ ८ ॥ मनो वचःकाय पवित्रता-का उलंघ होवे कुछ अंशमें तो । अतिव्यती व अतिचार होंगे, वही अनाचार समग्र हो तो ॥ ९ ॥ जो अर्थ मात्रा पद वाक्य छोड़े, प्रमादसे की स्तुति देवि तेरी । वे पाप मेरे च्युत हों सबेरा, सर्वज्ञ होवे अरु आत्म मेरा ॥ १० ॥ हे देवि चिंतामणि नाम तेरा, बना सदा हूं चरणाब्ज चेरा । श्रद्धा तथा ज्ञान चरित्र वृद्धी, दो सौख्यसिद्धी व समाधिको भी ॥ ११ ॥ किया गया याद मुनीन्द्रसे जो, पूजा गया देव

नरेंद्रसे जो। गाया गया वेद पुराणमैं जो, सो देव मेरे उरमैं विराजो ॥ १२॥ जो दर्शनज्ञान सुख स्वभावी, समस्त संसार विकारनाशी। जो ध्यानसे गम्य परात्म संज्ञ सो देव मेरे उरमैं विराजो ॥ १३ ॥ विध्वंस-कर्ता भव-दुःखका जो, आलोक-कर्ता जगमध्यका जो। दृष्टव्य जो योगि समाधिसे है, सो देव मेरे उरमैं विराजो ॥ १४ ॥ जो मोक्षका मार्ग बता रहा है, संसारके दुःख सुदूर जासे। त्रैलोकदृष्टा तनु-ताप-हीन, सो देव मेरे उरमैं विराजो ॥ १५ ॥ दुःखी किये हैं जग-जीव सारे, रागादि ऐसे जिसके नहीं हैं। ज्ञानी अतींद्री अनपाय है जो, सो देव मेरे उरमैं विराजो ॥ १६ ॥ कल्याणकारी जिसका स्वरूप, सुशुद्ध वा बुद्ध अबद्ध है जो। ध्याया हुआ कर्म-कलंक खोता सो देव मेरे उरमैं विराजो ॥ १७ ॥ छूते नहीं हैं जिसको कलंक जैसे सदा ध्वांत न सूर्यको है। जो ध्रौव्य निर्दोष अनेक एक, सो देव देवें मुझको सुशांति ॥१८॥ जग-प्रकाशी रवि तेजको भी जो है दबाता उस ज्ञान युक्त। तथा सदा हैं स्थिर आतममैं जो सो देव देवे मुझको सुशांति ॥ १९ ॥ संसार देता जिसमैं दिखाई निभ्रांत भाई ! उस ज्ञानयुक्त। शुद्ध स्वरूपी शिव शांत नित्य सो देव देवे मुझको सुशांति ॥ २० ॥ ज्वाला जलाती तरु-जाल जैसे तैसे विनाशे जिन मान मूर्छा। विषाद निद्रा भय शोक चिंता सो देव देवे मुझको सुशांति ॥ २१ ॥ न भूमि चौकी तृण वा शिला भी आते कभी काम समाधिमें हैं। विशुद्ध आत्मा जित-राग-द्वेष माना गया किंतु सुधी जनोंसे ॥ २२ ॥ है तो नहीं आसन

ध्यान कारी ना लोक पूजा नहिं संघ मेला । अध्यात्म संलीन सुभव्य होओ छोड़ो सदा बाह्य कुवासनाको ॥ २३ ॥ मेरा नहीं बाह्य पदार्थ कोई न मैं हुआ हूं उनका कभी भी । ऐसा विचारो मनमैं सदा ही हो बाह्यको छोड सुमुक्तिपात्र ॥ २४ ॥ आत्मा सदा देख स्व आत्ममैं रे ! हो दर्शन-ज्ञान मयी विशुद्ध । एकाग्रचेता मुनि क्या कहीं भी पाता नहीं है सुसमाधिको रे ! ॥ २५ ॥ आत्मा सदा नित्य व एक मेरा ज्ञान-स्वभावी अकलंक भी है । पदार्थ सारे जगके विनाशी उत्पन्न होते निज हेतुसे हैं ॥ २६ ॥ संबंध रक्खे न शरीरसे जो पुत्रादि होने उसके लगे क्यों ? । जो कायसे खाल उतार डाले तो रोमकूवे किसमैं रहैंगे ? ॥ २७ ॥ प्राणी सदा दुःख अनेक पाता संयोगसे बाह्य कुवस्तुओंके । त्रियोगसे योग सु त्याग देवो जो मुक्ति संयोग सुशीघ्र चाहो ॥ २८ ॥ दो छोड संकल्प-विकल्प जाल संसारमैं हैं नित जो रुलाते । विभिन्न देखो निज आत्मको रे ! सुलीन होओ परमात्ममैं रे ॥ २९ ॥ जो कर्म तूने पहिले किये हैं देते तुझे हैं फल आज वे ही । देने लगे जो फल अन्य कोई स्वयं किये कर्म हि व्यर्थ होंगे ॥ ३० ॥ अतः विचारो मनमाहिं ऐसें स्वकर्मको छोड न अन्य कोई । देता किसीको कुछ भी नहीं है निजात्मका ध्यान न क्यों करूं मैं ॥ ३१ ॥

गया पूजा भाई अमितगतिसे देव नित जो ।
विवेकी निर्दोषी सु अतिशयसे है सहित जो ॥
करैंगे जो प्राणी मन-कमलमैं ध्यान उसका ।

सदाको पावैंगे चरम-पद जैसे विभवको ॥ ३२ ॥
"अमर" छंद दो-तीससे, परमातमका ध्यान ।
एकचित्त हो जो करै, पावै पद निर्वान ॥ ३३ ॥

९। नवमा अध्याय।

परमार्थजकड़ीसंग्रह।

१३५। जकड़ी रूपचंदकृत।

चेतन अचरज भारी, यह मेरे जिय आवै।
अमृतवचन हितकारी, सदगुरु तुमहिं पढ़ावै ॥
सदगुरु तुमहिं पढ़ावे चित दै, अरु तुमहू हौ ज्ञानी।
तबहू तुमहिं न क्यों हू आवै, चेतनतत्त्वकहानी ॥
विषयनकी चतुराई कहिये, को सरि[1] करै तुम्हारी।
विन गुरु फुरत कुविद्या कैसैं, चेतन अचरज भारी ॥ १ ॥
चेतन चतुर सयाने, काहे तुम भ्रम भूले।
विषय जु देखि रवाने[2], कहा जानि जिय फूले ॥
कहा जानि जिय फूले चेतन, तुम तौ विधिना बाँचे[3]।
सुद्ध सुभाव सहज सुख छोरि जु, इंद्रियसुखरस राचे ॥
भोजन सेज वेष कर जुँवती[4], गीतादिक जु रवाने।
भये सुवा भव-सैंवर द्रुमके[5], चेतन चतुर सयाने ॥ २ ॥
मोहमहामदमातैं, बादि[6] अनादि गँवायौ।
अपने धरमनि घातैं, विषयनिसौं मन लायौ ॥

---

१ बराबरी। २ रमणीय-सुन्दर। ३ तुम तो विधातासे बाँचे अर्थात् ठगाये गये ४ युवती-जवानस्त्री। ५ संसाररूपी सेमर वृक्षके तोते। ६ व्यर्थ ही।

विषयनिहीसौं मन लायौ तुम, बाहिर सुंदर दीठे।
विषफल परिहरि शेष कटुक हैं, सेवत ही मुख मीठे॥
कामभोगभ्रमभाव भुलाने, रुचैं न सदगुरुबातैं।
हित अनहित कछु समझत नाहीं, मोहमहामदमातैं॥ ३॥
इंद्रिनिकौ सुख सेए, सुखलव दुख अधिकायौ।
सविष सुभोजन जेएं[1], कब कौनैं सुख पायौ॥
कब कौनैं सुख पायौ चेतन, ए सुख उहकै स्वादे।
फरस दन्ति[2], रस मीन, गंध अलि[3], रूप सलँभ[4], मृग नादे[5]॥
एक एक इंद्रिनिकौ यह दुख, पाँचौं तुमहिं बँधे ए।
सावधान किन होहु बंध हो, इंद्रिनिको सुख सेए॥ ४॥
इह संसारमँझारे, सुरनरवरपद पाए।
स्वकृतकरमअनुसारे, सुख सेए मन भाए॥
सुख सेए मनभाए तुम चिर, इंद्रिनि रचि सुख माने।
तब हू त्रिपति भई नहि कब हू, अरु तिसना अधिकाने।
अब रतनत्रयपथ धरि शिवपुर, जाहु न होहु सुखारे।
रूपचन्द कत[6] दुख देखत हो, इह संसारमँझारे॥ ५॥

१३६। जकडी रूपचंदकृत।

राग गौड़ी।

चेतन चिर भूल्यो भम्यौ, देख्यौ चित न विचारि।
करम कुसंगति बहि पर्यौ, यह भव-गहन मझारि॥
यह भवगहनमझारि मूरख, दुखदवानल नित दह्यौ।
मिथ्यात पितसौं दिष्टि छाई, मुकतिपंथ न तैं लह्यौ॥

---

१ जीमनेसे–खानेसे। २ हाथी। ३ भौंरा। ४ पतंगा। ५ सुन्दरशब्द ६। क्यों।

तू पंच-इंद्री-सुखत्रिषा वसि, विषय खार सलिल छम्यौ।
निज सुख सुधारसविमुख चहुंगति, चेतन चिर भूल्यो भम्यौ ॥
चहुंगति चिर भ्रमतहिं गयौ, रहियौ कहुं न थिराय।
कर्मप्रकृतिपरच्यो फिर्‌यो, देख्यौ लोक शिराय ॥
देखियौ लोकशिराय सबतैं, ऊंच नीच परजै धरै।
करम अरु नोकरमरूपी, सकलपुदगल आहरै ॥
परिनयौ परपरनति निरंतर, काज कछु भूलि न भयौ।
परमरत्नत्रय लबधि विनु, चहुं गति चिर भ्रमतहिं गयौ ॥२॥
गाफिल ह्वैके कहा रह्यौ, अपनी सुरत बिसारि।
विषय कषायनिरत भयौ, दीनैं योग पसारि ॥
दीनैं नियोग पसारि तीनौं, सुभासुभरसपरिनयौं।
आश्रये संतत करम बहु बिधि, तोहि तिनि आवरि लयौ ॥
जिय कछू सुधिबुधि तोहि नाहीं, मूढमोहग्रहनि ग्रह्यौ।
गुन सील सरवस खोय अपनो, गाफिल ह्वैकै कहा रह्यौ ॥३॥
चेति चतुरमति चेतना, परपरनतिहिं निवारि।
दर्शनज्ञानचरित्रमय, अपनी वस्तु सँभारि ॥
अपनी वस्तु सभाँरि विसरी, कहा इत उत भटकही।
बहिरमुख भूल्यो भया कत, छोडि कन[2] तुष झटकही ॥
निजवस्तु अंतरगत विराजित, चिदानंदन-केतना।
स्वानुभवबुद्धि प्रजुंजि देखहि, चेति चतुरमति चेतना ॥ ४ ॥
इह संसारकुवासतैं, दुख देखे चिरकाल।
अब तू यातैं विरचही, छोडि सकल भ्रमजाल ॥

१ ढक लिया। २ चावल। ३ छिलका। ४ चेतन जिसकी केतना अर्थात् धुजा है।

छोडि सकल भ्रमजाल चेतन, रतनत्रय आराध ही ॥
आपुने बलहिं सँभार अतिवल, करम-वैरिनि साध ही ॥
समरसीभाव सुभावपरनति, सदा रहहि उदासतैं।
'रूपचंद' सहजहीं छूटहिं, इह संसारकुवासतैं ॥ ५ ॥

१३७। जकडी दौलतरामकृत।

अब मन मेरा वे, सीखवचन सुन मेरा।
भजि जिनवर पद वे, ज्यौं विनसै दुख तेरा ॥
विनसै दुख तेरा भववनकेरा[1], मनवचतन जिनचरन भजौ।
पंचकरन[2]वश राख सुज्ञानी, मिथ्यामतमग दौर तजौ ॥
मिथ्यामतमग पगि अनादितैं, तैं चहुंगति कीन्हा फेरा।
अबहू चेत अचेत होय मत, सीख वचन सुन मन मेरा ॥ १ ॥
इस भववनमें वे, तैं साता नहिं पाई।
वसुविधिवश[3] ह्वै वे, तैं निजसुधि विसराई ॥
तैं निजसुधि विसराई भाई, तातैं विमल न बोध लहा।
परपरनतिमें मगन भयो तू, जन्म-जरा-मृत-दाह-दहा ॥
जिनमत सारसरोवरकों अव,—गाहि लागि निजचिंतनमें।
तो दुखदाह नशै सब नातर, फेर फंसै इस भववनमें ॥ २ ॥
इस तनमें तू वे, क्या गुन देख लुभाया।
महा अपावन वे, सतगुरु याहि वताया ॥
सतगुरु याहि अपावन गाया, मलमूत्रादिकका गेहा।
कृमिकुल—कलित लखत घिन आवै, यासौं क्या कीजै नेहा ॥

१ संसाररूपी वनका। २ पांच इंद्रियां। ३ आठ कर्मोंके वश होकर।

यह तन पाय लगाय आपनी, परनति शिवमगसाधनमें ।
तो दुखदंद नशै सब तेरा, यही सार है इस तनमें ॥ ३ ॥
भोग भले न सही, रोग शोकके दानी ।
शुभगति रोकन वे, दुर्गति पंथ अगवानी ॥
दुर्गति पथ अगवानी हैं जे, जिनकी लगन लगी इनसौं ।
तिन नानाविध विपति सही है, विमुख भयौ निजसुख तिनसौं ॥
कुंजर[1] झख[2] अलि[3] शलभ[4] हिरन इन, एक अक्षवश[5] मृत्यु लही ।
यातैं देख समझ मनमाहीं, भवमें भोग भले न सही ॥ ४ ॥
काज सरै तब वे, जब निजपद आराधै ।
नशै भवावलि[6] वे, निराबाधपद लाधै ॥
निराबाधपद लाधै तब तोहि, केवलदर्शनज्ञान जहां ।
सुख अनंत अतिइन्द्रियमंडित, वीरज अचल अनंत तहां ॥
ऐसा पद चाहै तो भज निज[7], बार बार अबको उचरै ।
'दौल' मुख्य उपचार रत्नत्रय, जो सेवै तो काज सरै ॥ ५ ॥

१३८ । जकड़ी दौलतरामकृत ।

वृषभादि जिनेश्वर ध्याऊं, शारद अंबा चित लाऊं ।
द्वैविधि-परिग्रह-परिहारी, गुरु नमहुं स्वपरहितकारी ॥
हितकारि तारक देवश्रुत गुरु, परख निज उर लाइये ।
दुखदायकुपथविहाय शिवसुख,-दाय जिनवृष ध्याइये ॥
चिरतैं कुमगपगि मोहठगकरि, ठग्यौ भव[8]-कानन पर्यौ ।
[9]व्यांलीसद्विकलख जौनिमें, जर[10]-मरन-जामन-देव जर्यौ ॥ १ ॥

---

१ हाथी । २ मछली । ३ भौंरा—भ्रमर । ४ पतंग । ५ एक एक इन्द्रियके वशसे । ६ भवोंका समूह । ७ "जिन" भी पाठ है । ८ संसार रूपी वन । ९ चौरासीलाख योनि । १० वृद्धावस्था, मृत्यु और जन्मरूपी अग्निमें जला ।

जब मोहरिपु दीन्हीं घुमरिया, तसुवश निगोदमें परिया ।
तहां स्वास एकके माहीं, अष्टादश मरन लहाहीं ॥
लहि मरन अन्तर्मुहूर्तमें, छ्यासठ सहस शत तीन ही ।
षटतीस काल अनंत यों दुख, सहे उपमा ही नहीं ॥
कबहूं लही वर आयु छिति[1]-जल[2]-पवन-पावक-तरुतणी ।
तसु भेद किंचित कहूं सो सुन, कह्यौ जो गौतमगणी ॥ २ ॥
पृथिवी द्वयभेद बखाना, मृदु माटी कठिन पखाना ।
मृदु द्वादशसहस बरसकी, पाहन बाईस सहसकी ॥
पुनि सहस सात कही उदक त्रय, सहसवर्ष समीरकी ।
दिन तीन पावक दश सहस तरु, प्रभृति नाश सुपीरकी ॥
विनघात सूक्ष्म देहधारी, घातजुत गुरुतन लह्यौ ।
तहँ खनन तापन जलन व्यंजन, छेद भेदन दुख सह्यौ ॥
शंखादि दुइंद्री प्रानी, थिति द्वादशवर्ष बखानी ।
यूंकादि[3] तिइंद्री हैं जे, वासर उनचास जियैं ते ॥
जीवैं छमास अलीप्रमुख[4], ब्यालीस सहस उरगतनी ।
खगकी बहत्तरसहस नवपूर्वांग सरिसृपकी[5] भनी ॥
नरमत्स्यपूरवकोटकी थिति, करम भूमि वखानियें ।
जलचरविकलविन भोगभू[6]-नर,-पशु त्रिपल्य प्रमानिये ॥ ४ ॥
अघवश करि नरक बसेरा, भुगतैं तहँ कष्ट घनेरा ।
छेदैं तिलतिल तन सारा, छेपैं द्रहपूतिमँझारा[7] ॥
-मंझार वज्रानिल पचावैं, धरहिं शूली ऊपरैं ।

---

१ पृथ्वी । २ पानी । ३ जूं आदि । ४ भ्रमर आदि । ५ सर्प विशेष । ६ भोगभू-या मनुष्य और पशु । ७ दुर्गंधिके भरे तालाब ।

सींचैं जु खारे वारिसौं दुठ, कहैं व्रण नीके करैं ॥
वैतरणिसरिता समल जल अति, दुखद तरु सेंवलतने ।
अति भीम बन असिपत्र समदलैं, लगत दुख देवैं घने ॥५॥

तिस भूमैं हिम गरमाई, सुरगिरि सम असैं गल जाई ।
तामैं थिति सिंधुतनी है, यों दुखद नरक अवनी है ॥

अवनी तहांकी तैं निकसि, कबहूं जनम पायौ नरौ ।
सर्वांग सकुचित अति अपावन, जठर जननीके परौ ॥
तहँ अधोमुख जननी रसांश,-थकी जियौ नवमास लौं ।
ता पीरमें कोउ सीर नाहीं, सहै आप निकास लौं ॥ ६ ॥

जनमत जो संकट पायौ, रसना तैं जात न गायौ ।
लहि बालपने दुख भारी, तरुनापौ लयौ दुखकारी ॥

दुखकारि इष्ट वियोग अशुभ,-सँयोग सोग सरोगता ।
परसेव ग्रीषम सीत पावस, सहै दुख अतिभोगता ॥
काहू कुतियँ काहू कुबांधव, कहुं सुता व्यभिचारिणी ।
किसहू विसर्न-रत पुत्र दुष्ट, कलत्र कोऊ पररिणी ॥ ७ ॥

वृद्धापनके दुख जेते, लखिये सब नयननते तैं ।
मुखलाल बहै तन हालै, विन शक्ति न वसन सँभालै ॥

न संभाल जाके देहकी तो, कहो वृषकी का कथा ।
तबही अचानक आन जम गह, मनुजजन्म गयौ वृथा ॥
काहू जनम शुभ ठान किंचित, लह्यो पद चहुंदेवको ।

---

१ फोड़े । २ तलवारकी धार । ३ पत्ते । ४ लोहा । ५ पृथ्वी । ६ दूसरोंकी सेवा नौकरी । ७ दुष्ट स्त्री । ८ व्यसनी । ९ स्त्री । १० धर्मकी । ११ चारप्रकारके देव ।

अभियोग[1] किल्विष[2] नाम पायौ, सह्यौ दुख परसेवकौ ॥ ८ ॥
तहँ देख महत सुररिद्धी, झूरयो विषयनकरि गृद्धी।
कबहूं परिवार नसानौं, शोकाकुल ह्वै विललानौं ॥
बिललाय अति जब मरन निकट्यौ, सह्यौ संकट मानसी।
सुरविभव दुखद लगी तबै जब, लखी माल[3] मलीनसी[4] ॥
तबही जु सुर उपदेशहित समुझाइयौ समुझ्यौ न त्यौं।
मिथ्यात्वजुत च्युत कुगति पाई, लहै फिर सो स्वपद क्यौं ॥
यों चिरभव अटवी गाही, किंचित साता न लहाही।
जिनकथित धरम नहिं जान्यो, परमाहिं अपनपो मान्यो ॥
मान्यो न सम्यक त्रयातम, आतम अनातममैं फँस्यो।
मिथ्या-चरन-दृग्ज्ञान रंज्यौ, जाय नवग्रीवक बस्यो ॥
पै लह्यो नहिं जिनकथित शिवमग, वृथा भ्रम भूल्यो जिया।
चिदभावके दरसावविन सब, गये अहेले[5] तप किया ॥ १० ॥
अब अदभुत पुण्य उपायौ, कुल जात विमल तू पायौ।
यातैं सुन सीख सयाने, विषयनसौं रति मत ठाने ॥
ठाने कहा रति विषयमैं ये, विषम विषधर[6]सम लखौ।
यह देह मरत अनंत इनकौं, त्यागि आतमरस चखौ ॥
या रसरसिकजन बसे शिव अब, बसैं पुनि बसि हैं सही।
'दौलत' स्वरचि परविरचि सतगुरु,-सीख नित उर धर यही ॥

१३९। जकड़ी भूधरकृत।

अब मन मेरे बे, सुन सुन सीख सयानी।
जिनवर चरना बे, कर कर प्रीति सुज्ञानी ॥

१–२–देवोंमें अभियोग और किल्विष एक प्रकारके नीचे सेवकोंके समान देव होते। ३ माला। ४ मुरझानी हुई। ५ व्यर्थ। ६—सर्पके समान।

कर प्रीति सुज्ञानी शिवसुखदानी, धन जीतब है पंचदिना।
कोटि वरष जीवौ किस लेखै, जिनचरणांबुजभक्ति विना॥
नर परजाय पाय अति उत्तम, गृहवसि यह लाहा लेरे।
समझ समझ बोलैं गुरुज्ञानी, सीख सयानी मन मेरे॥ १॥

तू मति तरसै बे, सम्पति देख पराई।
बोये लुनि ले बे, जो निज पूर्वकमाई॥

पूर्वकमाई संपति पाई, देखि देखि मति झूर मरै।
बोय बँबूल शूल-तरु भोंदू, आमनकी क्या आस करै॥
अब कछु समझ बूझ नर तासौं, ज्यौं फिर परभव सुख दरसै।
कर निज ध्यान दान तप संजम, देखि विभवपर मत तरसै॥

जो जगदीसै बे, सुंदर अर सुखदाई।
सो सब फलिया बे, धरमकलपद्रुम भाई॥

सो सब धर्म कल्पद्रुमके फल, रथ पायक बहु रिद्धि सही।
तेज तुरंग तुंग गज नौ निधि, चौदह रतन छखंड मही॥
रति उनहार रूपकी सीमा, सहस छ्यानवैं नारि वरै।
सो सब जान धर्मफल भाई, जो जग सुंदर दृष्टि परै॥ ३॥

लगै असुंदर बे, कंटकवान घनेरे।
ते रस फलिया बे, पापकनकतरुकेरे॥

ते सब पापकनक-तरुके फल, रोग सोग दुख नित्य नये।
कुथित शरीर चीर नहिं तापर, घरघर फिरत फकीर भये॥
भूख प्यास पीडै कन मांगैं, होत अनादर पगपगमें।
ये परतच्छ पापसंचितफल, लगैं असुंदर जे जगमें॥ ४॥

इस भववनमें बे, ये दोऊ तरु जाने।

जो मन माने बे, सोई सींच सयाने ॥
सींच सयाने जो मन माने, बेर बेर अब कौन कहै ।
तू करतार तुही फल भोगी, अपने सुख दुख आप लहै ॥
धन्य धन्य जिनमारग सुंदर, सेवनजोग तिहूँपनमैं ।
जासौं समुझि परै सब 'भूधर', सदा शरण इस भववनमैं ॥५

१४० । जकड़ी रामकृष्णाकृत ।

अरहंतचरन चित लाऊं । पुन सिद्ध शिवंकर ध्याऊं ॥
बंदौं जिनमुद्राधारी । निर्ग्रंथ यती अविकारी ॥
अविकार करुणावंत बंदौं, सकललोकशिरोमणी ।
सर्वज्ञभाषित धर्म प्रणमूं, देय सुख संपति घनी ॥
ये परममंगल चार जगमें, चारु लोकोत्तम सही ।
भवभ्रमत इस असहाय जियको, और रक्षक कोउ नहीं ॥१॥
मिथ्यात्व महारिपु दंड्यो । चिरकाल चतुर्गति हंड्यो ॥
उपयोग-नयन-गुन खोयौ । भरि नींद निगोदे सोयौ ॥
सोयौ अनादि निगोदमैं जिय, निकर फिर थावर भयौ ।
भू तेज तोय समीर तरुवर, थूलसूच्छमतन लयौ ॥
कृमि कुंथु अलि सैनी असैनी, व्योम जल थल संचर्यौ ।
पशुयोनि बासठलाख इसविधि, भुगति मर मर अवतर्यो ॥
अति पाप उदय जब आयौ । महानिंद्य नरकपद पायौ ।
थिति सागरोंबंध जहां है । नानाविध कष्ट तहां है ॥
है त्रास अति आताप वेदन, शीत बहुयुत है मही ।
जहाँ मार मार सदैव सुनिये, एक क्षण साता नहीं ॥
मारक परस्पर युद्ध ठानैं, असुरगण क्रीडा करैं ।

इसविधि भयानक नरकथानक, सहैं जी परवश परैं ॥ ३ ॥
मानुषगतिके दुख भूल्यो । बसि उदर अधोमुख झूल्यो ॥
जन्मत जो संकट सेयो । अविवेकउदय नहिं बेयो ॥
बेयो न कछु लघुबालवयमें, वंशतरुकोंपल लगी ।
दलरूप यौवन वयस आयौ, काम-दौं तब उर जगी ॥
जब तन बुढापो घट्यो पौरुष, पान पकि पीरो भयो ।
झडि पर्यौ काल बयार बाजत, वादि नरभव यौं गयो ॥४॥
अमरापुरके सुख कीने । मनबांछित भोग नवीने ॥
उरमाल जबै मुरझानी । विलप्यो आसन-मृतु जानी ॥
मृतु जान हाहाकार कीनौं, शरन अब काकी गहौं ।
यह स्वर्गसंपति छोड अब मैं, गर्भवेदन क्यौं सहौं ॥
तब देव मिलि समझाइयौ, पर कछु विवेक न उर बस्यो ।
सुरलोकगिरिसों गिरि अज्ञानी, कुमति-कादौं फिर फँस्यो ।५।
इह विध इस मोही जीनें । परिवर्तन पूरे कीनें ॥
तिनकी बहु कष्टकहानी । सो जानत केवलज्ञानी ॥
ज्ञानी विना दुख कौन जानै, जगत वनमें जो लह्यो ।
जरजन्ममरणस्वरूप तीछन, त्रिविध दावानल दह्यो ॥
जिनमतसरोवरशीतपर अब, बैठ तपन बुझाय हो ।
जिय मोक्षपुरकी बाट बूझौ, अब न देर लगाय हो ॥ ६ ॥
यह नरभव पाय सुज्ञानी । कर कर निजकारज प्रानी ॥
तिर्यंचयोनि जब पावे । तब कौन तुझे समुझावे ॥
समुझाय गुरु उपदेश दीनो, जो न तेरे उर रहै ।
तो जान जीव अभाग्य अपनो, दोष काहूको न है ॥

सूरज प्रकाशै तिमिरनाशै, सकल जगको तम हरै।
गिरिगुफागर्भ उदोत होत न, ताहि भानु कहा करै ॥ ७ ॥
जगमाहिं विषयवन फूल्यो। मनमधुकर तिहिंविच भूल्यो ॥
रसलीन तहां लपटान्यो। रस लेति न रंच अघान्यो ॥
न अघाय क्यों ही रमै निशिदिन, एक छन भी ना चुकै।
नहिं रहै बरज्यो बरज देख्यो, बार बार तहां झुकै ॥
जिनमतसरोज सिधांतसुंदर,-मध्य याहि लगाय हो।
अब 'रामकृष्ण' इलाज याकौ, किये ही सुखपाय हो ॥ ८ ॥

१४१। जकड़ी जिनदासकृत।

राग आसासिंधु।

थिर चिर देवा गणहरसेवा, कर गुनमाला ज्ञान।
थिर चिर जीवा भरमनि भमता, करि करुना परिनाम ॥
करि करुनापरिनाम सुजंता, गुणकरि सबै समाना।
कर्मतनी थिति घटि बधि दीसै, निश्चय केवलज्ञाना ॥
यौं जाने विनु जतन करीजे, परिहरिये परपीडा।
मूर्ख होय जिन आप बँधायो, ज्यौं कुसियाला[1] कीड़ा ॥ १ ॥
ज्यौं कुसियाला अपनी लालों[2], फंदति आपौआप।
त्यौं तू आला विकलपमाला, बंधति पुन्नरु पाप ॥
पुन्नरु पाप दुवै[3] दिढ़बंधन, लोकशिखर किम जावै।
थिर चर होय चहूंगति भीतर, रह्यो चिदानँद छावै ॥
चितमें चेत चमकत नाहीं, साधि सरूपी कूड़ा।
इंद्री पंचतणे वसि पड़करि, विषय विनोदां बूड़ा ॥ २ ॥

१ कोशका अर्थात् एक प्रकारके रेशमका कीड़ा। २ लारसे। ३ दोनों।

विषय विनोदां आप विरोध्या, जात निगोद अपार।
तहाँ काल अनंता दुःख सहंता, एकलड़ा[1] निरधार॥
एकलड़ौ निरधार निरंतर, जामन मरन करंतौ।
कर्म विपाकतनैं वसि पड़ियौ, फिर फिर दुःख सहंतौ॥
बरजै कौन स्वयंकृत कर्महिं, योंहि अनादि सुभावै।
बांछित कहौ सुक्ख किमि पावै, दंसणतणौ अभावै॥ ३॥
दंसण गुण विन जात जिके[2] दिन, सो दिन धिक धिक जानि।
धन्य सोहि सोही परभिन्नो, भ्रांति न मनमहिं आनि॥
भ्रांति सुमिथ्यादृष्टीलच्छन, संशयरहित सुदिष्टी।
यौं जाने विन गह्यौ गहीजे, पद पावै परमिष्टी॥
ए दुइ भेद जिनागम कहिया, ते मनमैं अवधारै।
सुद्ध सुसम्यकदरसन कारन, मिथ्यादृष्टि निवारै॥ ४॥
मिथ्याती मुनिवर अवर सुतरुवर, सहैं कलेश अनेक।
तप तप्यौ न तपियौ, खप्यौ न खपियौ, दोऊं रहितविवेक॥
दोऊं रहितविवेक जीव इक, कर्म बँधे इक छोड़ै।
आस्रव बंध उदय नहिं समझत, क्यौंकर कर्महिं तोड़ै॥
दंसण-णाण[3]-चरण-गणरयणाँ[4], मूरख छिन न सँभालै।
काचसमान विषयसुख सांटै[5] ते गहि तीनौं रालै[6]॥ ५॥
गहि तीनौं रयणा तनमन वैयणा[7], चर निज चरन सयान।
डंडसि करुणा खंडसि मयणा[8], मंडसि धरमहि ध्यान॥
मंडसि ध्यान कर्मछयकारण, कारण काज दिखावै।

१ अकेला। २ जो दिन। ३ ज्ञान। ४ रत्न। ५ बदले। ६ फेंक देता है। ७ वचन
८ मदन-कामदेव।

काज सुदंसण ज्ञान सकति सुख, सहजहि चारौं पावै ॥
बहुड़ि न कोइ रहै कृतकर्मह, जो जग जीवा ताणै ।
एक समयमैं केवलज्ञानी, अतीत अनागत जाणै ॥ ६ ॥
अतीत अनागत देखत जानत, सो हम लख्यौ न देव ।
जो हूं देखत देखि विहरखत, हरखि करत तसु सेव ॥
हरखि हरखि तसु सेव करंता, जिन आपनसौ कीनौं ।
मोहनधूलि धरी सिर ऊपरि, ठगि रयणत्तो लीनौं ॥
अब श्रीकुन्दकुन्दगुरुवयणा, जिन विन घड़ि न सुहावै ।
आपणडा गुण सहज सुनिर्मल, यौं जिनदासहि गावै ॥ ७ ॥

इति परमार्थ जकड़ीसंग्रह समाप्त ।



१० । दशवां अध्याय ।

जैनव्रतकथा संग्रह ।

१४२ । पुष्पांजलिव्रतकथा ।

दोहा—वीरदेवको प्रणमिकर अर्चा करों त्रिकाल ।
पुष्पांजलि व्रतकी कथा, सुनो भव्य अघटाल ॥ १ ॥

चोपाई ।

पर्वत विपुलाचल पर आय । समोशरण जिनवरका पाय ।
तिहँ सुन राजा श्रेणिक राय । बंदन चले प्रियायुत भाय ॥२॥
वंदन कर पूछनृप तबै । हे प्रभु पुष्पांजलि व्रत अबै ॥
मोसों कहो करों चितलाय । कोनै कियो कहा फल पाय ॥३॥
बोले गौतम वचन रसाल । जंबूद्वीपमध्य सुविशाल ।
सीतानदि दक्षिण दिशि सार । मँगलावती सुदेश मझार ॥४॥

दोहा—रतनसंचयपुर तहां, बज्रसेन नृप राय।
जयवंती वनिता लसै, पुत्र बिहानी थाय ॥ ५ ॥
चौपाई—पुत्रचाह जिनमंदिर गई। ज्ञानोदधि मुनि बंदित भई ॥
हे मुनिनाथ कहो समझाय। मेरे पुत्र होइके नाय ॥६॥
दोहा—मुनि बोले हे बालकी, पुत्र होय शुभ सार। भूमि छह खंड सुसाधि है मुक्ति तनों भरतार ॥ ७ ॥ सुनके मुनिके वचन तब, उपज्यो हर्ष अपार। क्रमसों पूरे मास नव, पुत्र भयो शुभ सार ॥ ८ ॥ यौवन वयस सो पायकर, क्रीडा मंडप सार। तहां व्योमसों आइयो, खग भूपरतिसबार ॥९॥ रत्नशिखरको देखकर, बहुत प्रीति उरमाहिं। मेघबाहनने पांच सौ, विद्या दीनीं ताहि ॥ १० ॥

चौपाई।

दोनों मित्र परस्पर प्रीति। गये मेरु बंदन तज भीति ॥ सिद्ध कूट चैत्यालय वंदि। आये सबजन मन आनन्दि ॥ ११ ॥ ताकी सखी जनाई सार। वेग स्वयंवर करो तयार ॥ भूरि भूप आये तत्काल। माल रत्नशेखर गल डाल ॥१२॥ धूमकेत विद्याधर देख। क्रोध कियो मनमाहि विशेख ॥ कन्या काज दुष्टता धरी। विद्याबल बहु माया करी ॥१३॥ रत्नशेखरसों युद्ध सो करो। बहुत परस्पर विद्याधरो। जीत रत्नशेखर तिसबार। पाणिग्रहण कियो व्यवहार ॥१४॥ मदनमजूषा रानी संग। आयो अपने गेह असंग ॥ बज्रसेनको कर नमस्कार। मात तात मन सुक्ख अपार ॥१५॥ एक दिना मंदिरगिरयोग। पहुंचे मित्र सहित सब लोग ॥ चारण मुनि बंदे तिहि बार। सुन्यो धर्म चित भयो उदार ॥ १६ ॥ हे मुनि पूर्वजन्म संबंध

तीनोंके तुम कहो निबंध ॥ तव मुनि कहैं सुनो चितधार । एक मृणानलनगर सुखकार ॥ १७ ॥ नृपमंत्री इक तहँ श्रुतिकीर्ति । वंधुमती वनिता अति प्रीति ॥ एक दिना वन क्रीडा गयो । नारीसंग रमत सो भयो ॥ १८ ॥ पापी सर्प सो भक्षण करी । मंत्री मृतक लखी निज नरीं ॥ भयो विरक्त जिनालय जाय । दिक्षा लीनी मन हर्षाय ॥ १९ ॥ यथाशक्ति तप कुछ दिन कर्यो ॥ पीछे भ्रष्ट भयो तप टर्यो ॥ गृहआरंभ करन चित ठन्यो । तब पुत्री मुख ऐसे भन्यो ॥ २० ॥ तात जु मेरु चढे किहिंकाज । फिर भवसिंधु पडे तज लाज ॥ यों सुन प्रभावती बचसार । मंत्री कोप कियो अधिकार ॥ २१ ॥ तब विद्याको आज्ञा करी । पुत्रीको ले बनमें धरी ॥ विद्या जब बनमें लै गई । प्रभावती मन चिंता भई ॥ २२ ॥ अरहत भक्ति चित्तमें धरी । तब विद्या फिर आई खरी ॥ हे पुत्री तेरा चित जहां । वेग बोल पहुंचाऊं तहां ॥ २३ ॥ पुत्री कही कैलाशके भाव । जिनदर्शनको अधिकहि चाव ॥ पूजा करके बैठी वहां । पद्मावति आई सो तहां ॥ २४ ॥ इतने मध्य देव आइयो । प्रभावतीको प्रश्न जु भयो ॥ हे देवी कहिये किस काज । आये देवी देव सो आज ॥२५॥ पद्मावति बोली बच सार । पुष्पांजलि व्रत है सु अबार ॥ भादों मास शुक्ल पंचमी पंच दिवस आरंभ न अमी ॥२६॥ प्रोषध यथाशक्ति व्यवहार पूजो जिन चोबीसी सार ॥ नाना विधके पुष्प जु लाय । करै एक माला जु बनाय ॥ २७ ॥ तीनकाल वह माला देय । बहुत भक्तिसों विनय करेय ॥ जपै जाप शुभ मंत्र विचा

या विधि पंच वर्ष अवधार ॥२८॥ उद्यापन कीजे पुनि सार । चारप्रकार दान अधिकार ॥ उद्यापनकी शक्ति न होय । तो दूनो व्रत कीजे लोय ॥ २९ ॥ यह सुन प्रभावती व्रत लयो । पद्मावती कृपाकर दयो ॥ स्वर्ग मुक्ति फलका दातार । है यह पुष्पांजलिव्रत सार ॥ ३० ॥

दोहा—पद्मावति उपदेससों, लीनो व्रत शुभ सार ।
पृथ्वी परसु प्रकाशिके कियो, भक्तिचितधार ॥ ३१ ॥
तप विद्या श्रुतकीर्तिने, पाई अति जु प्रचंड ।
प्रभावति व्रत खंडने, आई सो बलबंड ॥ ३२ ॥

चौपाई ।

बासर तीन व्यतीते जबै । पद्मावति पुनि आई तबै ॥ विद्या सब भागी तत्काल । कियो सन्यासमरण तिस बाल ।३३। कल्प सोलवें मुख्य सु जान । देव भयो सो पुण्य प्रमान ॥ तहां देवने कियो विचार । मेरा तात भ्रष्ट आचार ॥३४॥ मैं संबोधों बाकों अबै । उत्तम गति वह पावै तबै ॥ यही विचार देव आइयो । मरणसन्यास तातको कियो ॥ ३५ ॥ बाही स्वर्ग भयो सो देव । पुण्यप्रभावलियो फल एव ॥ बंधुमती माताको जीव । उपज्यो ताही स्वर्ग अतीव ॥ ३६ ॥

दोहा—प्रभावतीका जीव तू, रत्नशेखर भयो आय ।
माताको जो जीव थो, मदनमजूषा थाय ॥ ३७ ॥

चौपाई ।

श्रुतिकीर्तिके जीव जु तहां । मंत्री मेघवाहन है यहां ॥ ये तीनोंके सुन पर्याय । भई सु चिंता अंग न मांय ॥ ३८ ॥

सुन व्रतफल अरु गुरुकी वानि। भयो सुचित व्रत लीनों जानि ॥ अपने थान बहुरि आइयो। चक्रवर्तिपद भोग सु कियो ॥ ३९ ॥ समय पाय वैरागी भयो। राजभार सब सुतको दयो ॥ त्रिगुप्ति मुनिके चरणों पास। दिक्षा लीनी परम हुलास ॥ ४० ॥ तत्नशेखर दिक्षा ली जबै। भयो मेघवाहन मुनि तबै ॥ भवि जीवोंको अति सुखकार। केवलज्ञान उपायो सार ॥ ४१ ॥ घातिकर्म निर्मूल सु करे। पाछें मुक्तिपुरी अनुसरे ॥ इह विध व्रत पाले जो कोइ। अजर अमर पद पावै सोइ ॥ ४२ ॥

इति पुष्पांजलि व्रत कथा सम्पूर्ण ॥

१४३। अथ दशलक्षण व्रतकी कथा।

दोहा—प्रथम वंदि जिनराजको, शारद गणधर पाय।
दशलक्षण व्रतकी कथा, कहूं सुगम सुखदाय ॥ १ ॥

चौपाई।

विपुलाचल श्रीवीरकुमार। आये भविभव-भंजनहार ॥
सुनि श्रेणिकनृप वंदन गयो। सर्वलोकसँग आनंद भयो ॥२॥
श्रीजिन पूजे मनधर चाव। स्तुति करी जोडकर भाव ॥
धर्मकथा तहँ सुनी विचार। दानशील तप भेद अपार ॥ ३ ॥
भवदुखघायक दायक शर्म। भाख्यो प्रभु दशलच्छन धर्म ॥
ताकौं सुनि श्रेणिक रुचि धरी। गुरु गौतमसों बिनती करी।
दशलच्छन व्रत कथा रसाल। मुझको भाखहु दीनदयाल ॥
तब गुरु गौतमगणधर कही। सुन जिनधुनिमैं भाखी वही ॥५॥
खंड धातुकी पूर्व विदेह। मेरूतैं दक्षणदिश तेह ॥

सीतोदा नदि तीर जु सही । पुरी विशालाक्षा शुभ कही ॥६॥
भूपति पीतंकर तहँ बसै । रानी प्रियकारिणि तस लसै ॥
सुता मृगांकरेखा तस जान । मति शेखर तस मंत्रि प्रधान ॥७॥
शशीप्रभा ताकी तिय सही । सुता कामसेना तस भई ॥
राजसेठ गुणसागर जान । तस तिय शील सुभद्रा मान ॥८॥
सुता मदनरेखा अवतरी । रूप कला गुण लक्षण भरी ॥
लक्षभद्र नामा कुतवाल । तस तिय शशिरेखा गुणमाल ॥९॥
रोहणि कन्या ताकै भई । चारों कन्या मिल सखि थई ॥
शास्त्र पढीं इक गुरुके पास । बढ्यो सनेह परस्पर जास ॥१०॥
रितु वसंत आयो निरधार । कन्या चारों बनहि मझार ॥
गई, सु मुनिवर देखे एक । वंदन श्रुति कीनी सविवेक ॥११॥
चारों कन्यां मुनिसों कही । तिय परजाय ज्यों छूटै सही ॥
ऐसो व्रत उपदेशहु अबै । जासौं नरतन पावैं सबै ॥ १२ ॥
बोले मुनि दशलक्षण सार । यह व्रत किये होहु भवपार ॥
कन्या बोली किँहविध करैं । किसदिनतैं यह व्रत हम धरैं ॥१३॥
तब गुरु बोले बचन रसाल । भादव मास कह्यो सुखमाल ॥
शुकलपंचमी दिनसों लेय । पंचामृत अभिषेक करेय ॥ १४ ॥
पूजार्चन कीजे शुभ सही । जिन चौबीसतणी सुख मही ॥
उत्तम क्षमा आदि सुखसार । दशमों ब्रह्मचर्य गुण धार ॥१५॥
तीनकाल अति भक्ती करो । तीनकाल पुष्पांजलि धरो ॥
इहविध दशवासर आचरो । नियमित व्रत शुभकारज करो ॥
उत्तम व्रत दश अनसन किये । मध्यमव्रत कुछ कांजी लिये ॥
अथवा दश एकासन करो । भूमिशयन ब्रह्मचर्य जु धरो ॥१७॥

श्राविधि दशबरसहि लग करै । भावसहित व्रत-विधि अनुसरै ॥
फिर व्रतका उद्यापन करै । दान सुपात्रनको विस्तरै ॥ १८ ॥
औषध अभय शास्त्र आहार । चारसंघको दे चित धार ॥
रचिमंडल पूजा कीजिये । छत्र चमर आदिक दीजिये ॥१९॥
जो उद्यापनशक्ति न होय । तौ दूनो व्रत कीजै लोय ॥
यह व्रत पुण्यतणो भंडार । क्रमसों परभव दे शिवसार ॥२०॥
तब च्यारों कन्या व्रत लियो । भक्तिभाव लखि मुनि वर दियो ॥
यथाशक्ति व्रत पूरण कर्यो । उद्यापन विधिसों आचर्यो ॥२१॥
अंतकाल वे कन्या चार । सुमरण कियो पंच नवकार ॥
चारों मरणसमाधि सुकियो । दशवेंस्वर्ग जन्म तिन लियो ।२२॥
सोलह सागर आयू लही । धर्मध्यान नित सेवैं सही ॥
सिद्धछेत्र सब करहिं विहार । छायक सम्यक उदय अपार ॥२३॥
नानाविध सुख भोगैं जहां । दुखका लेस न जानै तहां ॥
यह तो कथा रही इह ठौर । आगैं सुनो भई जो और ॥२४॥
सब दीपनमधि जंबूदीप । दक्षण लवणसमुद्रसमीप ॥
भरतक्षेत्र राजत है तहां । आर्यखंड राजै शुभ जहां ॥ २५ ॥
तामैं मालवदेश विशाल । उज्जयनीनगरी सुखसाल ॥
थूलभद्र ताको नरपती । लक्ष्मीमति रानी गुणवती ॥ २६ ॥
क्रमसे चयकर ते सुरचार । आये रानी उदरमझार ॥
प्रथम सुपुत्र देवप्रभ भयो । दूजो सुत गुणचंद्र जु थयो ॥२७॥
तीजो पदमप्रभ बलवीर । चौथो पद्मसारथी धीर ॥
जन्ममहोत्सव तिनके करे । अशुभ दोष ग्रह सबही टरे ॥२८॥
पठनजोग्य जब चारों भये । नृपने गुरुसमीप पठ दये ॥

सब विद्या पढ लीनी सार। व्याहयोग्य तब भये कुमार ॥२३॥
निकलप्रभ राजाकी सुता। चारोंने परनी गुणयुता ॥
प्रथम सुताका 'ब्राह्मी' नाम। दुतिय 'कुमारी' सो गुणधाम ॥
तीजी 'रूपवती' सुकुमाल। 'मृगनेत्री' चौथी गुणशाल ॥
व्याह महोच्छव कियो अपार। सुखसों रहने लगे कुमार ॥३१॥
कुछ दिन राज कियो भूपाल। मन वैराग भयो इक काल ॥
भवतन भोग लखे निस्सार। दीक्षा ग्रहन कियो सुविचार ॥३२॥
वडे पुत्रको राज्य सु दियो। बनमें जाकर मुनिव्रत लियो ॥
तपकर पायो केवलज्ञान। हनि अघाति पहुँच्यो शिवथान ॥३३॥
सुखसों राज करै चउ भ्रात। पुरजन सुख भोगैं दिनरात ॥
चारों भ्राता चतुर सुजान। पूरबपुण्यतणो फल मान ॥ ३४ ॥
नितप्रति धर्मध्यान आचरैं। पापक्रियातैं अतिशय डरैं ॥
इकदिन मन उपज्यो वैराग। राजपाट सब दीने त्याग ॥३५॥
वनमें जाकर मुनिव्रत धार। करने लगे करमसंहार ॥
करतकरत तप बहुदिन गये। घातिकरम सब छय करदये ॥३६॥
तब उपज्यो तिन केवलज्ञान। सुर आये जय जय कर बान ॥
कियो महोच्छव अति सुखमान। कर कल्यान गये निज थान ॥
विविध देशमें कियो विहार। दे उपदेश भव्यजन तार ॥
करम अघाति किये सब नास। सिद्धालय कीनो चिरवास ॥३८॥
दशलच्छनव्रतको फल यही। पायो च्यारों कन्या सही ॥
तातैं सब जन तनमनधार। दशलच्छनव्रत धारो सार ॥३९॥
यह व्रत कर बहुजन सुर भये। सुरसुख भोग मुकतिमैं गये ॥
गुरु गौतम गणधर यह कही। कर श्रद्धान धरो व्रत यही ॥

भट्टारक श्रीभूषणवीर । तिनके चेला गुणगंभीर ॥
ब्रह्मज्ञानसागर सुविचार । कही कथा दशलच्छनसार ॥ ४१ ॥
पढै सुनै जो नर यह कथा । दशलच्छनव्रत धारैं तथा ॥
दशलच्छन वृष भावैं जोय । सो अवश्य शिवतियपति होय ॥

इति दशलक्षणव्रत कथा समाप्ता ।

१४४ । सुगन्धदशमीव्रत कथा ।

चौपाई ।

वर्द्धमान बंदों जिनराय । गुरु गौतम बंदों सुखदाय ॥ सुगंधदशमीव्रतकी कथा । वर्द्धमान सुप्रकाशी यथा ॥ १ ॥ मगधदेश राजगृह नाम । श्रेणिक राज करै अभिराम । नाम चेलना गृह पटरानि । चंद्ररोहिणीरूपसमान ॥२॥ नृप बैठ्यो सिंहासन परे । वनमाली फल लायो हरे ॥ कर प्रणाम वच नृपसे कह्यो । प्रमोदचित्तसे ठाडो रह्यो ॥ २ ॥ वर्द्धमान आये जिनस्वामि । जिन जीत्यो उद्धत अरि काम ॥ इतनी सुनत नृपति उठ चला । पुरजनयुत दलबलसे भला ॥ ४ ॥ समोशरण वंदे भगवान । पूजा भक्ति धार बहुमान ॥ नरकोठा बैठ्यो नृप जाय । हाथजोड पूछ्यो शिर नाय ॥ ५ ॥ सुगंधदशमीव्रत फल भाख । ता नरकी कहिये अब साख ॥ गणधर कहैं सुनो मगधेश । जंबुद्वीप विजयार्द्ध प्रदेश ॥ ६ ॥ शिवमंदिरपुर उत्तरश्रेणि । विद्याधर प्रीत कर जैनि ॥ कमलावती नारि अति रूप । सुरकन्यासे अधिक अनूप ॥ सागरदत्त बसे तहां साह । जाके जिनव्रतमें उत्साह ॥ धनदत्ता वनिता गृह कही । मनोरमा ता पुत्री सही ॥ ८ ॥ मुनि सुगुप्त गृहपर

आइयो। देख मुनींद्र दुःख पाइयो ॥ कन्या मुनिकी निंदा करी। कुछ मनमें नहिं शंका धरी ॥ ९ ॥ नग्नगात दुर्गंध शरीर। प्रगटपने देही नहिं चीर ॥ मुख तांबूल हतो मुनि-अंग। नाख्यो सुखको कीनो भंग ॥ १० ॥ भोजन अंतराय जब भयो। मुनि उठ जाय ध्यान वन दियो ॥ समताभाव धरै उरमांहि। किंचित खेद चित्तमें नाहिं ॥ ११ ॥ वीती अवधि समय कछु गयो। मनोरमाको काल सु भयो ॥ भई गधी पुनि कुकरी ग्राम। अपर ग्राम भइ सूकरि नाम ॥१२॥ मगध सुदेश तिलकपुर जान। विजयसेन तहँका नृप मान ॥ चित्र-रेखा ता रानी कही। तस पुत्री दुर्गंधा भई ॥१३॥ एकसमय गुरुवंदन गयो। पूजा कर विनतीको ठयो ॥ मो पुत्री दुर्गंध शरीर। कहो भवांतर गुणगंभीर ॥ १४ ॥ राजा वचन मुनी-श्वर सुने। मुनि विरतांत रायसे भने ॥ सब विरतांत हाल जो जान। मुनि राजासे कह्यो बखान ॥ १५ ॥ सुन दुर्गंधा जोडे हाथ। मोपर कृपा करो मुनिनाथ ॥ ऐसा व्रत उपदेशो मोहि जासों तनु निरोग अब होहि ॥१६॥ दयावंत बोले मुनिराय। सुन पुत्री व्रत चित्त लगाय ॥ समताभाव चित्तमें धरो। तुम सुगंधदशमी व्रत करो ॥ १७ ॥ यह व्रत कीजे मनवचकाय। यासों रोग शोक सब जाय ॥ दुर्गंधा विनवै मुनि पाय। कहिये सविधि महा मुनिराय ॥ १८ ॥ ऐसे वचन सुने मुनि जबै। तब बोले पुत्री सुन अबै ॥ भादों शुक्ल पक्ष जब होय। दशमी दिन आराधो सोय ॥ १९ ॥ चारों रसकी धारा देव। मनमैं राखो श्रीजिनदेव ॥ शींतल जिनकी

पूजा करो। मिथ्या मोह दूर परिहरो ॥ २० ॥ व्रतके दिन छोडो आरंभ। यासौं मिटै कर्मका दंभ॥ याके करत पाप छय जाय। सो दश बर्ष करो मनलाय ॥ २१ ॥ जब यह व्रत संपूरन होय। उद्यापन कीजै चित जोय॥ दश श्रीफल अमृतफल जान। नीबू सरस सदा फल आन॥ २२॥ दश दीजै पुस्तक लिखवाय। इह विधि सब मुनि दई बताय॥ विधि सुन दुर्गंधा व्रत लयो। सब दुर्गंध ततच्छिन गयो॥२३ व्रत कर आयु जो पूरण करी। दशवें स्वर्ग भई अप्सरी॥ जिनचैत्यालय वंदन करै। सम्यकभाव सदा उर धरै॥ २४॥ भरतक्षेत्र महँ मध्य सुदेश। भूतितिलकपुर बसै अशेष॥ राजा महीपाल तहँ जान। मदनसुंदरी त्रिया बखान॥२५॥ दशवें दिवसों देवी आन। ताके पुत्री भई निदान॥ मदनावती नाम धर तास। अति सुरूप तनु सकल सुवास॥२६॥ बहुत बातको करै बखान। सुर कन्यां मान्यो उन्मान॥ कोसांबीपुर मदन नरेंद्र। रानी सती करै आनंद॥ २७॥ पुरुषोत्तम नृप सुंदर जान। विद्यावंत सुगुणकी खान॥ जो सुगंध मदनावलि जाय। सो पुरुषोत्तमको परनाय॥ २८॥ राजा मदनसुंदरी बाल। सुखसों जात न जान्यो काल॥ एक दिवस मुनिवर वंदियो। धर्म श्रवण मुनिवरपै कियो।२९। हाथ जोड पूछै तब राय। महा मुनींद्र कहो समुझाय॥ मो गृह रानी मदनावली। ता शरीर शौरभताभली॥३०॥ कौन पुन्यसे सुभग सुरूप। सुर वनितासों अधिक अनूप॥ राजा वचन मुनीश्वर सुने। सब विरतांत रायसे भने॥ ३१॥ जैसें

दुर्गंधाव्रत लह्यो। तैसीविधि नरपतिसों कह्यो ॥ सुने भवांतर जोडे हाथ। दिक्षाव्रत दीजै मुनिनाथ ॥ ३२ ॥ राजानै जब दिक्षा लई। रानी तवै अर्जिका भई ॥ तपकर अंत स्वर्गको गई। सोलम स्वर्ग प्रतेंद्र सो भई ॥ ३३ ॥ बाइस सागर काल जो गयो। अंतकाल ता दिवसों चयो ॥ भरत सुक्षेत्र मगध तहँ देश। वसुधा अमर केतुपुरवेश ॥ ३४ ॥ ता नृप गेह जनम उन लह्यो। जो प्रतेंद्र अच्युत दिव कह्यो ॥ कनक केतु कञ्चनद्युति देह वनिताभोग करै शुभ गेह ॥ ३५ ॥ अमरकेतु मुनि आगम भयो। कनककेतु तहं वंदन गयो ॥ सुन्यो सुधर्म श्रवण संयोग। तजे परिग्रह अरु भवभोग ॥ ३६ ॥ घाति घातिया केवल लयो। पुनि अघाति हनि शिवपुर गयो ॥ व्रत सुगंध दशमी विख्यात। ता फल भयो सुरभि युत गात ॥ ३७ ॥ यह व्रत पुरुष नारि जो करै। सो दुख संकट भूलि न परै ॥ शहर गहेली उत्तम वास। जैनधर्मको जहां प्रकाश ॥ ३८ ॥ सव श्रावक व्रत संयम धरै। पूजादानसों पातक हरै ॥ उपदेशी विश्वभूषण सही। हेमराज पंडितने कही ॥ ३९ ॥ मन वच पढै सुनै जो कोय। ताको अजर अमर पद होय ॥ यासों भविजन पढो त्रिकाल। जो छूटै भविके भ्रमजाल ॥ ४० ॥

श्रीसुगंधदशमीव्रत कथा भाषा समाप्ता।

१४५। अनंतचौदसव्रत कथा।

दोहा।

अनंतनाथ वंदों सदा, मनमें कर बहु भाव।
सुर असुर सेवत जिन्हें, होय मुक्ति पर चाव ॥ १ ॥

चौपाई ।

जंबूद्वीप द्विपनमैं सार । लख योजन ताको विस्तार ॥ मध्य सु दर्शन मेरु बखान । भरतक्षेत्र ता दक्षिण मान ॥ २ ॥ मगधदेश देशों शिरमणी ॥ राजगृही नगरी अति बनी ॥ श्रेणिक महाराज गुणवंत । रानी चेलना गृह शोभंत ॥ ३ ॥ धर्मवंत गुण तेज अपार । राजा राय महागुण सार ॥ एक दिवस विपुलाचल बीर । आये जिनवर गुण गंभीर ॥ ४ ॥ चार ज्ञानके धारक कहे । गौतम गणधर सो संग रहे ॥ छह ऋतुके फल देखे नैन । बनमाली ले चाल्यो ऐन ॥ ५ ॥ हर्ष सहित बनमाली गयो । पुष्पसहित राजा पर गयो ॥ नमस्कार कर जोडे हाथ । मोपर कृपा करो नरनाथ ॥ ६ ॥ विपुला चल उद्यान कहंत । महाबीर जिन तहां वसंत ॥ सुन राजा अति हर्षित भयो । बहुत दान मालीको दयो ॥ ७ ॥ सप्त ध्वनि बाजे बाजंत । प्रजा सहित राजा चालंत ॥ दे प्रदक्षिणा बैठो राव । जिनवर देव कियो चित चाव ॥ ८ ॥ द्वैविधि धर्म कह्यो समुझाय । जासों पाप सर्व जर जाय ॥ खग तहं आयो एक तुरंत । सुंदर रूप महा गुणवंत ॥ ९ ॥ नमस्कार जिनवरको कर्‌यो । जय जयकार शब्द उच्चर्‌यो ॥ ताहि देख अचरज अति कियो । राजा श्रेणिक पूछत भयो ॥ १० ॥ सेना सहित महा गुण खानि । को यह आयो सुंदर बानि ॥ याकी बात कहो समुझाय । ज्ञानवंत मुनिवर तुम आय ॥ ११ ॥ गोतम बोले बुद्धि अपार । विजयानगर कह्यो अतिसार ॥ मनोकुंभ राजा राजंत । श्रीमती रानीको कंत ॥

॥१२॥ ताका पुत्र आरिंजय नाम । पुण्यवंत सुंदर गुणधाम ॥ पूरव तप कीनो इन जोय । ताको फल भुगतै शुभ सोय ॥ १३ ॥ ताकी कथा कहूं विस्तार । जंबूद्वीप द्वीपोंमें सार ॥ भरतक्षेत्र तामैं सुखकार । कौशल देश विराजै सार ॥ १४ ॥ परम सुखद नगरी तहँ जान । विप्र सोमशर्मा गुणखान ॥ सोमिल्या भामिनि ता कही । दुखदरिद्रकी पूरित मही ॥१५॥ पूरव पाप किये अति घने । ताको दुख भुगते ही बने ॥ सुन राजा याका विरतांत । नगर २ सो भ्रमै दुखांत ॥ १६॥ देश विदेश फिरैं सुखआश । तोहु न प वे सुक्ख निवास ॥ भ्रमत २ सो आयो तहां । समोशरण जिनवरको जहां ।१७।

दोहा—अनंतनाथ जिनराजका, शमोशरण तिहिबार ।
सुरनर अति हर्षित भये, देख महाद्युति सार ॥ १८ ॥

चौपाई ।

विप्र देख अति हर्षित भयो । समोशरण बंदनको गयो ॥ वंदि जिनेश्वर पूछै सोइ । कहा पाप मैं कीनो होइ ॥ १९ ॥ दरिद्र पीडा रहै शरीर । सोतो व्याधि हरो गंभीर ॥ गणधर कहै सुनो द्विजराय । अनंतव्रत कीजै सुखदाय ॥ २० ॥ तबै विप्र बोलकर भाय । किस विध होइ सो देहु बताय ॥ किस प्रकार या व्रतको करों । कहो विधान चित्तमें धरा ॥ २१ ॥ भादव मास सुक्खकी खान । चौदस शुक्ल कही सुखदान ॥ कर स्नान शुद्ध हो जाय । तब पूजै जिनवर सुखदाय ॥ २२ ॥ गुरुबंदना करै चितलाय । या विधिसों व्रत लेय बनाय ॥ त्रिकाल पूजन श्रीजिनदेव । रात्रिजागरण कर सुख लेव ॥ २३ ॥

गीत रु नृत्य महोत्सव जान। धारा जिनवर करो बखान॥ वर्ष चतुर्दश विधिसों धरैं। तापीछें उद्यापन करैं॥ २४॥ करैं प्रतिष्ठा चौदह सार। जासों पाप होइ जर छार॥ झारी धारी अधिक अनूप। चरण कलश देवै शुभरूप॥ २५॥ दीवट झालर संकल माल। और चंदोवे उत्तम जाल॥ छत्र सिंघासन विधिसों करै। तातें सर्व पाप परिहरै॥ २६॥ चारप्रकार दान दीजिये। जासों अतुल सुक्ख लीजिये॥ अंतसमय लेवै सन्यास। तातैं मिलै स्वर्गका बास॥ २७॥ उद्यापनकी शक्ति न होय। कीजै व्रत दूनों भवि लोइ॥ विप्र कियो व्रत विधिसों आय। सब दुख ताके गये विलाय॥ २८॥ अंतकाल धरके सन्यास। तातैं पायो स्वर्गनिवास॥ चौथे स्वर्ग देव सो जान। महाऋद्धि ताके जु बखान॥ २९॥ विजयारध गिरि उत्तम ठौर। कांचीपुर पत्तन शिर मौर। राजा तहँ अपराजित वीर विजया तासु प्रिया गंभीर॥ ३०॥ ताको पुत्र अरिंजय नाम तिन यह आय कियो परनाम॥ कंचनमय सिंहासन आन। ता पर नृप बैठो सुख खान॥ ३१॥ व्योम पटल विनशत लख संत। उपज्यो चित वैराग महंत। राज्यपुत्रको दयो बुलाय आप लई दीक्षा शुभ भाय॥ ३२॥ सही परीषह दृढ चित धार। तातैं कर्म भये अति छार॥ घाति घातिया केवल भयो सिद्धि बुद्धि सो पद निर्भयो॥ ३३॥ रानीने व्रत कीनो सही देवदेह दिवअच्युत लही॥ तहां सु सुख भुगते अधिकाय। तहांसे आय भयो नरराय॥ ३४॥ राजऋद्धि पाई शुभसार। फिर तप कर विधि कीने छार॥ तहां सों मुक्तीपुरको गयो।

ऐसो तिन व्रतको फल लयो ॥२५॥ ऐसो व्रत पालै जो कोइ। स्वर्गमुक्तिपद पावै सोइ ॥ बिनयसागर गुरु आज्ञा करी। हरि किल पाठ चित्तमें धरी ॥२६॥ तव यह कथा करी मन ल्याय। यथाशास्त्रमें वरणी आय ॥ विधिपूर्वक पालै जो कोय। ताको अजर अमर पद होय॥ २७ ॥

१४६। रत्नत्रयव्रतकथा।

दोहा—अरहनाथको वंदिके, वंदों सरस्वति पाय।
रत्नत्रयव्रतकी कथा, कहूं सुनो मनलाय ॥ १ ॥

चौपाई।

जंबूद्वीप भरत शुभ खेत। मगध देश सुख संपति हेत॥ राजगृही तहँ नगरि बसाय। राजा श्रेणिक राज कराय ॥२॥ विपुलाचल जिनवीर कुंवार। केवलज्ञानविराजत सार॥ माली आय जनावो दयो। ततछिन राजा वंदन गयो ॥ ३ ॥ पूजा वंदन कर शुभ सार। लाग्यो पूछन प्रश्न विचार॥ हे स्वामी रत्नत्रयसार। व्रत कहिये जैसा व्यवहार ॥ ४ ॥ दिव्यध्वनि भगवान बताय। भादों सुदि द्वादश शुभ भाय। कर स्नान स्वच्छ पट श्वेत। पहिनो जिनपूजनके हेत ॥५॥ आठों द्रव्य लेय शुभ जाय। पूजो जिनवर मनवचकाय ॥ जीरण नूतन जिनके गेह। बिंब धरावो तिनमें तेह ॥६॥ हेमरूप्य पीतलके यंत्र। तांबा यथा भोजके पत्रं॥ यंत्र करो बहु मन थिर देव। रत्नत्रयके गुण लिख लेव ॥७॥ निशंकादि दर्शन गुण सार। संशय रहित सु ज्ञान अपार॥ अहिंसादि महाव्रत सार। चारितके ये गुण हैं धार ॥ ८ ॥ ये तीनोंके गुण हैं आदि।

इन्हें आदि जेते गुण वाद ॥ शिवमारगके साधनहेत । ये गुण धारै व्रती सुचेत ॥ ९ ॥ भादों माघ चैत्रमें जान । तीनोंकाल करो भवि आन ॥ या विधि तेरह वरस प्रमान । भावन भावे गुणहि निधान ॥ १० ॥ लवंगादि अष्टोत्तर आन । जपो मंत्र मन कर श्रद्धान ॥ पुनि उद्यापन विधि जो एह । कलशा चमर छत्र शुभ देह ॥ ११ ॥ संग चतुर्विधको आहार । वस्त्राभरण देहु शुभसार ॥ बिंबप्रतिष्ठा आदि अपार । पूजो श्रीजिन हो भव पार ॥ १२ ॥

दोहा—इसविध श्रीमुख धर्म सुन, भन्यो चित्तधर भाय ।
कौनै फल पायो प्रभू, सो भाखो समुझाय ॥ १३ ॥

चौपाई ।

जंबूद्वीप अलंकृत हेर । रह्यो ताहि लवणोदधि घेर ॥ मेरु सु दक्षिण दिश है सार । है सो विदेह धर्म अवतार ॥ १४ ॥ कच्छवती सुदेश तहँ बसै । वीतशोकपुर तामैं लसै ॥ वैस्रिव नाम तहांको राय । करै राज सुरपतिसम भाय ॥ १५ ॥ मालीने जु जनावो दयो । विपुल बुद्धि प्रभु बनमें ठयो ॥ इतनी सुन नृप वंदन गयो । दान बहुत मालीको दयो ॥१६॥ हे स्वामी रत्नत्रय धर्म । मोसों कहो मिटें सब भर्म ॥ तब स्वामीने सब विध कही । जो पहिले सो प्रकाशी सही ॥१७॥ पंचामृत अभिषेक सु ठयो । पूजा प्रभुकी कर सुख लयो ॥ जागरणादि ठयो बहु भाय । इस विध व्रतकर वैस्रिवराय ॥ १८ ॥ भावसहित राजा व्रत कर्‍यो । धर्मप्रतीत चित्त अनुसर्‍यो ॥ षोडशभावन भावत भयो । अंत समाधिमरण

तिन कियो ॥ १९ ॥ गोत्र तीर्थंकर बांध्यो सार। जो त्रिभुवनमैं पूज्य अपार ॥ सर्वारथ सिद्धि पहुच्यो जाय। भयो तहां अहमेंद्र सुभाय ॥ २० ॥ हस्त मात्र तन ऊंचो भयो। तेंतिस सागर आयु सु लयो ॥ दिव्यरूप सुखको भंडार। सत्यनिरूपण अवधि विचार ॥ २१ ॥ सौधर्मेंद्र विचारी घरी यक्षेश्वरको आज्ञाकरी। वेग देश निर्माप्यो जाय। थाप्यो मुथरापुर अधिकाय ॥ २२ ॥ कुंभपुर राजा तहँ बसै। देवी प्रजावती तिस लसै ॥ श्रीआदिक तहँ देवी आय। गर्भ सोधना कीनी जाय ॥ २३ ॥ रत्नवृष्टि नृप आंगन भई। पंद्रह मास लों बरसत गई ॥ सर्वार्थ-सिद्धिसों सुर आय। प्रजावती कुक्ष उपजाय ॥ २४ ॥ मल्लिनाथ शुभ नाम जु पाय। द्वैजचंद्रसम बढत सुभाय ॥ जबै बिवाह मंगल विधि भई। तब प्रभु चित विरागता लई ॥ २५ ॥ दीक्षा धर बनमैं प्रभु गये। घातिकर्म हनि निर्मल ठये ॥ केवल ले निर्वाण सु जाय। पूजा करी सुरन सब आय ॥ २६ ॥ यह विधान श्रेणिकने सुन्यो। व्रत लीने चित अपने गुण्यो ॥ भक्ति विनय कर उत्तम भाय। पहुंचे अपने गृहको आय ॥ २७ ॥ याविधि जो नर नारी कही। ब्रह्मज्ञान भाषा निर्मही ॥२८॥

इति श्री रत्नत्रयव्रतकथा समाप्ता।

१४७। मुक्तावली व्रतकथा।

दोहा।

ऋषभनाथके पद नमों, भविसरोज रवि जान।
मुक्तावलिव्रतकी कथा, कहूं सुनो धर ध्यान ॥ १ ॥

चौपाई।

मगध देश देशनपरधान। तामें राजगृही शुभ थान॥
राज्य करै तहँ श्रेणिक राय। धर्मवंत सबको सुखदाय॥२॥
ता गृह नारि चेलना सती। धर्मशील पूरण गुणवती॥ इक
दिन समोशरण महावीर। आयो विपुलाचलपर धीर॥३॥
सुनि नृप अति आनन्दित भयो। कुटुम सहित वंदनको
गयो॥ पूजाकर बैठ्यो सुखपाय। हाथ जोड कर अर्ज कराय
॥४॥ हे प्रभु मुक्तावलि-व्रत कहो। यह कर कौने क्या फल
लहो॥ तब गौतम बोले हर्षाय। सुनो कथा मुक्तावलि राय
॥५॥ याही जंबूद्वीपमझार। भरतक्षेत्र दक्षिणदिशि सार॥
अंगदेश सोहै रमणीक। नगर बसै चम्पापुर ठीक॥६॥
नगर मध्य इक ब्राह्मण बसै। नाम सोमशर्मा तसु लसै॥
ता गृह एक सुता जो भई। यौवनमद कर पूरण भई॥७॥
इकदिन देखे श्रीगुरु जबै। नग्नगात लखि निंदी तबै॥ अति
खोटे दुर्वचन कहाय। बहुतहि ग्लानी चित्तमें लाय॥८॥
ताकरि महा पाप बांधियो। आय वितीते मरण जु कियो॥
नरक जाय नाना दुख सहे। छेदन भेदन जाय न कहे॥९॥
नरक आयु पूरी कर जोइ। भवभ्रमि द्विजगृह पुत्री होइ॥
निर्नामिका पड्यो तिहँ नाम। अति दुर्गंधा देह निकाम
॥१०॥ कोई ढिग आवै नहिं तहां। क्रमकर बडी भई सो वहां
अन्नपानकर दुःखित महा। झूठन भखै कष्ट अति लहा॥
११॥ एक दिवस देखे मुनिराय। कर प्रणाम विनय शिर-
नाय॥ कौन पाप मैं कीनो देव। मैं पायो अति दुःख अभेव॥

॥ १२ ॥ तब मुनिवर पूरब भव कहे। गुरुकी निंदासों दुख लहे। तब दुर्गंधा जोडे हाथ। ऐसो व्रत दीजै मोहि नाथ॥ १३ ॥ जासों रोग शोक सब जाय। उत्तम भव पाऊं गुरुराय। तब श्रीगुरु बोले हर्षाय। मुक्तावलिवृत कर मनलाय॥ १४ ॥ तासों सबै पाप जरजाय। सुख सम्पत्ति मिलै अधिकाय॥ तब दुर्गंधा कहै विचार। कौन भांति कीजे वृतसार ॥ १५ तब मुनिवर इम वचन कहाय। सुनो भेद वृतको चितलाय॥ भादौं सुदि सप्तमि दिन होइ। तादिन वृत कीजै अवलोइ ॥ १६ ॥ प्रातसमय जिनमंदिर जाय। पूजा कथा सुनो मनलाय॥ सब आरंभ तजो दिनमान। संयम शील सजो गुणखान॥ १७॥ भोर भये जिनदर्शन करो। शुद्ध असन कीजै तब खरो॥ दूजो वृत पूरबवत करो। अश्विन वदि छठि पापन हरो ॥ १८॥ तीजो वृत कीजे उर धार। अश्विनवदि तेरस सुखकार॥ कर उपवास पाल गुणरसी। चौथो अश्विन सुदि ग्यारसी॥ १९॥ पंचम वृत कीजै मनलाय। कार्तिक वदि बारसि सुखदाय॥ फिर छठवां उपवास सुजान। कार्तिक शुक्ल तीज गुणखान ॥ २०॥ सप्तम वृत जिनवरने कह्यो। कार्तिक सुदि ग्यारसि शुभ लह्यो॥ फेर करो अष्टम वृत लोय । मगसिर वदि ग्यारसि जब होय ॥ २१॥ नवमों वृत मगसिर सुदि तीज। ये व्रतधर्म वृक्षके बीज॥ या विधि कर नव वर्ष प्रमान। मनवचकाय शुद्धता ठान॥ २२॥ जब वृत पूरण होय निदान। उद्यापन कीजै गुणवान॥ श्रीजिनवर अभिषेक कराय। करो मांडनो जिन

गृह जाय ॥ २३ ॥ अष्टप्रकारी पूजा करो । जन्म जन्मके पातक हरो ॥ यथाशक्ति उपकरण बनाय । श्रीजिनधाम चढावो जाय ॥ २४ ॥ उद्यापनकी शक्ति नहोय । तो दूनो वृत कीजै सोय ॥ सब विध सुन दुर्गंधा बाल । मनवचतन-वृत लीनो हाल ॥२५॥ गुरुभाषित तिन वृत यह कियो । पूर्व-भवअघ पानी दियो ॥ ता फल नारि लिंग छेदियो । प्रथमहिं स्वर्ग देव सो भयो ॥ २६ ॥ तहां आयु पूरणकर सोय । चलत भयो मथुराको लोय श्रीधर राजा राज करंत । ताके सुत उपज्यो गुणवंत ॥ २७ ॥ नाम पद्मरथ पंडित भयो । एक दिवस बनक्रीडा गयो ॥ गुफा मध्य मुनिवरको देख । वंदन कर सुन धर्म विशेष ॥ २८ ॥ तहां पूछ मुनिवरसों सोय । तुमसों अधिक प्रभा प्रभु कोय ॥ तब मुनिवर बोले सुन बाल वासुपूज्य जिन दीप्ति विशाल ॥ २९ ॥ चंपापुर राजे जिनराज । तेजपुंज प्रभु धर्म जहाज ॥ यह सुन धर्म विषै चित दयो । समोशरण जिन वंदन गयो ॥ ३० ॥ नमस्कार कर दीक्षा लई । तपकर गणधर पदवी भई ॥ अष्ट कर्म इस विधिसों जार । पहुँच्यो शिवपुर सिद्धमझार ॥ ३१ ॥ लखो भव्य वृतका जु प्रभाव । राज भोग गयो शिवपुरराय ॥ जो नरनारि करैं वृतसार । सुर सुख लहि पावैं भवपार ॥ ३२ ॥

इति श्रीमुक्तावलिव्रतकथा समाप्ता ।

१४८ । श्रीरविव्रतकथा ।

चौपाई ।

श्रीसुखदायक पार्स जिनेश । सुमति सुगति दाता परमेश ।

सुमिरो शारदपद अरविंद । तिनकर व्रत प्रगट्यो सानंद ॥१
वाणारसि नगरी सुविशाल । प्रजापाल प्रगट्यो भूपाल ॥ मति-
सागर तहँ सेठ सुजान । ताको भूप करै सन्मान ॥ २ ॥ तासु
तिया गुणसुंदरि नाम । सात पुत्र ताके अभिराम ॥ षट्सुत
भोग करै परणीत । बालरूप गुणधर सुविनीत ॥ ३ ॥ सहस्र
कूट शोभित जिनधाम । आये यतिपति खंडितकाम । सुनि
मुनि आगम हर्षित भये । सर्व लोग बंदनको गये ॥ ४ ॥
गुरुवाणी सुनिकै गुणवती । सेठिन तबै करी वीनती ॥
प्रभो सुगमव्रत देहु बताय । जासों रोगशोक सब जाय ॥५॥
करुणानिधि भाखहिं मुनिराय । सुनो भव्य तुम चित्त लगाय॥
जब अषाढ़ सुदि पक्ष विचार । तब कीजै अंतिम रविवार
॥ ६ ॥ अनशन अथवा लघु आहार । लवणादिक जु करै
परिहार ॥ नवफलयुत पंचामृतधार । वसुप्रकार पूजो भवहार
॥ ७ ॥ उत्तम फल इक्यासी जान । नवश्रावक घर दीजे
आन ॥ या विध कर नववर्ष प्रमाण । जातैं होय सर्व कल्याण
॥ ८ ॥ अथवा एक वर्ष इक सार । कीजे रविव्रत मनहिं
विचार ॥ सुन साहुन निज घरको गई । व्रत निंदाकर निंदित
भई ॥ ९ ॥ व्रत निंदातैं निर्धन भये । सातहि पुत्र जु अवध-
पुर गये ॥ तहँ जिनदत्त सेठ घर रहैं । पूर्वदुःकृतका फल लहैं
॥ १० ॥ मात पिता गृह दुःखित सदा । अवधिसहित मुनि
पूछे तदा ॥ दयावंत मुनि ऐसें कह्यो । व्रत निंदासे तुम दुख
लह्यो ॥ ११ ॥ सुनि गुरुवचन बहुरि व्रत लयो । पुण्य कियो
घरमें धन भयो ॥ भविजन सुनो कथा संबंध । जहँ रहते थे

वे सब नंद ॥ १२ ॥ एक दिवस गुणधर सुकुमार । घास लेय आयो गृहद्वार ॥ क्षुधावंत भावजपै गयो । दंत बिना नहिं भोजन दयो ॥ १३ ॥ बहुरि गयो जहां भूल्यो दंत । देख्यो तासों अहिलिपटंत ॥ फणिपतिकी तहँ विनती करी । पद्मावति प्रगटी सुंदरी ॥ १४ ॥ सुंदर मणिमय पारसनाथ । प्रतिमा पंचरत्न शुभ हाथ ॥ देकर कह्यो कुंवर कर भोग । करो क्षणक पूजासंयोग ॥ १५ ॥ आनाबिंब निज घरमें धर्‌यो । तिहकर तिनको दारिद हर्‌यो ॥ सुख विलास सेवै सब नंद । नितप्रति पूजैं पास जिनंद ॥ १६ ॥ साकेतानगरी अभिराम । सुंदर बनवायो जिनधाम ॥ करी पतिष्ठा पुण्य सँयोग । आये भविजन संग सु लोग ॥ १७ ॥ संघ चतुर्विधिको सनमान । कियो दियो मनवांछित दान ॥ देख सेठ तिनकी संपदा । जाय कही भूपतिसे तदा ॥ १८ ॥ भूपति तब पूछ्यो विरतंत । सत्य कह्यो गुणधर गुणवंत ॥ देख सुलक्षण ताको रूप । अति आनंद भयो सो भूप ॥१९॥ भूपतिगृह तनुजा सुंदरी । गुणधरको दीनी गुणभरी ॥ कर विवाह मंगल सानंद । हय गय पुरजन परमानंद ॥ २० ॥ मनवांछित पाये सुख भोग । विस्मित भये सकल पुरलोग ॥ सुखसों रहत बहुत दिन भये । तब सब बंधु बनारस गये ॥ २१ ॥ मातपिताके परसे पांय । अति आनँद हिरदै न समाय ॥ विघट्यो विषम विषम वीयोग । भयो सकल पुरजन संयोग ॥ २२ ॥ आठ सात सोलहके अंक । रविवृत कथा रची अकलंक ॥ थोडो अर्थ ग्रंथ विस्तार । कवीश्वर जो गुणसार ॥ २३ ॥ यह वृत जो नर नारी

करें। सो कबहूं दुर्गति नहिं परें ॥ भावसहित सो शिवसुख लहैं। भानुकीर्त्ति मुनिवर इमि कहैं ॥ २४ ॥

इति श्रीरविव्रतकथा समाप्ता ॥

१४९। नन्दीश्वरव्रतकथा।

दोहा—चरण नमों जिनराजके, जासों दुरित नशाय।
शारद वंदों भावसों, सद्गुरु सदा सहाय ॥ १ ॥

जंबूदीप सुदर्शन मेरु। रह्यो ताहि लवणोदधि घेर ॥ मेरुसे दक्षिण भारत खेत। मगधदेश सुखसंपति हेत ॥ २ ॥ राजगृही नगरी शुभ बसै। गढ़ मठ मंदिर सुंदर लसै ॥ श्रेणिक राज करै सु प्रचंड। जिन लीनों अरिगणपै दंड ॥ ३ ॥ पटरानी चेलना सुजान। सदा करै जिन पूजा दान ॥ सभा मध्य बैठो सो जाय। बनमाली शिर नायो आय ॥ ४ ॥ दो कर जोड़ करै सो सेव। विपुलाचल आये जिनदेव ॥ वर्द्धमानको आगम सुन्यो। जन्म सुफल अपने चित गुन्यो ॥५॥ राजा रानी पुरजन लोग। बंदन चले पूजने योग ॥ चलत चलत सो पहुंचे तहां। समोशरण जिनवरका जहां ॥ ६ ॥ दे प्रदक्षिणा भीतर गये। वर्द्धमानके चरणों नये ॥ पुनि गणधरको कियो प्रणाम। हर्षितचित्त भयो अभिराम ॥ ७ ॥ दशविध धर्म सुने जिन पास। जातैं गयो चित्तको त्रास ॥ दोकर जोड़ नृपति बीनयो। अति प्रमोद मेरे मन भयो ॥८॥ प्रभुदयाल अब कृपा करेव। व्रत नंदीश्वर कहु जिन देव ॥ अरु सब विधि कहिये समझाय। भावसहित यों पूछी राय ॥ ९ ॥ चारज्ञानधर गणधर कहै। कौशलदेश स्वर्ग सम रहै।

ताके मध्य अयोध्यापुरी। धनकन सुखी छत्तीसों कुरी ॥१०॥ तिहिंपुर राज करै हरिसेन। त्याग तेज बल पूरण सेन। वंश इच्छाक प्रगट चक्रेश। आज्ञा धरै छखंड प्रदेश ॥११॥ पाट-बंध रानी नृप तीन। गंधारी जेठी गुणलीन॥ प्रियमित्रा रूपाश्री नाम। साधै धर्म अर्थ अरु काम॥ १२॥ सुखसों रहत बहुत दिन भये। ऋतु वसंत वन राजा गये॥ जल-क्रीड़ा बनक्रीड़ा करै। हास्य विलास प्रीति अनुसरै॥ १३॥ ता बन मध्य कल्पतरु मूल। चंद्रकांतिमणि शिलानुकूल॥ मंडपलता अधिक विस्तार। चारण मुनि आये तिहँ बार॥१४॥ आरिञ्जय अमितंजय नाम। सोम दयालु धर्मके धाम॥ राजा रानी पुरजन नारि। देखत मुनि तिन दृष्टि पसारि॥ १५॥ सब नर नारि अनंदित भये। क्रीडा तज मुनिबंदन गये॥ त्रिया पुरुष चरणों अनुसरे। अष्टद्रव्य मुनि पूजै खरे॥१६॥ धर्मध्यान कह्यो मुनिराय। श्रद्धासहित सुन्यो कर भाय॥ राजा प्रश्न कियो मुनि पास। सुन्यो धर्म भयो चित्तहुलास॥ १७॥ दलबल सहित संपदा घनी। और भूमि षट्खंड जु तनी॥ महा पुण्य जो यह फल होय। गुरुबिन ज्ञान न पावै कोय॥ १८॥ बार बार बिनवै कर सेव। कहो भवांतर पूरब देव॥ अवधिज्ञान बल मुनिवर कहै। पुर अहिक्षेत्र बनिक इक रहै॥ १९॥ सुखित कुवेरमित्र ता नाम। साधै धर्म अर्थ अरु काम॥ जेष्ठपुत्र श्रीवर्म्म कुमार। मध्यम जयवर्मा गुण सार॥२०॥ लघु जयकीर्त्ति कीर्त्ति विख्यात। तीनों शुभ आनंदित गात॥ एक दिवस उपज्यो शुभकर्म। बनमें आये मुनि

सौधर्म ॥ २१ ॥ सेठपुत्र मुनिवर बंदियो । श्रीवर्मा जु अठाई लियो ॥ नंदीश्वर व्रत विधिसों पाल । भवभव पापपुंजको जाल ॥२२॥ अंतसमाधिमरणको पाय। इस पुर वज्रबाहु नृपराय॥ ताके विमला रानी जान । तुम हरिसेन पुत्र भये आन ॥२३॥ पूरब व्रत पाले अभिराम । तासों लह्यो सुक्खको धाम ॥ जय-वर्मा जयकीरति वीर । । निकटभव्य गुणसाहस धीर ॥ २४॥ वंदे गुरु जु धुरंधर देव । मनवचकायकरी बहु सेव ॥ तब मुनि पंच अणुव्रत दिये । दोनों भावसहित व्रत लिये ॥ २५॥ अरु नंदीश्वरव्रत तिन लियो । अंत समाधि मरण तिन कियो ॥ हस्तनागपुर शुभ जहँ बसै । तहां विमल वाहन नृप लसै ॥२६॥ ताके नारि श्रीधरा नाम । आरिंजय अमितंजय धाम ॥ पुत्र युगल हम उपजे तहां । पूर्वपुण्य फल पायो जहां ॥ २७॥ गुरु समीप जिनदिक्षा लई । तपबल चारण पदवी भई ॥ यासों हम तुम पूरव भ्रात । देखत प्रेम ऊपजै गात ॥ २८ ॥ पूरबवृत-नंदीश्वर कियो । तासों राज चक्रपद लियो ॥ अब फिर वृत नंदीश्वर करो । तातैं स्वर्गमुक्तिपदवरो ॥ २९ ॥ तब हरिसेन कहै कर जोर । वृत नंदीश्वर कहो बहोर ॥ मुनिवर कहैं द्वीप आठमो । तास नाम नंदीश्वरनमो ॥ ३० ॥ ताके चहुंदिश पर्वत परे । अंजन दधिमुख रतिकर धरे ॥ तेरह तेरह दिश दिश जान । ये सब पर्वत बावन मान ॥ ३१ ॥ पर्वत पर्वत पर जिन गेह । तस परिमाण सुनो धर नेह ॥ सौ योजन ताका आयाम । अरु पचास विस्तार सुताम ॥ ३२ ॥ उन्नत है योजन पचीस । सुर तहँ आय नवावें शीस ॥ अष्ठोत्तर शत प्रतिमा

जान। एक एक चैत्यालय मान॥ ३३॥ गोपुर मणिमयके प्राकार। छत्र चमर ध्वज बंदनवार॥ प्रातिहार्य विधि शोभा भली। तिन रवि कोटि सोम छबि छली॥ ३४॥ ताही द्वीप सुरपति आय। पूजा भक्ति करैं वहु भाय॥ देव अव्रती व्रत नहि करै। भाव भक्ति कर पातक हरैं॥३५॥ तास द्वीप संबंधी सार। व्रत नंदीश्वरको अधिकार॥ यहां कह्यो जिनवर सु प्रकाशि आदि अनादि पुण्यकी राशि॥ ३६॥ जो व्रत मध्य भावसों करैं। ते भव जन्म जरामय हरैं॥ ता व्रतको सुनिये अधिकार वर्ष वर्षमें त्रय त्रय बार॥३७॥ अषाढ कार्तिक अरु जो फाग। शाखा तीन करो अनुराग॥ आठहिदिन पूनो परजंत। भक्ति सहित कीजे व्रत संत॥ ३८॥ सातेंको एकासन करो। यथा समय जिनवर मन धरो॥ आठेंके दिन कर उपवास। जासों कटै कर्मकी त्रास॥३९॥ करो प्रथम जिनको अभिषेक। जातैं पातक जाय अनेक॥ अष्टप्रकारी पूजा करो। मुखपरमेष्टि पंच उच्चरो॥ तादिन व्रत नंदीश्वर नाम। ताको फल सुनियो अभिराम॥ फल उपवास लक्ष दश जान। श्रीजिनवरने कियो बखान॥ ४१॥ दूजे दिन जिन पूजा करो। पात्र दान दे पातक हरो॥ अष्टविभूति नाम दिन सोय। ता दिन एकासन कर लोय॥ ४२॥ फल उपबास सहस दश होइ। अब तीजो दिन सुनिये लोइ॥ जिनपूजा कर पात्रहि दान। भोजन पानी भात प्रमान॥ ४३॥ नाम त्रिलोकसार दिन कह्यो। साठ लाख प्रोषध फल लह्यो॥ चतुर्थ दिन कर अवमौदर्य। नाम चतुर्मुख दिन सो हर्य॥ ४४॥ तस उपवास लक्ष फल होइ। पंचम दिन

विधि करियो सोइ ॥ जिनपूजा एकासन करो। हयलक्षण नाम जु दिन धरो ॥ ४५ ॥ फल चौरासी लक्ष उपास। जासों होय भ्रमण भव नास ॥ षष्टम दिन जिनपूजा दान। भोजन भात आमिली पान ॥ ४६ ॥ तादिन नाम स्वर्गसोपान। वृत चालीस लक्ष फल जान ॥ सप्तम दिन जिनपूजा दान। कीजे भविजनको सन्मान ॥ ४७ ॥ सबसम्पती नाम दिन सोइ। भोजन भात त्रिवेली होय ॥ फल उपवास लक्षको जान। अष्टम दिन व्रत चितमें आन ॥ ४८ ॥ कर उपवास कथा रुचि सुनो। पात्र दान दे शुभ कृत गुनो ॥ इंद्रध्वजावृत दिन तस नाम। सुमरो जिनवर आठों जाम ॥ ४९ ॥ तीन करोड़ अति लाख पचास। यह फल होय हरै सब त्रास ॥ इहविधि आठ वर्षमें सोइ। भाव सहित कीजे भवि लोइ, ॥ ५० ॥ उत्तम आठ वर्ष विधि जान। मध्यम पांच, तीन लघु मान ॥ उद्यापनविध पूर्वक सचो। वेदीमध्य मांडनो रचो ॥ ५१ ॥ जिन पूजा रु महा अभिषेक। चंद्रोपम ध्वज कलश अनेक ॥ छत्र चमर सिंहासन करो। बहुविधि जिनपूजो अघ हरो ॥ ५२ ॥ चारों दान सुपात्रहि देहु। बहुत भक्ति कर विनय करेहु ॥ बहुविध जिनप्रभावना होइ। शक्ति समान करो भवि लोइ ॥ ५३ ॥ उद्यापनकी शक्ति न होय। तो दूनो व्रत कीजे सोइ ॥ जिन यह व्रत कीनो अभिराम। तिन पदलियो जु सुखको धाम ॥ ५४ ॥ यह व्रत पूर्व महाफल लियो। प्रथम ऋषभ जिनवरने कियो ॥ अनँतवीर्य अपराजित पाल। चक्रवर्तिं पदवीमहँ हाल ५५ ॥ सिरीपाल मैना सुंदरी। वृतकर कुष्टब्याधि सब हरी ॥ बहुतक नर

नारी वृत कियो । तिन सब अजर अमरपद लियो ॥ ५६ ॥ सुन्यो विधान राय हरिसेन । अति प्रमोद मुख जंपै बैन ॥ सब परवारसहित वृत लियो । मुनिवर धर्म प्रीतिकर दियो ॥५७॥ वृतकर फिर उद्यापन कर्यो । धर्मध्यान कर शुभपद धर्यो ॥ अंत समाधिमरणको पाय । भयो देव हरिसेन सुराय ॥५८॥ पर्यायांतर जैहैं मुक्ति । श्रेणिक सुन्यो सकल वृतयुक्ति ॥ गौतम कह्यो सकल अधिकार । सुन्यो मगधिपति चित्त उदार ॥५९॥ जो नरनारी यह वृत करैं । निश्चय स्वर्गमुक्ति पद धरैं ॥ संकट रोग शोक सब जाहिं । दुख दरिद्रता दूर विलाहिं ॥६०॥ यह वृत नंदीश्वरकी कथा । हेमराज सु प्रकाशी यथा ॥ शहर इटावा उत्तम थान । श्रावक करैं धर्म शुभ ध्यान ॥ ६१ ॥ सुनैं सदा ये जैन पुरान । गुणीजनोंका राखैं मान ॥ तिहठां सुन्यो धर्म संबंध । कीनी कथा चौपाई बंध ॥ ६२ ॥ कहैं सुनैं देवैं उपदेश । लहैं भावसों पुन्य विशेष ॥ जाके नाम पाप मिट जांय । तिहं जिनवरके वंदों पांय ॥ ६३ ॥

इति श्री नंदीश्वरव्रतकथा समाप्ता ।

ग्यारहवां अध्याय ।

जैनकथा संग्रह ।

१५० । निशिभोजनभुंजनकथा ।

दोहा—नमों सारदा सार बुध, करैं हरैं अघ लेप ।
निशिभोजनभुंजन कथा, लिखूं सुगम संछेप ॥ १ ॥

चौपई ।

जंबूदीप जगत विख्यात । भरतखंड छवि कहिय न जात ॥

तहां देश कुरुजांगल नाम। हस्तनागपुर उत्तम ठाम ॥२॥ यशो-भद्र भूपति गुणवास। रुद्रदत्त द्विज प्रोहित तास॥ अश्वमास तिथि दिन आराध। पहिली पडवा कियो सराध॥ ३ ॥ बहुत विनयसों नगरी तने। न्योत जिमाये ब्राह्मण घने॥ दान मान सवहीकों दियो। आप विप्र भोजन नहिं कियो ॥४॥ इतने राय पठायो दास। प्रोहित गयो रायके पास॥ राजकाज कछु ऐसो भयो। करम करावत सब दिन गयो ॥५॥ घरमें रात रसोई करी। चुल्हे ऊपर हांडी धरी॥ हींग लेन उठि बाहर गई। यहां विधाता औरही ठई।६। मेंडक उछल पर्यो तामाहि। त्रिया तहां कछु जान्यो नाहिं। बैंगन छोंक दिये तत्काल। मेंडक मर्यो होय बेहाल ॥७॥ तबहु विप्र नहिं आयो धाम। धरी उठाय रसोई ताम॥ पराधीनकी ऐसी बात। औसर पायो आधी रात ॥८॥ सोय रहे सब घरके लोग आग न दीवा कर्म संयोग॥ भूखो प्रोहित निकसै प्रान। ततछिन बैठो रोटी खान॥९॥ बेंगनभोलै लीनों ग्रास। मेंडक मुंहमें आयो तास॥ दांतन तले चब्यो नहिं जबै। काढ़ धर्यो थालीमें तबै॥ १०॥ प्रात हुये मैंडक पहिचान। तौ भी विप्र न करी गिलान॥ थिति पूरी कर छोड़ी काय। पशुकी योनी उपज्यो जाय ॥११॥

सोरठा छंद।

घुघू काग विलाव, सावर गिरथ पखेरुआ।
सूकर अजगर भाव, बाघ गोह जलमें मगर॥ १२॥
दश भव इहविधि थाय, दसों जन्म नरकहिं गयो।
दुर्गति कारन पाय, फल्यो पाप वटबीजवत॥ १३॥

दोहा—निशिभोजन करिये नहीं, प्रगट दोष अविलोय।
परभव सब सुख संपजै, इह भवरोग न होय ॥ १४ ॥

छप्पय छंद।

कीडी बुधबल हरै, कंपगद करै कसारी। मकडी कारण पाय कोढ उपजै दुख भारी ॥ जुआं जलोदर जनै फाँस गल विथा बढावै। बाल सबै सुरभंग वमन माखी उपजावै ॥ तालुवे छिद्र बीछू भखत, और व्याधि बहु करहिं सब। यह प्रगट दोष निशिअसनके परभव दोष परोक्ष फल ॥ १५ ॥

दोहा—जो अघ इहभव दुख करै, परभव क्यों न करेय।
डसत सांप पीडै तुरत, लहर क्यों न दुख देय ॥ १६ ॥
सुवचन सुन डाहारजै, मूरख मुदित न होय।
मणिधर फण फेरै सही, नहीं सांप वह होय ॥ १७ ॥
सुवचन सतगुरुके वचन, और न सुवचन कोय।
सतगुरु वही पिछानिये, जा उर लोभ न होय ॥ १८ ॥
भूधर सुवचन सांभलो, स्वपरपक्ष कर बौन।
समुद रेणुका जो मिलै, तोडेतैं गुण कौन ॥ १९ ॥

इति निशिभोजनभुंजकथा समाप्ता।

१५१। अठारह नातेकी कथा।

दोहा—पंच परमगुरु प्रणमि कर, जिनवाणी उरधार।
अट्ठारह नाते कहूं, भवि जीवन हितकार ॥ १ ॥

चौपाई १५ मात्रा।

जंबूद्वीप दिपनमें सार। लख जोजन है गोल अकार।
भरतक्षेत्र दच्छनदिस तास। उज्जयनी तहं खास ॥ २ ॥

विश्वसेन नृप राज्यहि करै । पालै प्रजानीति अनुसरै ॥
तामैं सेठ सुदत्त जु गुनी । सोरह कोटि द्रव्यको धनी ॥ ३ ॥
वसंततिलका वेश्या एक । घरमैं राखी रहित विवेक ॥
ताके संग रमहि दिनरात । तसफल गर्भ रह्यो सुखपात ॥ ४ ॥
फिर वह वेश्या रुगनी भई । तवहि सेठ तिहं काढ़ जु दई ॥
अपने घर वह वेश्या गई । कुछ दिन गये निरोगी भई ॥ ५ ॥
ताके सुत कन्या दो बाल । जुगल भये सुंदर सुकुमाल ॥
तिन्हैं देख अति दुःखित सोय । तिन्हैं लपेटी कंबल दोय ॥
दरवाजे उत्तर सुत डार । कन्या डारी दखन दुवार ॥
प्रातहि वनिजारो इक आय । कन्या वानै लई उठाय ॥ ७ ॥
अपनी तियको जाकर दई । कन्या देख जु हर्षित भई ॥
तानैं पाली तन मन लाय । 'कमला' नाम धर्‌यो सुखदाय ॥८॥
साकेतापुर वासी एक । वणिक 'सुभद्र' धरै सुविवेक ॥
तिहँ लीनो वह पुत्र उठाय । तस तिय पाल्यो तिहँ मनलाय ॥
ताको नाम धर्‌यो धनदेव । वढत रह्यो शशि सम स्वयमेव ॥
व्याह जोग दोनों ह्वै गये । दोनों वणिक विचारत भये ॥१०॥
यह सुंदर जोड़ी सुखदाय । व्याह दिये दोनों मनलाय ॥
भाई वहन युग उतपन भये । कर्मयोग तियपति ह्वै गये ॥११॥
दोहा—सुनहु भविकजन कथन अव, पूर्व करम अनुसार ।
वणिजहेत धनदेव सो, गयो उज्जैन मझार ॥ १२ ॥

चौपाई ।

तहँ वसंततिलका तस मात । रहै उजैनीमैं बहु ख्यात ॥
तासों प्रीत करी धनदेव । रमै मातसौं वह स्वयमेव ॥ १३ ॥

ताको फल इक पुत्र जु भयो। नाम वरुण ताको धर दयो ॥
यह तो कथन रह्यो इह ठौर। आगैं भयो सुनो जो और ॥

दोहा—अवधिज्ञानजुत एक मुनि, कमला द्वारै आय।
तिहँ पड गाह्यो भावजुत, माथा धुनि फिरजाय ॥१५॥
कमला मुनि ढिंग जायकर, प्रश्न कियो शिरनाय।
मो घरतैं पाछे फिरे, कारण को मुनिराय ॥ १६ ॥

चौपाई।

तब मुनि बोले सुनि चितलाय। तेरो व्याह भ्रात संग थाय ॥
तुम दोनों वेश्या संतान। यह लखि हम आये बन थान ॥१७॥
तो पति पुनि उज्जयनी जाय। रमहिं मातसँग मन हुलसाय ॥
ताको फल इक पुत्र जु भयो। वरुण नाम ताको घर दयो ॥
यह सुन कमला कंपित भई। है विराग दीक्षा तब लई ॥
व्रत आर्याके धारे सार। तबहि गई उज्जयनिमझार ॥१९॥
निजमाता वेश्या घर जाय। झूलै वरुण बाल तिहँ ठांय ॥
हे बालक तेरे संग मोर। छह नाते हैं सुन चितचोर ॥२०॥

वरुणके साथ छह नाते।

प्रथमहिं मेरी मातैं जायो, तातैं मेरो है तू भ्रात।
दूजे तू सौंतनको सुत है, तातैं मेरो पुत्र विख्यात ॥
देवर भी मेरा लगता है, क्योंकि तू पतिका लघु भ्रात।
होय भतीजा भी तू मेरे सगे भ्रातका पुत्रजु ख्यात ॥

भावार्थ—

१—प्रथम तो तू मेरी माताके उदरसे पैदा हुआ इस कारण मेरा छोटाभाई है।
२—दूसरे मेरे पति धनदेवकी स्त्री, मेरी सौत, उसका तू पुत्र सो मेरा भी पुत्र है
३—तीसरे धनदेव मेरे पति उनका तू छोटाभाई इसकारण तू मेरा देवर भी है
४—चौथे धनदेव मेरे भाईका तू पुत्र है इस कारण मेरा भतीजा भी है।

मेरी माका पति धनदेव जु, तातैं वह मो पिता भया।
पितुका छोटा भाई तातैं तू काका मम होय गया॥
सौतिनका सुत है धनदेव जु वह मेरा भी पुत्रजु होय।
पूतका पूत भया पोता तू, यह नाते छह मेरे जोय॥२२॥

५—पांचवें मेरी माताका पति धनदेव वह मेरा पिता, पिताका छोटा भाई, मेरा काका भी हुआ।

६—छट्ठे धनदेव सौतनका पुत्र होनेसे वह मेरा भी पुत्र, पुत्रका पुत्र होनेसे मेरा दादा भी हुआ।

दोहा—वसंततिलका रोषकर आई कमला पास।
तू को है मो सुतहि सँग, नाते करत प्रकास॥ २३॥
कमला बोली मात सुन, छह नाते तो संग।
भिन्न भिन्न क्रमसे कहूं, तामैं कछू न भंग॥ २४॥

वसंततिलका वेश्याके साथ छह नाते।

मैं धनदेव जुगल तो उरसे पैदा हैं तातैं तू मात।
फिर तू भोजाई है मेरी भ्रात तिया जगमैं विख्यात॥
तू माता धनदेव पिता मम, पितुकी मा दादी जु थई।
मो पतिकी तू दूसरि तिय है, तातैं मेरी सौति भई॥
सौत पुत्रकी तू तिय है, तातैं तू पुत्रबधू मेरी।
मो पति जो धनदेव उसीकी, माता तू सासू हैरी॥
या विध छह नाते सुनते ही, तहां जु आया है धनदेव।
तुमरे संग भी छहनाते हैं, सुन लो कान लगा स्वयमेव॥२६॥

भावार्थ-

१—प्रथम तो मैं और धनदेव तेरे उदरसे युगल हुये इस कारण तू मेरी माता है।

२—दूसरे धनदेव मेरा भाई उसकी तू स्त्री होनेसे मेरी भोजाई है।

३—तीसरे तू मेरी माता और माताका पति धनदेव मेरा पिता हुआ, पिताकी माता इसकारण तू मेरी दादी है।

४—चौथे मेरे पति धनदेवकी तू दूसरी स्त्री है इसकारण मेरी सौत हुई।

५—पांचवें सौतका पुत्र धनदेव मेरा भी पुत्र हुआ उसकी स्त्री तू मेरी पुत्रवधू हुई।

६—छट्ठे मेरे पति धनदेवकी तू माता, इसकारण मेरी तू सास भी हुई।

धनदेवके साथ छह नाते।

प्रथम भ्रात है फिर पति होगये, माताके पति हो मम तातं।
वरुण मेरा काका है ताके पिता भयेतैं दादौ भ्रात ! ॥
मेरे शौत पुत्र हो तुम तातैं मेरे भी पुत्र भये।
वेश्या मेरी सास तास पति, तातैं मेरे सशुर थये ॥ २७ ॥

भावार्थ—

१—प्रथम तो तू और मैं इस वेश्याके उदरसे जुगल उत्पन्न हुये इसकारण मेरा सगा भाई है।

२—दूसरे तेरा मेरा विवाह होगया इस कारण तू मेरा पति है।

३—तीसरे मेरी माता इस वेश्याके पति होनेसे तुम मेरे पिता भी हुये।

४—चौथे पिताका छोटा भाई वरुण, मेरा काका, काकेका पिता होनेसे तुम मेरे दादा हुये।

५—पांचवें वेश्या मेरी सौत, उसके तुम पुत्र हो इस कारण मेरे भी तुम पुत्र हुये।

६—छट्ठे तुम मेरे पति, पतिकी माता मेरी सास हुई और सासके पति होनेसे मेरे ससुर भी हुये।

दोहा—वेश्याके संग रमनतैं, एकहि भवके मांय।
एक जीवके साथमें, नाते अठदश थांय ॥ २८ ॥

चौपाई।

सुनकर अचरज जुत सब भये। होय विरागी मुनिढिग गये।
मुनिने भव विचित्रता कही। सुन सब श्रावक दीक्षा गही ॥२९॥
व्रत धर नष्ट किये बहु कर्म। शुभगति पा बहु भोगे शर्म ॥
वेश्या संग पाय संताप। धर्म धार नाशे बहु पाप ॥ ३० ॥

तातैं वेश्या सँग तुम तजो। धर्मधार जिनवरको भजो॥
पन्नालाल बाकलीवार। अर्ज करत यह बारंबार॥ ३१॥

इति अठारह नाते समाप्त।

१२। बारहवां अध्याय।

उपदेश संग्रह।

१५२। तेरहकाठिया चोर।

दोहा—जे वटपारे बाटमें, करहिं उपद्रव जोर।
तिनहिं देश गुजरातमें, कहैं काठिया चोर॥१॥
त्यों यह तेरह काठिया, करहिं धर्मकी हानि।
तातैं कछु इनकी कथा, कहुं विशेष बखानि॥२॥
जूआ[1] आलस[2] शोक[3] भय[4], कुकथा[5] कौतुक[6] कोह[7]।
कृपणबुद्धि[8] अज्ञानता[9], भ्रम[10] निद्रा[11] मद[12] मोह[13]॥३॥

१५ मात्रा चौपाई।

प्रथम काठिया जूआ जान। जामैं पंच वस्तुकी हान।
प्रभुता हटै घटै शुभ कर्म। मिटै सुजश विनशै धनधर्म॥१॥
द्वितिय काठिया आलसभाव। जासु उदय नाशै विवसाव॥
बाहिर शिथिल होंय सब अंग। अंतर धर्मवासना भंग॥२॥
ठग तीसरो शोक संताप। जासु उदय जिय करै विलाप॥
सूतक पातक जिहँपर होय। धर्मक्रिया तहँ रहै न कोय॥३॥
भय चतुर्थ काठिया बखान। जाके उदय होय बल हान॥
उर कंपै नहिं फुरै उपाय। तब सुधर्म उद्यम मिटि जाय॥४॥
ठग पंचम कुकथा बकबाद। मिथ्यापाठ तथा ध्वनिनाद॥
जबलौं जीव मगन इस माहिं। तबलौं धर्मवासना नाहिं॥५॥

कौतूहल छट्ठम काठिया। भ्रम विलाससों हरषै हिया॥
मृषा वस्तु निरखै धरिध्यान। विनशि जाय सत्यारथ ज्ञान॥६॥
कोप काठिया है सातमा। अग्निसमान जहां आतमा॥
आपन दाहि औरको दहै। तहाँ धर्मरुचि रंच न रहै॥७॥
कृपणबुद्धि अष्टम बटपार। जामैं प्रगट लोभ अधिकार॥
लोभमाहिं ममता परकाश। ममता करै धर्मको नाश॥८॥
नवमा ठग अज्ञान अगाध। जासु उदय उपजै अपराध॥
जो अपराध पाप है सोय। जहां पाप तहँ धर्म न होय॥९॥
दशम काठिया भ्रम विच्छेप। भ्रमसों अशुभकर्मको लेप॥
अशुभकर्म दुरमतिकी खानि। दुरमति करै धर्मकी हानि॥१०॥
एकादशम काठिया नींद। जासु उदय जिय वस्तु न बींद॥
मन वच काय होय जड रूप। बूडै धर्म कर्मवनकूप॥११॥
ठग द्वादशम अष्टमद भार। जामें अकर रोग अधिकार॥
अकररोग अरु विनय विरोध। जहँ अविनय तहँ धर्मनिरोध॥
तेरम चरम काठिया मोह। जो विवेकसों करै विछोह॥
अविवेकी मानुष तिरजंच। धर्म धारणा धरै न रंच॥१३॥

दोहा—येही तेरह करम ठग, लेहिं रतनत्रय छीन।
तातैं संसारी दशा, कहिये तेरह तीन॥ १४॥

इति तेरह काठिया चोर समाप्त।

१५३। मोक्षपैडी।

दोहा।

इक समय रुचिवंतनो, गुरु अक्खय सुनमल्ल।
जो तुझ अंदर चेतना, वहै तुसाड़ी अल्ल॥ १॥

छंद पंजाबी भाषाका।

ए जिनवचन सुहावने, सुन चतुर छयल्ला। अक्खै रोचक शिक्खनो, गुरु दीनदयल्ला॥ इस बुज्झै बुध लहलहै, नहिं रहै मयल्ला। इसदा मरम न जानई, सो द्विपद बयल्ला॥ २॥ जिसदौ गिरदा पेचसों, हिरदा कलमल्ला। जिसना संसैतिमरसों, सूझै झलमल्ला॥ खनै जिन्हादी भूमिनौ, कुज्ञान कुदल्ला। सहज तिन्हांदा बहजसों, चित रहै दुदल्ला॥३॥ जिन्हां इका करमदा, दुविधा पद मल्ला। इक अनिष्ट असोहना, इक झांक झमल्ला॥ तिन्हां इक न सूझई, उपदेश अहल्ला। बंक कटाछे लोपना, ज्यों चंद गहल्ला॥ ४॥ जिन्हां चित इतवारसों, गुरु वचन न झल्ला। तिन्हां आगे कथन यो, ज्यों कोदों दल्ला॥ बरषै पाहन भुम्मिमें, नहिं होय चहल्ला। बोए बीज न ऊपजे, जल जाय बहल्ला॥ ५॥ चेतन इस संसारमैं, तू सदा इकल्ला। आपै रूप पिशाच है, तैं अप्पा छल्ला॥ आपै घूम्यां गिरिगयौ, किन दित्ता टल्ला। जिनसों मिलन वियोग है, तिनसों क्या तल्ला॥ ६॥ इस दुनियांदी मौजसों, तू गरब गहल्ला। भया मारखम पुरख ज्यों, छप्पर बिच बल्ला॥ सुपनैदा सुख मान तैं, अपना घर घल्ला। फिरा भरमकी भौरमें, तूं सहज बिलल्ला॥ ७॥ जोग अडंबर तैं किया, कर अंबर मल्ला। अंगविभूति लगायकें, लीनी मृगछल्ला। है वनवासी तैं तजा, घरबार महल्ला। अप्पा पर न पिछानियां, सब झूठी गल्ला॥८॥ माया मिथ्या अग्रसोच, ये तीनों सल्ला। तिहुंवादी करतूत सों,

जियदा उरझल्ला ॥ ज्यों रुधिरादी पुट्टसौं पट दीखै लल्ला। रुधिरा नलहि पखालिये नहिं होय उजल्ला ॥ ९ ॥ जब लग तेरे ज्ञानमें, होंदी हलचल्ला। सुजस वडाई लाभनो, करदा छलबल्ला ॥ तबलग, तू स्याना नहीं, क्या मारइ कल्ला। सोर करंदा पालने, ज्यों झूलै लल्ला ॥ १० ॥ किनि तूं जकरा सांकला, किनि पकरा पल्ला। भिद मकरा ज्यों उरझिया, उर जाल उगल्ला ॥ चेतनि जड संयोगमें, तैं टांका झल्ला। तुहीं छुडावहि आपको, लख रूप इकल्ला ॥ ११ ॥ जो तैं दारिद मानियां, है ठल्लमठल्ला। जो तूं मानहिं संपदा, भर दामहु गल्ला ॥ जो तूं हुआ करंकसा, अरु मोगरमल्ला। सो सब नाना रूप है, नाचै पुदगल्ला ॥ १२ ॥

जो कुरूप दुरलच्छणा, जो रूपरसल्ला। वे संघा भरि जोवना, बूढ़ा अरु बल्ला ॥ लंब मझोला ठींगना, गोरा अरु कल्ला। सो सब नानारूप हैं, निहचै पुदगल्ला ॥ १३ ॥ जो जीरण है झर पड़े, जो होय नवल्ला। जो मुरझावे सुककैं, फुल्ला अरु फल्ला ॥ जो पानीमें बह चलै, पावकमें जल्ला। सो सब नाना रूप है, निहचै पुदगल्ला ॥ १४ ॥ एक कर्म दीषै दुधा, ज्यों तुलदा पल्ला। हरुवे तन गुरुवैतसों, अध ऊरध थल्ला ॥ अशुभ-रूप शुभरूप है, दुहु दिशिनो चल्ला। धरै दुविध विस्तार ज्यों, वटबिरख जटल्ला ॥ १५ ॥ पवनपरेरै ज्यों उड़े, माटी विच गल्ला। जो अकशमें देखिये, चल रूप अचल्ला ॥ पानी पावक पौन भू, चहुंधामें रल्ला। सो सब नानारूप है, निहचै पुदगल्ला ॥ १६ ॥ खिन रोवै खिनमैं हँसै, ज्यों मदमत बल्ला। त्यों दुहुं

बादी मौजसों, वेहोश सँभल्ला ॥ ईकसवीच विनोद है, इकमैं खल फल्ला। समदृष्टी सज्जन करै, दुहुंसों हलभल्ला ॥ १७ ॥ जाति दुहूंकी एक ज्यों मणि पत्थरडल्ला। जलविथार संकोच सों, कहिये नदि नल्ला॥ उद्धत जलपरवाहमें, ज्यों भौंर बुलल्ला। त्यों इस कर्मविपाकदे, विच ऊंचा खल्ला ॥१८॥ दुहुंदा अथिर स्वभाव है, नहिं कोइ अटल्ला। ऊंच नीच इक सम करै, कलि-काल पटल्ला ॥ अध ऊरध ऊरध अधो, थिति उथलपुथल्ला। अरहटहार विहारमें, क्या ऊपर तल्ला ॥१९॥ पाया देवशरीर ज्यों, नलनीर उछल्ला। भवपूरण कर ढहि परा, फिर जल ज्यों ढल्ला ॥ पुण्यपापविच खेद है, यह भेद न भल्ला। ज्ञान क्रिया निर्दोष है, जहँ मोखमहल्ला ॥ २० ॥ वतनु तुसाड़ा मोहमें, ज्यों रोह रुहल्ला। थिति प्रवाण तुझ नो भया, गुरु-ज्ञानदुहल्ला ॥ अब घटअंतर घटगई, भवभीर चुहल्ला। परमचाह परघट भई, शिवराह सहल्ला ॥ २१ ॥ ज्ञानदिवा-कर ऊगियो, मतिकिरण प्रबल्ला। ह्वै शत खंड बिहंडिया, भ्रमतिमरपटल्ला ॥ सत्य प्रतापै भंजिया, दुर्गती दुहल्ला। अंगि अँगारै दज्झिया, ज्यों तूल पहल्ला ॥ २२ ॥

दोहा—

यह सतगुरुदी देशना, कर आस्रव दीवाड़ि।
लद्धी पैड़ी मोखदी, करमकपाट उघाड़ि ॥ २३ ॥
भवथिति जिनकी घट गई, तिनको यह उपदेश।
कहत 'बनारसिदास' यों, मूढ़ न समुझै लेश ॥ २४

इति मोक्षपैडी समाप्ता ॥

१५४ । ज्ञानपच्चीसी ।

दोहा ।

सुरनरतिरियगयोनिमैं, नरकनिगोदभमंत । महामोहकी नींदसों, सोए काल अनंत ॥ १ ॥ जैसैं ज्वरके जोरसों, भोजनकी रुचि जाय । तैसैं कुकरमके उदय, धर्मवचन न सुहाय ॥ २ ॥ लगै भूख ज्वरके गयें, रुचिसों लेय अहार । अशुभ गये शुभके जगे, जानै धर्मविचार ॥ ३ ॥ जैसैं पवन-झकोरतैं, जलमैं उठै तरंग । त्यों मनसा चंचल भई, परिगहके परसंग ॥४॥ जहां पवन नहिं संचरै, तहां न जल कल्लोल । त्यों सब परिगृह त्यागलों, मनसा होय अडोल ॥ ५ ॥ ज्यों काहू विषधर डसै, रुचिसों नीम चबाय । त्यों तुम ममतासों मढे, मगन विषयसुख पाय ॥ ६ ॥ नीम रसन परसै नहीं, निर्विष तन जब होय । मोह घटैं ममता मिटै, विषय न बांछै कोय ॥७॥ ज्यों सछिद्र नौका चढे, बूडहि अंध अदेख । त्यों तुम भवजलमें परे, बिन विवेक धर भेख ॥ ८ ॥ जहां अखंडित गुण लगे, खेवट शुद्धविचार । आतमरुचिनौका चढे, पावहु भवजलपार ॥ ९ ॥ ज्यों अंकुश मानै नहीं, महामत्त गजराज । त्यों मन तृष्णामें फिरै, गनै न काज अकाज ॥१०॥ ज्यों नर दाव उपावकैं, गहि आनै गज साधि । त्यों या मन-वश करनको, निर्मल ध्यान समाधि ॥ ११ ॥ तिमिररोगसों नैन ज्यों, लखै औरकी और । त्यों तुम संशयमैं परे, मिथ्यामतिकी दौर ॥ १२ ॥ ज्यों औषध अंजन किये, तिमिररोग मिटि जाय । त्यों सतगुरुउपदेशतैं, संशय वेग विलाय ॥१३॥

जैसे सब यादव जरे, द्वारावतिकी आगि। त्यों मायामैं तुम परे, कहां जाहुगे भागि ॥१४॥ दीपायनसों ते बचे, जे तपसी निरग्रंथ। तजि माया समता गहो, यहै मुकतिको पंथ ॥१५॥ ज्यों कुधातुके फेंटसों, घटबढ कंचनकांति। पापपुण्यकर त्यों भए, मूढातम बहुभांति ॥ १६ ॥ कंचन निजगुण नहिं तजै, वान हीनके होत। घटघटअंतर आतमा, सहजस्वभाव उदोत ॥ १७ ॥ पन्नापीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय। त्यों प्रघटै परमातमा, पुण्यपापमल खोय ॥ १८ ॥ पर्वराहुके ग्रहणसों, सूरसोम छबिछीन। संगति पाय कुसाधुकी, सज्जन होय मलीन ॥ १९ ॥ निंबादिक चंदन करै, मलयाचलकी बास। दुर्जनतैं सज्जन भए, रहत साधुके पास ॥ २० ॥ जैसें ताल सदा भरै, जल आवै चहुंओर। तैसें आस्रवद्वारसों, कर्मबंधको जोर ॥ २१॥ ज्यों जल आवत मूंदिये सूखै सरवरपानि। तैसें संवरके किये, कर्मनिर्जरा जानि ॥ २२ ॥ ज्यों बूटीसंयोगतैं, पारा मूर्छित होय। त्यों पुदगलसों तुम मिले, आतमशक्ति समोय ॥२३॥ मेलखटाई माजियै, पारा परघट रूप। शुक्लध्यान अभ्या-सतैं, दर्शन ज्ञान अनूप ॥२४॥ कहि उपदेश 'बनारसी' चेतनि अब कछु चेत। आप बुझावत आपको, उदयकरनके हेत ॥२५॥

इति श्रीज्ञानपचीसी समाप्ता।

द्यानतरायजीकृत

१५५। धर्मपचीसी।

दोहा छंद।

भव्यकमल रवि सिद्ध जिन, धर्मधुरंधर धीर।
नमूं सदा जग तमहरण, नमूं त्रिविध गुरु वीर ॥ १ ॥

पंद्रहमात्रा चौपई छंद।

मिथ्याविषयनमैं रत जीव। तातैं जगमैं भ्रमहिं सदीव॥
विविधप्रकार गहै परजाय। श्रीजिनधर्म न नेक सुहाय॥ २॥
धर्मविना चहुंगतिमैं फिरै। चौरासी लख फिर फिर धरै॥
दुखदावानलमांहि तपंत। कर्म करै सुख भोग लहंत॥ ३॥
अति दुरलभ मानुषपरजाय। उत्तम धनकुल रोग न काय॥
इस अवसरमैं धर्म न करै। फिर यह अवसर कब को वरै॥४॥
नरकी देह पाय रे! जीव। धर्म विना पशु जान सदीव॥
अर्थकाममैं धर्म प्रधान। ता बिन अर्थ न काम न मान॥ ५॥
प्रथम धर्म जो करै पुनीत। शुभसंगम आवै कर प्रीत॥
विघन हरै सब कारज सरै। धनसों चारों कोने भरै॥ ६॥
जन्मजरामृतके वश होय। तिहूंकाल जग डोलै सोय॥
श्रीजिनधर्मरसायनपान। कबहुं न रुचि उपजै अज्ञान॥ ७॥
जो कोई मूरखजन होय। गहै हलाहल अमृत खोय॥
त्यों सठ धर्मपदारथ त्याग। विषयनसों ठाने अनुराग॥ ८॥
मिथ्याग्रह गहिया जो जीव। छांडि धर्म विषयनचित दीव॥
ज्यों सठ कल्पवृक्षको तोड। वृक्ष धतूरेके बहुजोड॥ ९॥
नरदेही जानो परधान। विसर विषय कर धर्म सुजान!॥
त्रिभुवनइंद्रतने सुख भोग। पूजनीक हो इंद्रनजोग॥ १०॥
चंद्रविनानिश गजविनदंत। जैसैं तरुणनारि बिनकंत॥
धर्मविना त्यों मानुषदेह। तातैं करिये धर्मसनेह॥ ११॥
हय गयरथ पायक बहु लोग। सुभट बहुतदल चमर मनोग॥
धुजा आदि राजाविन जान। धर्म विना त्यों नरभव मान॥

जैसे गंध विना है फूल । नीरविहीन सरोवर धूल ॥
ज्यों धनविन शोभित नहिं भौन। धर्मविना त्यों नर चिंतौन॥
अरचै सदा देव अरहंत । चरचै गुरुपद करुणावंत ॥
खरचै दानधर्मसों प्रेम । न रचै विषय सकलनर एम ॥ १४ ॥
कमला चपल रहै थिर नाय । यौवन कांति जरालपटाय ॥
सुत मित नारी नावसँयोग । यह संसार सुपनका भोग ॥१५॥
यह लखि चितधर शुद्ध सुभाव । कीजे श्रीजिनधर्म उपाव ॥
यथाभाव जैसी गति गहै । जैसी गत तैसा सुख लहै ॥१६॥
जो मूरख बुद्धीकरहीन । विषयपंथरत व्रत नहिं कीन ॥
श्रीजिनभाषित धर्म न गहै । जैसी गत तैसा सुख लहै ।१७।
आलसमंद बुद्धि है जास । कपटी मगनविषयसठ तास ॥
कायरता नहिं परगुण ढकै । सो तिर्यंचजोन लहि सकै॥१८॥
आरतरौद्रध्यान नित करै । क्रोधादिक मच्छरता धरै ॥
हिंसक वैरभाव अनुसरै । सो पापिष्ट नरकगति परै ॥ १९ ॥
कपटहीन करुणा चितमाहिं । हेय उपादे भूलै नाहिं ॥
भक्तिवंत गुणवंत जु कोय । सरल सुभाव सुमानुष होय ।२०।
श्रीजिनवचनमगन तपवान । जिनपूजै दे पात्रहिं दान ॥
रहै निरंतर विषयउदास । सोही लहै सुरग आवास ॥ २१ ॥
मानुषजोन अंतकी पाय । सुन जिनवचन विषय बिसराय ॥
गहै महाव्रत दुद्धर बीर । शुक्लध्यानथिर लह शिव धीर ।२२।
धर्मकरत सुख होय अपार । पाप करत दुख विविधप्रकार ॥
बालगुपाल कहैं सब नारि । इष्टहोय सोई अवधारि ॥२३॥
श्रीजिनधर्म मुकतिदातार । हिंसाकर्म बढइ संसार ॥

यह उपदेश जान बडभाग। एक धर्मसों कर अनुराग ॥२४॥
व्रतसंयम जिनपदथुतिसार। निर्मल सम्यक भावन धार॥
अंत कषायविषयकृष करो। जो तुम मुकतिकामिनी बरो ॥२५॥
दोहा—बुधकुमुदनि-शशि-सुखकरन, भवदुखसागर जान।
कहै ब्रह्म जिनदास यह, ग्रंथ धर्मकी खान॥ २६॥
द्यानत जे बांचै सुनै, मनमें करै उछाह।
ते पावैं सुख सास्वते, मनबांछित फललाह॥ २७॥

इति श्रीधर्मपचीसी समाप्ता॥

१५६। अध्यात्मपंचासिका।

दोहा—आठ कर्मके बंधमें, बंधजीव भवबास। कर्म हरै सब गुण भरै, नमों सिद्धि सुखरास॥१॥ जगतमाहिं चहुंगतिविषै, जन्ममरणवश जीव। मुक्तिमाहिं तिहुंकालमें, चेतन अमर सदीव॥२॥ मोक्षमाहिंसेती कभी, जगमें आवै नाहिं। जगके जीव सदीव ही कर्मकाट शिव जाहिं॥३॥ पूर्वकर्म उद्योगतैं जीव करैं परिणाम। जैसें मदिरा पानतैं, करै गहल नर काम॥ ४॥ तातैं बांधै कर्मको, आठभेद दुखदाय। जैसे चिकने गातमें, धूलिपुंज जम जाय॥५॥ फिर तिन कर्मनके उदय, करै जीव बहु भाय। फिरके बांधै कर्मको, यहसंसारसुभाय॥६॥ शुभ भावनतैं पुण्य है, अशुभभावतैं पाप। दुहू अछादित जीव सो, जान सकै नहिं आप॥ ७॥ चेतनकर्मअनादिके, पावक काठ बखान। छीरनीर तिलतेल ज्यों, खान कनक-पाखान॥८॥ लाल बंध्यो गठडी विषै; भानु छिप्यो घनमाहिं सिंह पीञ्जरेमें दियो, जोर चलै कछु नाहिं॥ ९॥ नीर बुझावै

आगको, जलै टोकनीमाहिं, देह माहि चेतन दुखी, निज सुख पावै नाहिं ॥१०॥ तदपि देहसों छुटत है, अंतर तन है संग। सो न ध्यान अग्नी दहै; तब शिव होय अभंग ॥ ११ ॥ राग-दोषतैं आपही, पड़े जगतके माहिं । ज्ञानभावतैं शिव लहै, दूजा संगी नाहिं ॥१२॥ जैसे काहू पुरुषके,द्रव्य गड्यो घर-माहिं । उदर भरै कर भीखसे, व्योरा जानै नाहिं ॥ १३ ॥ ता नरसे कीनहीं कहा, तू क्यों मांगै भीख । तेरे घरमें निधि गड़ी, दीनी उत्तम सीख ॥ १४ ॥ ताके वचन प्रतीतसों, वह कीयो मनमाहिं । खोद निकाले धन बिना, हाथ परै कछु नाहिं ॥१५॥ त्यों अनादिकी जीवके, परजै बुद्धि बखान । मैं सुर नर पशु नारकी, मैं मूरख मतिमान ॥ १६ ॥ तासों सतगुरु कहत हैं, तुम चेतन अभिराम । निश्चय मुक्ति सरूप हो, ये तेरे नहिं काम ॥ १७ ॥ काललब्धि परतीतसों, लखतआपमें आप । पूरण ज्ञान भये बिना, मिटै न पुन अरु पाप ॥१८॥ पाप कहत है पुण्यको, जीव सकल संसार । पाप कहत है पुण्यको, ते बिरले मतिधार ॥ १९ ॥ बंदीखानेमें परे, जातें छूटे नाहिं । बिन उपाय उद्यम किये, त्यों ज्ञानी जग माहिं ॥ २० ॥ साबुन ज्ञान विराग जल, कोरा कपड़ा जीव । रजक दक्ष धोवै नहीं, विमल न लहैं सदीव ॥२१॥ ज्ञान पवन तप अगन बिन, दहै मूस जिय हेम । कोड़वर्षलों राखिये, शुद्ध होय मन केम ॥ दरव कर्म दो कर्मतें, भावकर्मतें भिन्न । विकलप नहीं सुबु-द्धिके, शुद्ध चेतना चिन्ह ॥ २३ ॥ चारौं नाहीं सिद्धके, तू चारौंके मांहि । चार विनासे मोक्ष है, और बात कछु नाहिं

॥२४॥ ज्ञाता जीवनमुक्त है, एक देश यह बात । ध्यान अग्नि विन कर्मवन, जलै न शिव किमि जात ॥ २५ ॥ दर्पण काई अथिर जल, मुख दीसै नहिं कोय। मन निर्मल थिर बिन भये, आप दरश क्यों होय ॥ २६ ॥ आदिनाथ केवल लह्यो, सहस वर्ष तप ठान । सोई पायो भरतजी, एक मुहूरत ज्ञान ॥२७॥ राग रोष संकल्प है, नयके भेद विकल्प । रोषभाव मिटजाय जब, तब सुख होय अनल्प ॥ २८ ॥ राग विराग दु भेदसों, दोय रूप परिणाम । रागी जगके भूमिया, वैरागी शिवधाम ॥ २९ ॥ एक भाव है हिरणके, भूख लगे तृण खाय । एक भाव मंजारके जीव खाय न अघाय ॥ ३० ॥ विविधभावके जीव बहु दीसत है जगमाहिं । एक कछू चाहै नहीं, एक तजे कछु नाहिं ॥३१॥ जगत अनादि अनंत है, मुक्ति अनादि अनंत । जीव अनादि अनंत है, कर्म दुविधि सुन संत ॥ ३२ ॥ सबके कर्म अनादिके कर्म भव्यको अन्त । कर्म अनन्त अभव्यकें तीनकाल भटकंत ॥ ३३ ॥ फरश बरन रस गन्ध सुर पांचो जानै कोय । बोलै डोलै कौन है, जो पूछे है सोय ॥ ३४ ॥ जो जानै सो जीव है, जो मानै सो जीव । जो देखै सो जीव है, जीवै जीव सदीव ॥ ३५ ॥ जात पना दो विध लसै, विषै निर्विषय भेद । निरविषयी संवर लसै विषयी आस्रव वेद ॥३६॥ प्रथम जीव श्रद्धान सो, कर वैराग्य उपाय ॥ ज्ञान किया सो मोक्ष है, यही बात सुखदाय । पुद्गलसे चेतन बँध्यो यही कथन है वेय । जीव बँध्यो निज भावसों यही कथन आ देय ॥ ३८ ॥ बन्ध लखै निज ओरसे, उद्यम करै न कोय ।

आप बंध्यो निजसों समझ, त्याग करै शिव होय ॥ ३९ ॥ यथा भूपको देखके, ठौर रीतिको जान। तब धन अभिलाषी पुरुष, सेवा करै प्रधान ॥ ४० ॥ तथा जीव सरधान कर जाने गुण परजाय। सेवै शिव धन आश धर, समता सो मिल जाय ॥ ४१ ॥ तीन भेद व्यवहारसों, सर्व जीव सब ठाम। श्रीअरहन्त परमात्मा, निश्चय चेतनराम ॥४२॥ कुगुरु कुदेव कुधर्म रति, अहंबुद्धि सब ठौर। हित अनहित सरधै नहीं, मूढनमें शिरमौर ॥ ४३ ॥ ताप आप पर पर लखै, हेय उपादे ज्ञान। अब तो देशव्रती महा, व्रती सबै मतिमान ॥ ४४ ॥ जा पदमें सब पद लसै, दर्पन ज्यों अविकार। सकल निकल परमात्मा, नित्यनिरंजन सार ॥ ४५॥ बहिरातमके भाव तज, अन्तरआतम होय। परमात्म ध्यावै सदा, परमात्म सो होय ॥४६॥ बूंद उदधि मिल होत दधि, बीती फरश प्रकाश। त्यों परमातम होत है, परमात्म अभ्यास ॥ ४७॥ सब आगमको सार ज्यों, सब साधनको धेव। जाको पूजै इन्द्र सो, सो हम पायो देव ॥ ४८ ॥ सोहं सोहं नित जपै, पूजा आगम सार। सतसंगतिमें बैठना, यहै करै व्यवहार ॥ ४९ ॥ अध्यातम-पंचाशिका, माहिं कह्यो जो सार। द्यानत ताहि लगे रहो, सब संसार असार ॥ ५० ॥ इति अध्यात्मपंचासिका।

१५७। सुवासबत्तीसी।

दोहा—नमस्कार जिनदेवको, करों दुहुं करजोर। सुवा बतीसी सुरस मैं, कहुं अरिनदल मोर ॥ १ ॥ आतम सुआ सुगुरु वचन, पढ़त रहै दिन रैन। करत काज अघरीतिके, यह

अचरज लखि नैन ॥ २ ॥ सुगुरु पढ़ावै प्रेमसों, यहू पढ़त मन लाय। घटके पट जो ना खुले, सब हि अकारथ जाय ॥ ३ ॥

चौपाई।

सुवा पढ़ाया सुगुरु बनाय। करम बनहि जिन जइयो भाय। भूले चूके कबहु न जाहु। लोभ नलिनिपै चुगा न खाहु ॥४॥ दुर्जन मोहदगाके काज। बांधी नलनी तल धर नाज ॥ तुम जिन बैठ हु सुवा सुजान। नाज विषयसुख लहि तिहं थान ॥ ५ ॥ जो बैठहु तो पकरि न रहियो। जो पकरो तो दृढ़ जिन गहियो ॥ जो दृढ़ गहो तो उलटि न जइयो। जो उलटो तो तजि भजि धइयो ॥६॥ इहविध सूआ पढ़ायो नित्त। सुवटा पढ़िके भयो विचित्त ॥ पढ़त रहै निशिदिन ये वैन। सुनत लहै सब प्रानी चैन ॥७॥ इक दिन सुवटै आई मनै, गुरु संगत तज भज गये बनै ॥ बनमें लोभ नलिन अति बनी। दुर्जन मोह दगाको तनी ॥८॥ तो तरु विषयभोग अन धरे। सुवटै जान्यो ये सुख खरे। उतरे विषयसुखनके काज। वैठ नलिनपै विलसै राज ॥९॥ बैठो लोभ नलिनपै जबै। विषय स्वाद रस लटक्यो तबै ॥ लटकत तरै उलटि गये भाव। तर मुंडी ऊपर भये पांव ॥१०॥ नलिनी दृढ़ पकरै पुनि रहै। मुखतैं वचन दीनता कहै ॥ कोउ न तहां छुड़ावनहार नलनी पकरहि करहि पुकार ॥११॥ पढ़त रहै गुरुके सब वैन। जे जे हितकर रखिये ऐन॥ सुवटा बनमें उड़ निज जाहु। जाहु तो भूल चुगा जिन खाहु ॥१२॥ नलनीके जिन जइयो तीर। जाहु तो तहां न बैठहु वीर ॥ जो तो दृढ़ जिन गहो। जो दृढ़ गहो तो पकरि न रहो ॥१३॥

जो पकरो तो चुगा न खइयो। जो तुम खावो तो उलट न जइयो॥
जो उलटो तो तज भज धइयो। इतनी सीख हृदयमें लहियो
॥१४॥ ऐसे बचन पढत पुन रहै। लोभ नलनि तज भज्यो न चहै॥ आयो दुर्जन दुर्गतिरूप। पकड़े सुवटा सुंदर भूप॥१५॥
डारे दुखके जालमझार। सो दुख कहत्त न आवै पार॥ भूख प्यास बहु संकट सहै। परवस पर्‍यो महा दुख लहै॥१६॥ सुवटाकी सुधि बुधि सब गई। यह तो बात और कछु भई॥ आय पर्‍यो दुखसागरमाहिं। अब इततैं कितको भज जाहिं॥१७॥
केतो काल गयो इह ठौर। सुवटै जियमें ठानी और॥ यह दुख जाल कटै किह भांति। ऐसी मनमें उपजी ख्यांति॥१८॥
रात दिना प्रभु सुमरन करै। पाप जाल काटन चित धरै॥ क्रम क्रम कर काट्यो अघ जाल। सुमरन फल भयो दीनदयाल॥१९॥
अब इततैं जो भजकें जाऊं। तौ नलनीपर बैठ न खाऊं॥
पायो दाव भज्यो ततकाल। तज दुर्जन दुर्गति जंजाल॥२०॥
आयो उड़त बहुर वनमाहिं। बैठ्यो नरभव द्रुमकी छाहिं॥ तित इक साधु महा मुनिराय। धर्मदेशना देत सुभाय॥२१॥ यह संसार कर्मवन रूप। तामहिं चेतन सुआ अनूप॥ पढत रहैं गुरु वचन विशाल। तौ हू न अपनी करै सँभाल॥ २२॥ लोभ नलिनपैं बैठ्यो जाय। विषय स्वाद रस लटक्यो आय। पकरहि दुर्जन दुर्गति परै। तामें दुःख बहुत जिय भरै॥२३॥ सो दुख कहत न आवै पार। जानत जिनवर ज्ञानमझार॥ सुनतैं सुवटो चौंक्यो आप। यह तो मोहि पर्‍यो सब पाप॥ २४॥ ये दुख तौ सब मैं ही सहे। जो मुनिवरने मुखतैं कहे॥ सुवटा सोचै

हियेमँझार। ये गुरु सांचे तारनहार ॥ २५ ॥ मैं शठ फिरयो करम वनमाहिं। ऐसे गुरु कहुं पाये नाहिं ॥ अब मोहि पुण्य उदै कछु भयो। सांचे गुरुको दर्शन लयो ॥२६॥ गुरु स्तुति कर बारंबार। सुमिरै सुवटा हियेमझार ॥ सुमरत आप पाप भज गयो। घटके पट खुल सम्यक् थयो ॥२७॥ समकित होत लखी सब बात। यह मैं यह परद्रव्य विख्यात ॥ चेतनके गुण निज महिं धरे। पुद्गल रागादिक परिहरे ॥२८॥ आप मगन अपने गुणमाहिं। जन्म मरण भय जिनको नाहिं ॥ सिद्ध समान निहारत हिये। कर्म कलंक सबहि तज दिये ॥२९॥ ध्यावत आप-माहिं जगदीश। दुहुंपद एक विराजत ईश ॥ इहविधि सुवटो ध्यावत ध्यान। दिन दिन प्रति प्रगटत कल्यान ॥३०॥ अनुक्रम शिवपद जियको भयो। सुख अनंत विलसत नित नयो ॥ सतसंगति सबको सुख देय। जो कछु हियमें ज्ञान धरेय ॥३१॥ केवलिपद आतम अनुभूत। घट घट राजत ज्ञान सँजूत ॥ सुख अनंत विलसै जिय सोय। जाके निजपद परगट होय ॥३२॥ सुवाबत्तीसी सुनहु सुजान। निजपद प्रगटत परम निधान ॥ सुख अनंत विलसहु ध्रुव नित्त। 'भैयाकी' विनती धर चित्त।३३। संवत सत्रह त्रेपनमाहिं। अश्विन पहले पक्ष कहाहिं ॥ दशमीं दशों दिशा परकाश। गुरु संगतितैं शिवसुखभास ॥ ३४ ॥

१५८। सप्तविसनके चौबोले।

सात विसन। दोहा।

सातविसन जगमें बुरे, बुरा इन्होंका संग।
जिसके शिर चढ़ जात हैं, केई दिखावत रंग ॥

केई दिखावत रंग संगमें, नफा नहीं सुन भाई।
अपना तन धन धर्म गुमावै, जग बदनामी छाई॥
तात मात सुत नारी छोडै, मौन लगावै भाई।
हाय हाय किस नीच जीवने, इनकी चाल चलाई॥

झड।

चालमें सब जग आया, ख्यालमैं जन्म गमाया।
पाप कर नरक सिधाया, बहुत पीछैं पछताया॥
विसनकी सुनो कहानी, कही जैसें जिनवानी।
तज्या जिन्होंने विसन जिनेश्वर तिनकी शिक्षा मानी॥ १॥

(१) जूआखेलनविसन।

जुआ खेलकर जगतमैं, हुआ मुफ्त बदनाम।
मजा नहीं इस काममैं, सजावार वसु जाम॥
सजावार वसु जाम धाम, आराम कभी नहिं पाता।
फिकरमंद मतिअंध वक्तपर, खानेको नहिं जाता॥
संग जुआरी कई रंगका, ढंग देख घबराता।
मारपीट बहु माल खायकर, तौ भी नहीं लजाता॥

झड।

लाज ज्वारीके नाहीं, दया नहिं मनके माहीं।
सत्य नहिं कहै कदाही, राज्यका चोर सदाही॥
पांडुसुत खेल किया था, नारिका दाव दिया था।
तजा जिन्होंने जुआ जिनेश्वर तिन सब सुक्ख लिया था॥२॥

(२) मांसभक्षणविसन।

श्वास श्वास पर खैरको, चाहै सकल जहान।
श्वास नाशकर होत है, मांस महा दुखदान॥
मांस महा दुखदान खानकी बात सुनत घिन आवै।

थरहर काँपै काय हाय पशु दीन बडा घबरावै ॥
बेकसूर पशुमांसलालची तनमैं छुरी चलावै ।
बडे निर्दयी जीव जगतमैं, आमिषभोजन खावै ॥

झड़ ।

भावना हिरदै खोटी, छोंककर आमिस बोटी ।
मनुष भी राक्षस जोटी, धरै शिर अघकी पोटी ॥
मांसका नाम न लेना, असनके लायक है ना ।
मांस असनको त्याग जिनेश्वर जगमैं कीरति लेना ॥ ३

(३) मदिरासेवनविसन ।

जितने नशे जहाँनमैं, सभी विनाशै ज्ञान ।
तिनमैं मदिरा अति बुरी, सही गमावै प्रान ॥
सही गमावै प्रान ज्ञानका, नाम न रहने पावै ।
मदिरा पीकैं मनुष होशमैं, कबहूं नाहिं रहावै ॥
जननी भगिनी नार न जानै, मदमातुर हो जावै ।
अति बेहोश पडा दुख भुगतै, मूरख प्रान गमावै ॥

झड़ ।

प्रान बहु जीवन खोया, ज़ादवां वंश डुबोया ।
ऋषीको क्रोध जगाया, द्वारिका दाह कराया ॥
तुच्छकी कौन कहानी, बडोंकी कालनिशानी ।
यातैं मदिरा त्याग जिनेश्वर करो धर्म सुखपानी ॥ ४ ॥

(४) शिकारविसन ।

अपने अपने प्रानकी, सभी मनावै खैर ।
हाय सिकारी बनविषै, पशु मारै बिन बैर ॥
पशु मारै बिन बैर खैरकी दया हिये नहिं लावै ।

शीत धाम सब सहै वनीमैं, भोजन भी नहिं पावै ॥
नाम भजन हरनाम त्यागकैं, मार मार मुख गावै ।
कायर क्रूर कुरंग अंगमैं, भारी चोट लगावै ॥

झड़ ।

चोटमैं हिरन सताया, दयाका नाम मिटाया ।
भगेके पीछे धाया, वीरका नाम लजाया ॥
मृगीपर हाथ चलाया, वृथा क्षत्री कहलाया ।
दुर्गतिपंथ शिकार त्यागकर, यही जिनेश्वर गाया ॥ ५ ॥

(५) चोरी विसन ।

प्रानोंसे प्यारी गिनै धनदौलत संसार ।
याके कारन नरपती, हाथ गहै तलवार
हाथ गहै तलवार समरमैं, सूरवीर शिर देते ।
नदसागर तिर जांय वणिक शिर बडी आपदा लेते ॥
कठिन कठिनकर लछमी जोडैं, सहैं सभी दुख जेते ।
हाय हाय ताको ठगता कर सहज चोर कर लेते ॥

झड़ ।

चोरकों राजा मारै, सजा दे देशनिकारै ।
लोग सबही दुतकारै, बडी बेशरमी धारै ॥
भूल मति चोरी करियो, चोरसंगतिसैं डरियो ।
डरियो जगतमझार जिनेश्वर चोरी कबहुं न करियो ॥ ६ ॥

(६) वेश्या सेवनविसन ।

नीचनकी संगत रहै, करै नीच सब काम ।
मूरखजन फँसि जांत है, देख ऊजरों चाम ॥
देख ऊजरो चाम दामकी, खातिर धरम गमावै ।

ऊंच नीचका ख्याल करै ना, सबको अंग लगावै ॥
जगकी झूंट जानि गनिकाको, मूरख मन ललचावै ।
हा धिक धिक ऐसे जीवनको, गनिका संग रहावै ॥

झड़ ।

लगै जब गनिका प्यारी, बुद्धि नशि जाय अगारी ।
क्रोडपति होय भिखारी, कर्मगति टरै न टारी ॥
भूल मति यारी करियो, देह दुरगतिसों डरियो ।
तजि गनिकाको नेह जिनेश्वर धर्मविषै मन धरियो ॥ ७ ॥

(७) परस्त्रीसेवनविसन ।

कुलकलंकदायक सदा, परकामिनिको प्यार ।
मूरखमनके हतनको, मृगनैनी तलवार ॥
मृगनैनी तलवार कलेजा, आरपार हो जावै ।
दृगकटाक्ष सर चोट लगै तब, ओट न कोई आवै ॥
ऊपर घाव प्रगट नहिं दीखै, मनही मन पछतावै ।
खानपान गृहवास खासका, मजा हाथसे जावै ॥

झड़ ।

जानकै प्रान गमावै, भेद काहू न बतावै ।
दिवसमैं निद्रा आवै, सुपनमैं नार लखावै ॥
वृथा क्यों जी ललचावै, लिखी विधिने सोइ पावै ॥
लंकपतीसे रंक भये नर, तेरी कोन चलावै ॥ ८ ॥

इति सप्तविसन चौबोला ।

अथ सूरत कवि कृत ।

१५९ । उपदेशी बारहखड़ी ।

दोहा—प्रथम नमूं अरहंतको, नमूं सिद्ध आचार ।
उपाध्याय सब साधुको, नमूं पंच परकार ॥ १ ॥

भजन करूं श्रीआदिको, अंत नाम महावीर।
तीर्थंकर चउवीसको, नमूं ध्यान धर धीर ॥ २॥
जिनधुनितैं वानी खिरी, प्रगट भई संसार।
नमस्कार ताकूं करूं, इक चित इकमन धार ॥ ३॥
ता वानीके सुनतही, बढ्यो परम आनंद।
भई सुरति कछु कहन की, बारखडीके छंद ॥

बारखडीके छंद बनाऊं यह मेरे मन आई। जैन पुराण वखानी वानी, सो मैने सुन पाई॥ गुरुप्रसाद भविजनकी संगति, यह उपजी चतुराई। सूरत कहै बुद्धि है थोरी, श्री जिननाम सहाई॥४॥ कका करत सदा फिर्‌यो, जामन मरन अनेक। लख चौरासी जोनिमें, काज न सुधर्‌यो एक॥ काज न सुधर्‌यो एक दिवाना, तैं शुभ अशुभ कमाया। तेरी भूलि तोहि दुखदाई, बहुतेरा समझाया। भटकत फिर्‌यो चहूं गतिभीतर काल अनादि गमाया। सूरत सतगुरु सीख न मानी तातैं जग भरमाया॥५॥ खक्खा खूबी मत लखो, संसारी सुखजान। यह सुख, दुखका मूल है, सतगुरु कही बखान॥ सतगुरु कही बखान जान यह, तू मति होय अयाना। विनाशीक सुख इन इंद्रिनका, तैं मीठा करि जाना॥ यह सुख जानि खानि है दुखकी, तू क्या भरम भुलाना। सूरत पछतावैगा तबही, होय नरक जब थाना॥६॥ गग्गा गुरु निरग्रंथको, सतबानी मुख भाख। अवर विकार सबै तजो, यह थिरता मन राख॥ यह थिरता मनराखि चाखि रस, जो अपना सुख चाहै। अवर सबहिं जंजाल दूर

करि ये बातैं अवगाहै ॥ पांचों इंद्रीवस करि अपनी कर्ममूल को दाहै। सूरत चेत अचेत होय मति, अवसर वीता जाहै ॥ ७ ॥ घग्धा घाट सुघाटमें, नाव लगी है आय। जो अबके चेत नहीं, तो गहरा गोता खाय ॥ गहिरा गोता खाय जाय तब कौन निकासनहारा। समय पाय मानुषगति पाई, अजहूं नाहिं सँभारा ॥ बार बार समझाऊं चेतन मानो कहा हमारा सूरत कही पुकार गुरूने, यों हो है निस्तारा ॥ ८ ॥ नन्ना नाता जगतमें, निज स्वारथ सबकोय। आन गांठि जिसदिन परै, कोउ न सँगाती होय ॥ कोउन सँगाती सगा न साथी जिसदिन काल सतावै। सब परिवार अपन स्वारथका, तेरे काम न आवै ॥ आठों मदमें छाकि रह्यो है, मैं मैं कर विललावै सूरत समझि होय मत बौरा, अवसर वीता जावै ॥९॥ चच्चा चंचल विकलमन, तिस मनको वसिआन। जबलग मन बस में नहीं, काज न होय निदान ॥ काज न होय निदान जान यह, वस नाहीं मन तेरा। पांचू इंद्री छठा चोरमन, तूं इनका भयो चेरा ॥ राग दोष अरु मोहसमीपी इनहुं आन मिल घेरा। सूरत जिसदिन मनथिर हो है, तिसदिन होय निवेरा ॥ १० ॥ छच्छा छह रस स्वादमें, रह्यो छहों रस मान। छाकि रह्यो छाडै नहीं, समुझत नाहिं अजान ॥ ससुझत नाहिं अजान जान तू इन स्वादनमें राचा। आरत चिंता लाग रही है, ज्ञानध्यानमैं काचा ॥ जैसें कर्म नचावै तोकूं, तैसा ही विधि नाचा ॥ सूरत फिरयो चहूंगतिभीतर, मिल्या न सत गुरु साँचा ११॥ जज्जा जाग सुजाग नर, यह जागनकी बार। जो अब

तू जागै नहीं, फेर न होय सँभार ॥ फेर न होय सँभार सार यह, जो अबके नहि जागै। जो जागै निरभयपद पावै, जरामरनभय भागै ॥ नातरि फेर फसै भवसागर, हांथ कछु नहिं लागै ॥ सूरत भला होय जब तेरा, संसारी सुख त्यागै ॥१२॥ झज्झा झारि पिछोरिकै, कहूं तोहि समुझाय। जामैं तैं वासा किया, सो तेरी नहिं काय। सो तेरी नहिं काय जाय सँग, तुझे अकेला जाना। तैंने घर बहुतेरे कीये, आवत जात भुलाना ॥ थावर पँच त्रस पक्षी मानुष, भयो देव कहूं दाना। सूरत छहों कायतैं भुगती आपा नहीं पिछाना ॥१३॥ नन्ना नरपद है भलो, ऐसो अवर न कोय। जे संभा तेइ तिरे, भवजलपार जु होय ॥ भवजलपार जु होय विचारै, जे इस बैर संभारा। तीनकाल जिन सही परीषह, कर्म चूर करि डारा ॥ आवत जात काल बहु बीता, लोका-लोक निहारा। सूरत जो सुख ऐसा चाहै, चेतो बेग सँवारा ॥ १४ ॥ टट्टा टाला तिन किया, ते बूडे संसार। फिरहिं भटकत जगतमें, तिनको वार न पार ॥ तिनको वार न पार कहूं है, फिरते फिरहिं विचारे। नर तिरजंचहु नरक देवगति, चारों धाम निहारे ॥ जम्मन मरन किये बहुतेरे, सहे महा-दुख भारे। सूरत कौतुक आप कमाये, कापै जाय पुकारे ॥ ॥ १५ ॥ ठट्ठा ठटकि रह्यो कहां, बेगइ क्यों न सँभाल। छोडि ठाठ संसारके जो टूटै जगजाल ॥ जो टूटै जगजाल बाउरे, बहुरि नहीं दुखपावे। सतगुरु कही मान सो शिक्षा, फेर न जगमें आवै ॥ छोडो संग कुमति खोटीको जो तुमको बहकावै। सूरत संग सुमतिकी कीजै, शिवपुर जाय दिखावै

॥ १६ ॥ डड्डा डिग मति जाय तू, अडिग होय पद साधि। दृढता करि परिणामकी, जो सुख लहै समाधि॥ जो सुख लहै समाधि व्याधितज अप्पा खोजो भाई। सिद्धरूप तेरे घट अंतर, कहां ढूंढने जाई ॥ जड पुद्गलको भिन्न जान तू, मिटै करम दुखदाई। सूरत आप आपमें साधै, यह सतगुरु फरमाई ॥ १७॥ ढड्ढा ढोरी छोडदे, ढिग इनके मत जाय। कुगुरु कुदेव कुज्ञानको, तू मति चित्त लगाय॥ तू मति चित्त लगाय भाव तजि कुगुरु कुदेव कुज्ञानी। ये तोकूं दुरगति दिखलावैं, सोदुखमूलनिशानी॥ इनतैं काज एक नहिं सुधरै, करम भरमके दानी। सूरत तजि बिपरीत इन्होंकी, सतगुरु आप बखानी ॥१८॥ णण्णा रण ऐसा करो, संवरशस्त्र सँभार। कर्मरूप ये अरि बडे, तिनहिं ताकिकरि मार॥ तिनहिं ताकि करि मार, निवारो कर्म रूप अरि सोई। है अनादिके ये दुखदाई, तेरी जाति विगोई॥ नारायण प्रति हरि हर चक्री, यातैं बचे न कोई। सूरत ज्ञानसुभट जब जागे, तिन इनकी जड खोई ॥ १९॥ तत्ता तन तेरा नहीं, जामैं रह्यो लुभाय। तांता तोरै तनकमैं, ताहि कहा पतियाय॥ ताहि कहा पतियाय पाय सुख, है रह्यो याको वासी। छिनमैं मरै छिनकमें उपजै, होय जगतमें हांसी॥ याके संग बढै बहु ममता परै महादुख फांसी। सूरत भिन्न जान इस तनको यासों रहो उदासी ॥ २०॥ थत्था थिरपदको चहै, यों थिरपद नहिं होय। थिरता करि परिणामकी थिरपद परसै सोय॥ थिरपद परसै सोय होय सुख, गतिचारनसों छूटै। ज्ञानध्यानको

करै हथोरा, कर्म अरीको कूटै ॥ यह जगजाल अनादिकालका सो ऐसी विधि टूटै । सूरत थिरपदको तो परसै, शिवपुरके सुख लूटै ॥ २१ ॥ दद्दा दर्व छही कहे, प्रगट जगतके माहिं । अवर दरब सब खेल हैं, ज्ञानी मानै नाहिं ॥ ज्ञानी मानै नाहिं दरव वे, जो रतननको जानै । माटी भूमि शैलकी जो धंजि, जगमैं प्रगट बखानै ॥ पुद्गल जीव धरम अरु अधरम काल अकाश प्रमानै । सूरत इन दरवनकी चरचा, ज्ञानी गिनै बखानै ॥ २२ ॥ धध्धा ध्यान जु जगतमैं, प्रगट कहे हैं च्यार । आर्त रौद्र धर्मसु शुकल, जिनमत कहै विचार ॥ जिन मत कहै विचार चार ये, ध्यान जगतके माहीं । आरत रौद्र अशुभके दाता, इनतैं शुभगति नाहीं ॥ धर्मध्यानके जे नर धारक शुभ सुख होत सदाही । सूरत शुकलध्यानके करता, ते शिवपुरको जाईं ॥ २३ ॥ नन्ना नाशै करम जब, नेह करै निजमाहिं । नटकी कला जु जगतमैं, नेह करै छिन नाहिं ॥ नेह करै छिन नाहिं जगतमैं, आपा नाहिं फंसावै । ज्यों पानीमैं रहै कमलतउ, जलका भेद न पावै ॥ शुभ अरु अशुभ एकसे दोनों, रीझै ना पछतावै । सूरत भिन्न लखै ऐसी विध, करम कहा ढिग आवै ॥ २४ ॥ पप्पा प्रभु अपना लखो, परसंगति दे छोर । परसंगति आस्रव बढै, देय करम झकझोर ॥ देय करम झकझोर जोरिकरि, फिर निकसन नहिं होई । आस्रव बंध परी है वेरी, लगै उपाय न कोई ॥ यातैं प्रीति करो संवरसों, हित करके दिल जोई । सूरत संवरको आदरिये, कर्म

१ खूबी या मम ।

निर्जरा होई ॥ २५ ॥ फफ्फा फूल्यो ही फिरै, फोकट देख न भूल । फांसी पडी अनादिकी, करि तोडनको सूल ॥ कर तोडनको सूल भूल मति, दाव भलो तैं पायो । भ्रमते भ्रमते भवसागरसों, मानुषगतिमें आयो ॥ याही गतिसों भये तीर्थंकर, केवल ज्ञान उपायो । सूरत जानि भूल मति चूकै, यह सतगुरु फरमायो ॥ २६ ॥ बब्बा बिसन कुबिसन है, बिसनवेग तू त्याग । बसकरि पांचों इंद्रियनि, शुभ कारजको लाग ॥ शुभकारजको लाग त्याग नर, बिसन सात ये भारी । जूआ आमिष सुरापान अरु, आखेटक दुखकारी । परधनचोरी अरु वेश्याकूं, त्याग करो परनारी ॥ सूरत इस भवमें सुख पावै, परभव सुख अधिकारी ॥ २७ ॥ भभ्भा भूल्यो ही फिरै, भरम्यो महा मिथ्यात । भेद न पायो ज्ञानको तातैं आवत जात ॥ तातैं आवत जात बात सुन, भेदज्ञान नहिं पाया । क्रोध रु मान लोभ अरु माया, इनसौं नेह लगाया ॥ परमारथकी रीति न जानी, स्वारथ देख भुलाया । सूरत भेदज्ञान जब जाना, तब मिथ्यात मिटाया ॥ २८ ॥ मम्मा मति तिनकी सही, निज मल कीनो दूर । मतवारे समुझैं नहीं, तिनको नाहिं सहूर ॥ तिनको नाहि सहूर दूर है, कुमती कुमति विचारै । तिन कुगुरनि तिनको समुझाये, पकरि भवोदधि डारै ॥ पुण्यपापको भेद न जानै, जीव अनाहक मारै । सूरत ते नर परे कुसंगति, किसविध जाहिं उबारै ॥ २९ ॥ यया अयान पणो बुरो, यातैं होय अकाज । यह ममता सों

१ । उपाय ।

फँसि रह्यो, याहि न आवै लाज ॥ याहि न आवै लाज बाज नहिं, कह तेरो यहां को है। तात मात बांधव सुत कामिन तू इनके सुख मोहै ॥ आठों जाम रहै इनहीमैं, यह तुमको नहिं सोहै। सूरत तजि अज्ञान सीखगह तब तुहि शिव सुख हो है ॥ ३० ॥ ररा रच्यो अनादिको, रचि विषइनसों पीति। रस चाख्यो नहि आतमी, लखी न रसकी रीति ॥ लखी न रसकी रीति मीत तैं, विषयनिसँग सुख माना। आतमीक रस है सुखदायक, सो तैं नहीं पिछाना ॥ जिन रस रीति लखी आतमकी, सो सिवपुरका राना। सूरत वे भवि मुक्ति गये हैं, जिनआतम हित ठाना ॥३१॥ लल्ला लिपट्यो ही रहै, लग्यो जगतके भेक। लख्यो न आप सरूपको, लह्यो न शुद्ध विवेक ॥ लह्यो न शुद्ध विवेक एक तैं, पर आपा नाहिं बूझा। वस्तु पराई लखी न भाई, तातैं रह्यो अरूझा ॥ वस्तु विनासी नहीं प्रकाशी, तू कर्मनसँग झूझा। सूरत वे भव पार भये हैं, जिनको आतम सूझा ॥ ३२ ॥ वव्वा वह संगत बुरी, जासों होय कुभाव। सो संगति शैली भली, जामैं सहज सुभाव ॥ जामैं सहज सुभाव भाव है सो शैली मोहिं प्यारी। तत्त्व दरवकी चर्चा तिनकैं, तजै कुचर्चा भारी ॥ भरम भावतैं दूर रहत हैं धर्म ध्यानकी त्यारी। सूरत यह बांछा मन मेरे उन मित्रनसों यारी ॥३३॥ शश्शा सोई सुघर है, सुनै सुगुरुकी सीख। सदा रहैं शुभध्यानमें, सही जैनकी ठीक ॥ सही जैनकी ठीक तिन्होंको अवर कछू नहिं भावै। आगम अवर अध्यातम वानी, सुनै सुनावै गावै ॥ कुकथाचार विचार

जगतमें, तिनको नाहिं सुहावै। सूरत सो सज्जन मो भावै, जो शिवपंथ बतावै ॥३४॥ खक्खा खुटक निवारिकैं, खिमा-भाव चितलाय। खुलै कपाट अभ्यासके, खिरै करम दुखदाय॥ खिरै करम दुखदाय जाय वह, खिमाभाव चितल्यावै। होय अभ्यास तास भविजनको, ज्ञानी ज्ञान जगावै॥ सदा मगन ह्वै अपने मनमें, रीझ आप सुख पावै। सूरत सोई भिन्न सबनतैं, सो आतमहित लावै॥ ३५ ॥ सस्सा सो स्याना सदा, सुगुरु सीख सुन लेह। सदा रहै संतोषसों, सो साधू लखिलेह॥ सो साधू लखि लेह गेहमैं, जो संतोष विचारै। सीख बात है जो संसारी, तिनको नहीं निहारै॥ सँकलप विकलप जगके जितने, तिन दुसमनको टारै। सूरत सो साधू जन ऐसा, शिवपुर वेगं सिधारै॥ ३६ ॥ हाहा हूहू कर रह्यो, ह्वै परवसि दुख पाय। क्यों न आप वश हूजिये, होय परम सुखदाय॥ होय परम सुखदाय पाय पद, अनरूपी अविनाशी। केवलज्ञान दर्श जहँ केवल, सिद्धपुरी सुखराशी॥ आठों करम खिपावै तिनके, आठों गुन परकासी। सूरत सिद्ध महा सुख पावै, काल अनंता पासी॥ ३७ ॥ लल्ला लेकैं परमपद, लखों गये निर्वान। लोकशिखर ऊपर चढे, लियो सिद्ध शिवथान॥ लियो सिद्ध शिवथान आन लखि सोई सिद्ध कहाये। दर्शन ज्ञान चरन गुन तीनों, तिन शिवपुर पहुंचाये॥ जो जो दरसै सो सो भासै आप अचल ठहराये। सूरत सिद्ध कहे ऐसे गुरु जिनपुरानमैं गाये॥३८॥ क्षक्षा लक्ष्मी जो वरै, गुन लक्षण-को वेव। लखै सुलक्षन परखिकै, तजै कुलक्षण टेव॥ तजै

कुलच्छन टेव भेव लखि सिद्धरूपको ध्यावै । अरहत सिध आचार्य उपाध्याय साधन सीस नवावै ॥ जिनमत धर्म देव गुरु न्यारों, यह दिढता मन लावै । सूरत यह परतीत धरै मन, सो सम्यकपद पावै ॥ ३९ ॥ सम्यकपदको जो लहै, करै वैनगुरु प्रीत । देव धरम गुरु ज्ञानको, परखि गहै निजरीत ॥ ॥४०॥ बारखडी हितसों कही, नहिं गुनियनकी रीस । दोहे तौ चालीस हैं, छंद कहे छत्तीस ॥ ४१ ॥

इति श्रीसूरतकविकृत बारहखड़ी समाप्ता ॥४३॥

१३ । तेरहवां अध्याय

फुटकर संग्रह ।

१६० । छहढाला ।

(स्वर्गीय पं० दौलतरामजी कृत)

सोरठा ।

तीन भुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमौं त्रियोग सम्हारिकैं ॥

पहिली ढाल । चौपाई (१५ मात्रा) ।

जे त्रिभुवनमें जीव अनंत । सुख चाहैं दुखतैं भयवंत ॥ तातैं दुखहारी सुखकारि । कहैं सीख गुरु करुणा धारि ॥२॥ ताहि सुनो भवि मन थिर आन । जो चाहो अपनो कल्यान ॥ मोह महामद पियो अनादि । भूलि आपको भरमत बादि ॥ ३॥ तास भ्रमनकी है बहु कथा । पै कछु कहूं कही मुनि जथा ॥ काल अनंत निगोदमझार । बीत्यो एकेंद्रिय-तन धार ॥४॥ एक स्वासमें अठदश बार । जन्म्यो मर्यो भर्यो दुखभार ॥

निकसि भूमि जल पावक भयो। पवन प्रतेक वनस्पति थयो॥ ५॥ दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणी। त्यों परजाय लही त्रस-तणी॥ लट पिपीलि अलि आदि शरीर। धर धर मर्यो सही बहु पीर॥ ६॥ कबहूं पंचेंद्रिय पशु भयो। मन विन निपट अज्ञानी थयो॥ सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर। निवल पशू हति खाये भूर॥ ७॥ कबहूं आप भयो बलहीन। सबलनि करि खायो अतिदीन॥ छेदन भेदन भूख पियास। भारवहन हिम आतप त्रास॥ ८॥ बध बंधन आदिक दुख घने। कोटि जीभतैं जात न भने॥ अति संक्लेशभावतैं मर्यो। घोर शुभ्र-सागरमैं पर्यो॥ ९॥ तहां भूमि परसत दुख इस्यो। बीछू सहस डसैं तन तिस्यो॥ तहां राधशोणित बाहिनी। कृमि-कुलकलित देह दाहिनी॥ १०॥ सेमरतरुजुत दलअसिपत्र। असि ज्यों देह विदारैं तत्र॥ मेरु समान लोह गलिजाय। ऐसी शीत उष्णता थाय॥ ११॥ तिल तिल करहिं देहके खंड। असुर भिडावैं दुष्ट प्रचंड॥ सिंधुनीरतैं प्यास न जाय। तौ पण एक न बूंद लहाय॥ १२॥ तीनलोकको नाज जु खाय। मिटै न भूख कणा न लहाय॥ ये दुख बहु सागरलौं सहै। कर्मजोगतैं नरतन लहै॥ १३॥ जननी उदर बस्यो नवमास। अंग सकुचतैं पाई त्रास॥ निकसत जे दुख पाये घोर। तिनको कहत न आवै ओर॥ १४॥ बालपनेमें ज्ञान न लह्यो। तरुणसमय तरुणीरत रह्यो॥ अर्धमृतकसम बूढ़ापनो। कैसें रूप लखै आपनो॥ १५॥ कभी अकामनिर्जरा करै। भवनत्रिकमैं सुरतन धरै॥ विषय-चाह-दावानल दह्यो।

भरत विलाप करत दुख सह्यो ॥ १६ ॥ जो विमानवासी हू थाय। सम्यकदर्शन विन दुख पाय ॥ तहँतैं चय थावर तन धरै। यों परिवर्तन पूरे करै ॥ १७ ॥

दूसरी ढाल। पद्धरि छंद।

ऐसैं मिथ्या-दृगज्ञानचर्ण,-वश भ्रमत भरत दुख जन्ममरण ॥ तातैं इनको तजिये सुजान। सुन तिन संछेप कहूं बखान ॥१॥ जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व। सरधै तिनमांहि विपर्ययत्व ॥ चेतनको है उपयोग रूप। विन मूरति चिनमूरति अनूप ॥२॥ पुदगल नभ धर्म अधर्म काल। इनतैं न्यारी है जीवचाल ॥ ताकों न जान विपरीति मान। करि, करै देहमें निज पिछान ॥ ३ ॥ मैं सुखी दुखी मैं रंक राव। मेरो धन गृह गोधन प्रभाव ॥ मेरे सुत तिय मैं सबल दीन। बे-रूप सुभग मूरख प्रवीन ॥ ४ ॥ तन उपजत अपनी उपज जानि। तन नशत आपको नाश मान ॥ रागादि प्रगट जे दुःखदैन। तिनहीको सेवत गिनहि चैन ॥ ५ ॥ शुभअशुभबंधके फलमझार। रति अरति करै निजपद विसार ॥ आतमहितहेतु विराग ज्ञान। ते लखै आपको कष्टदान ॥ ६ ॥ रोकी न चाह निजशक्ति खोय। शिवरूप निराकुलता न जोय। याही प्रतीतजुत कछुक ज्ञान। सो दुखदायक अज्ञान जान ॥ ७ ॥ इनजुत विषयनिमें जो प्रवृत्त। ताको जानो मिथ्याचरित्त ॥ यौं मि-थ्यात्वादि निसर्गजेह। अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ॥ ८॥ जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव। पोषैं चिरदर्शन मोह एव ॥ अंतररागादिक धरैं जेह। बाहर धन अंबरतैं सनेह ॥ ९॥

धारैं कुलिंग लहि महतभाव। तेकुगुरु जनम-जल-उपल-नाव॥ जे रागद्वेषमलकरि मलीन। वनितागदादिजुत चिन्हचीन॥ ॥ १० ॥ ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव। शठ करत, न तिन भवभ्रमनछेव॥ रागादिभाव हिंसासमेत। दर्वित त्रसथावर मरन खेत॥ ११॥ जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म। तिन सरधैं जीव लहै अशर्म॥ याकौं गृहीतमिथ्यात जान। अब सुन गृहीत जो है कुज्ञान॥ १२॥ एकांतवाद दूषित समस्त। विषयादिकपोषक अप्रशस्त॥ कपिलादिरचित श्रुतको अभ्यास। सो है कुबोध बहु देन त्रास॥ १३॥ जो ख्यातिलाभपूजादि चाह। धरि करत विविधविध देहदाह॥ आतम अनात्मक ज्ञानहीन। जे जे करनी तनकरनछीन॥ १४॥ ते सब मिथ्याचारित्र त्यागि। अब आतमके हित पंथ लागि॥ जगजालभ्रमनको देय त्यागि। अब 'दौलत' निज आतमसुपागि॥ १५॥

तीसरी ढाल। नरेंद्रछंद (जोगीरासा।)

आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता विन कहिये। आकुलता शिवमांहि न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये। सम्यकदर्शन ज्ञान चरन शिव, मग सो दुविध विचारो। जो सत्यारथरूप सु निश्चय, कारन सो व्यवहारो॥ १॥ परद्रव्यनितैं भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त भला है। आप रूपको जानपनो सो, सम्यकज्ञानकला है॥ आपरूपमें लीन रहै थिर, सम्यकचारित सोई। अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियतको होई॥२॥ जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो।

निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यौंको त्यौं सरधानो ॥ है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानौ। तिनको सुनि सामान्यविशेषै, दृढ प्रतीति उर आनौ ॥३॥ बहिरातम अंतर-आतम परमातम जीव त्रिधा है। देह जीवको एक गिनै बहिरातमतत्त्व मुधा है ॥ उत्तम मध्यम जघन त्रिविधिके अंतर-आतमज्ञानी। द्विविध संगविन शुधउपयोगी, मुनि उत्तम निज-ध्यानी ॥४॥ मध्यम अंतरआतम हैं जे, देशव्रती आगारी। जघन कहे अविरत-समदृष्टी तीनों शिवमगचारी ॥ सकल निकल परमातम द्वैविध तिनमैं घातिनिवारी। श्रीअरहंत सकल परमातम, लोकालोकनिहारी ॥५॥ ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मलवर्जित सिद्ध महंता। ते हैं निकल अमल परमातम भोगैं शर्म अनंता ॥ बहिरातमता हेय जानि तजि, अंतर आतम हूजे। परमातमको ध्याय निरंतर, जो नित आनँद पूजे।६। चेतनता विन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं। पुदगल पंच वरन, रस पन, गंध दु, फरस वसु, जाके हैं ॥ जिय पुदगलको चलन सहाई धर्मद्रव्य अनरूपी। तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन विनमूर्ति निरूपी।७। सकल द्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो। नियत वरतना निशिदिन सो, व्यवहार काल परिमानो। यौं अजीव अब आस्रव सुनिये, मनवचकाय त्रियोगा। मिथ्या अविरत अरु कषाय परमादसहित उपयोगा ॥८॥ ये ही आतमके दुखकारन, तातैं इनको तजिये। जीवप्रदेश बँधै विधिसों सो, बंधन कबहुं न सजिये ॥ शमदमसों जो कर्म न आवैं, सो संवर

१ पूर वा प्राप्त करें।

आदरिये। तपबलतैं विधिझरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये, ॥९॥ सकल करमतैं रहित अवस्था, सो शिव थिरसुखकारी। इहिविधि जो सरधा तत्त्वनकी, सो समकित व्योहारी॥ देव जिनेंद्र गुरु परिग्रह विन, धर्म दयाजुत सारो। यहू मान समकितको कारन, अष्टअंगजुत धारो॥१०॥ वसुमद टारि निवारि त्रिसठता, षट अनायतन त्यागो। शंकादिक वसु दोष विना, संवेगादिक चित पागो। अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, अब संक्षेपहु कहिये। विन जानेतैं दोष गुननको, कैसे तजिये गहिये॥ ११। जिनवचमें शंका न धारि वृष, भवसुखबांछा भानै। मुनितन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै। निजगुन अर पर अवगुन ढाकै, वा जिनधर्म बढावै। कामादिककर वृषतैं चिगते, निजपरको सु दृढावै॥ १२ ॥ धर्मीसों गउबच्छप्रीतिसम, कर जिनधर्म दिपावै। इन गुनतैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै॥ पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै। मद न रूपको मद न ज्ञानको, धन बलको मद भानै॥१३॥ तपको मद न मद जु प्रभुताको, करै न सो निज जानै। मद धारै तौ येही दोष वसु, समकितको मल ठानै॥ कुगुरुकुदेवकुवृषसेवकको नहिं, प्रशंस उचरै है। जिनमुनि जिनश्रुत विन कुगुरादिक, तिन्हैं न नमन करै है ॥१४॥ दोषरहित गुनसहित सुधी जे, सम्यकदरश सजै हैं। चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं॥ गेही पै गृहमें न रचै ज्यों, जलमें भिन्न कमल है। नगरनारिको प्यार यथा, कादेमें हेम अमल है॥ १५॥

१ प्रशम, संवेग आनुकंपा आस्तिक्य। २ धर्मसे। ३ मामा।

प्रथम नरक विन षट भू ज्योतिष, वान भवन षँढ नारी। थावर विकलत्रय पशुमें नहिं, उपजत समकित-धारी॥ तीनलोक तिहुं कालमाहिं नहिं, दर्शनसम सुखकारी। सकलधरमको मूल यही इस, विन करनी दुखकारी॥१६॥ मोक्षमहलकी परथम सीढी, या विन ज्ञान चरित्रा। सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥ 'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै। यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवै॥ १७॥

चौथी ढाल। दोहा।

सम्यकश्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यकज्ञान।
स्वपरअर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान॥ १॥

रोला छंद २४ मात्रा।

सम्यकसाथै ज्ञान, होय पै भिन्न अराधो। लक्षण श्रद्धा जान, दुहूमें भेद अबाधो॥ सम्यककारण जान, ज्ञान कारज है सोई। युगपत होतैं हू, प्रकाश दीपकतैं होई॥२॥ तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछ तिनमाहीं। मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं॥ अवधिज्ञानमनपर्जय, दो हैं देशप्रतच्छा। द्रव्यक्षेत्र-परिमान लिये जानैं जिय स्वच्छा॥ ३॥ सकल द्रव्यके गुन अनंत, परजाय अनंता। जानैं एकै काल, प्रकट केवलि भग-वंता॥ ज्ञान समान न आन, जगतमें सुखको कारन। इह पर-मामृत जन्म, जरामृतरोगनिवारन॥४॥ कोटि जनम तप तपैं, ज्ञान विन कर्म झरैं जे। ज्ञानीके छिनमांहि गुप्तितैं, सहज टरैं

१ नपुंसक।

ते ॥ मुनिव्रत धार अनंतबार, ग्रीवक उपजायो । पै निजआतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो ॥ तातैं जिनवरकथित, तत्त्व अभ्यास करीजे । संशय विभ्रम मोह, त्याग आपो लखि लीजे ॥ यह मानुषपरजाय, सुकुल सुनिबो जिनवानी । इह-विधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधिसमानी ॥६॥ धन समाज गज बाज राज, तो काज न आवै । ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै ॥ तास ज्ञानको कारन, स्वपरविवेक बखान्यो । कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आन्यो ॥७॥ जे पूरव शिव गये, जांय अब आगे जै हैं । सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनि-नाथ कहै हैं ॥ विषयचाह-दव-दाह, जगतजन अरनि दझावै । तासु उपाय न आन, ज्ञानघनघान बुझावै ॥८॥ पुण्यपाप-फल-माहिं, हरष विलखौ मत भाई । यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसैं थिर थाई ॥ लाख बातकी बात, यहै निश्चय उर लाव्रो ॥ तोरि सकल जगदंदफंद, निज आतम ध्यावो ॥९॥ सम्यकज्ञानी होइ, बहुरि दृढ चारित लीजे । एकदेश अरु सकलदेश, तस भेद कहीजे ॥ त्रसहिंसाको त्याग वृथा, थावर न सँघारै । पर-वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै ॥ १० ॥ जल मृतिका बिन, और नाहिं कछु गहै अदत्ता । निजबनिताविन सकल, नारिसौं रहै विरत्ता ॥ अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै । दश दिशि गमनप्रमान, ठान तसु सीम न नाखै[1] ॥११॥ ताहूमें फिर ग्राम गली, गृह बाग बजारा । गमनागमन प्रमान ठान, अन सकल निवारा ॥ काहूके धन हानि, किसी जय हार

[1] उलंघै।

न चीतैं। देय न सो उपदेश, होय अघ बनिज कृषीतैं ॥१२॥ कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै। असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै॥ रागरोषकरतारकथा, कबहूं न सुनीजे। और हु अनरथदंड, हेतुअघ तिन्हैं न कीजे ॥१३॥ धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये। पर्वचतुष्टयमाहिं, पाप तजि प्रोषध धरिये॥ भोग और उपभोग नियम करि, ममतु निवारै। मुनिको भोजन देय, फेर निज करहि अहारै ॥१४॥ बारहव्रतके अतीचार, पन पन न लगावै। मरन समय सन्यास धारि तसु दोष नशावै ॥ यौं श्रावकव्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै। तहतैं चय नरजन्म, पाय मुनि ह्वै शिव जावै ॥१५॥

पांचवीं ढाल। सखी छंद (मात्रा १४)

मुनि सकलव्रती बडभागी। भवभोगनतैं वैरागी॥ वैराग्य-उपावन माई। चिंतो अनुप्रेक्षा भाई ॥ १ ॥ इन चिंतत सम-रस जागै। जिमि ज्वलन पवनके लागै॥ जबही जिय आतम जानै। तवही जिय शिवसुख ठानै ॥२॥ जोबन गृह गोधन नारी॥ हय गय जन आज्ञाकारी॥ इंद्रीय भोग छिन थाई। सुरधनु चपला चपलाई ॥ ३ ॥ सुर असुर खगाधिप जेते। मृग ज्यौं हरि काल दले ते॥ मणि मंत्र तंत्र बहु होई। मरते न बचावै कोई ॥ ४ ॥ चहुंगतिदुख जीव भरे हैं। परिवर्तन पंच करे हैं ॥ सबविधि संसार असारा। यामैं सुख नाहिं लगारा ॥५॥ शुभ अशुभ करमफल जेते। भोगै जिय एकहि तेते॥ सुत दारा होय न सीरी। सब स्वारथके हैं भीरी ॥६॥

जलपय ज्यौं जियतन मेला । पै भिन्न भिन्न नहिं भेला ॥ तो प्रकट जुदे धन धामा । क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा ॥ ७ ॥ पल-रुधिर-राध-मल-थैली । कीकस वसादितैं मैली ॥ नवद्वार बहैं घिनकारी । अस देह करै किम यारी ॥ ८ ॥ जो जोग-नकी चपलाई । तातैं ह्वै आस्रव भाई ॥ आस्रव दुखकार घनेरे । बुधिवंत तिन्हैं निरवेरे ॥ ९ ॥ जिन पुण्य पाप नहिं कीना । आतम अनुभव चित दीना ॥ तिन ही विधि[१] आवत रोके । संवर लहि सुख अवलोके ॥ १० ॥ निज काल पाय विधि झरना । तासौं निजकाज न सरना ॥ तप करि जो कर्म खपावै । सोई शिवसुख दरसावै ॥ ११ ॥ किन हू न कर्यो न धरै को । षटद्रव्यमयी न हरै को ॥ सो लोकमाहिं बिन समता । दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥१२॥ अंतिम ग्रीवकलौंकी हद । पायो अनंतबिरियां पद ॥ पर सम्यकज्ञान न लाध्यो । दुर्लभ निजमें मुनि साध्यो ॥ १३ ॥ जे भाव मोहतैं न्यारे । दृग ज्ञान व्रतादिक सारे ॥ सो धर्म जबै जिय धारै । तबही सुख अचल निहारै ॥ १४ ॥ सो धर्म मुनिनकरि धरिये । तिनकी करतूति उचरिये ॥ ताको सुनिकैं भवि प्रानी । अपनी अनुभूति पिछानी ॥ १५ ॥

छट्ठी ढाल (हरिगीता छंद)

षटकाय जीव न हननतैं सबविधि दरवहिंसा टरी । रागादि भाव निवारतैं हिंसा न भावित अवतरी ॥ जिनके न लेश मृषा न जलतृन हू विना दीयो गहैं । अठदशसहस विधि

१ कर्म ।

शीलधर चिदब्रह्ममें नित रमि रहैं ॥ १ ॥ अंतर चतुर्दश भेद बाहिर संग दशधातैं टलैं । परमाद तजि चउकर मही लखि समिति ईर्यातैं चलैं ॥ जग सुहितकर सब अहितहर श्रुति-सुखद सब संशय हरैं । भ्रमरोग-हर जिनके वचन मुखचंद्रतैं अम्रत झरैं ॥ २ ॥ छ्यालीस दोष विना सुकुल श्रावकतणे घर अशनको । लैं तप बढावन हेत नहिं तन पोषते तजि रसनको ॥ शुचि ज्ञान संजम उपकरन लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं । निर्जंतु थान विलोक तन-मल मूत्र-श्लेषम परिहरैं ॥३॥ सम्यक प्रकार निरोधि मन-वच-काय आतम ध्यावते । तिन सुथिरमुद्रा देखि मृगगन उपल खाज खुजावते ॥ रसरूप गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने । तिनमैं न राग विरोध पंचेंद्रियजयन पद पावने ॥ ४ ॥ समता सम्हारैं थुति उचारैं बंदना जिनदेवको । नित करैं श्रुतरति धरैं प्रतिक्रम तजैं तन अहमेवको ॥ जिनके न न्हौन न दंतधोवन लेश अंबर आवरन । भूमाहिं पिछली रयनिमें कछु शयन एकासन करन ॥५॥ इक बार दिनमें लें अहार खडे अलप निज पानमें । कचलोंच करत न डरत परिषहसों लगे निज ध्यानमें । अरि मित्र महल मसान कंचन काच निंदन थुतिकरन । अर्घावतारन असिप्रहारन, मैं सदा समताधरन ॥ ६ ॥ तप तपैं द्वादश धरैं वृष दश रतनत्रय सेवैं सदा । मुनिसाथमें वा एक विचरैं चहैं नहिं भवसुख कदा ॥ यों है सकल संजमचरित सुनिये स्वरूपाचरन अब । जिस होत प्रगटै आपनी निधि मिटै परकी प्रवृति सब ॥ ७ ॥ जिन परम पैनी सुबुधि छैनी डारि अंतर

भेदिया। वरनादि अरु रागादितैं निज भावको न्यारा किया॥ निजमाहिं निजके हेतु निजकर आपको आपे गह्यो। गुन गुनी ज्ञाता ज्ञानज्ञेयमझार कछु भेद न रह्यो ॥ ८॥ जहँ ध्यान ध्याता ध्येयको न विकल्प वचभेद न जहां। चिद्भाव कर्म चिदेश करता चेतना किरिया तहां॥ तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोगकी निश्चल दशा। प्रगटी जहां दृग ज्ञान व्रत ये तीनधा एकै लशा ॥९॥ परमान नय निक्षेपको न उदोत अनुभवमैं दिखै। दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा नहिं आनभाव जु मोविखैं॥ मैं साध्य साधक मैं अबाधक कर्म अरु तसु फलनितैं। चितपिंड चंड अखंड सुगुन,-करंडच्युत पुनि कलनितैं ॥ १०॥ यों चिंत्य निजमें थिर भये तिन अकथ जो आनँद लह्यो। सो इंद्र नाग नरेंद्र वा अहमिंद्रके नाहीं कह्यो ॥ तब ही शुकलध्यानाग्निकर चउघाति विधिकानन दह्यो। सब लख्यो केवलज्ञानकरि भविलोकको शिवमग कह्यो ॥ ११॥ पुनि घाति शेष अघातिविधि छिनमाहिं अष्टमभू बसैं। वसु-कर्म विनशै सुगुन वसु सम्यक्त्व आदिक सब लसैं ॥ संसार खार अपार पारावार तिर तीरहिं गये। अविकार अकल अरूप शुध चिद्रूप अविनाशी भये॥ १२॥ निजमाहिं लोक अलोक गुन परजाय प्रतिबिंबित थये। रहि हैं अनंतानंत काल, यथा तथा शिव परनये॥ धनि धन्य हैं जे जीव नर भव पाय यह कारज किया। तिनही अनादी भ्रमन पंचप्रकार, तजि वर सुख लिया ॥ १३॥ मुख्योपचार दुभेद यौं बडभागि रत्नत्रय धरैं। अरु धरेंगे ते शिव लहैं तिन सुजस

जल जगमल हरैं ॥ इमि जानि आलस हानि साहस, ठानि यह सिख आदरो । जबलौं न रोग जरा गहै, तबलौं जगत निज हित करो ॥ १४ ॥ यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये। चिर भजे विषय कषाय अबतौ, त्याग निज पद बेइये ॥ कहा रच्यो परपदमें, न तेरो पद यहै क्यों दुख सहै । अब 'दौल' होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूको यहै ॥ १५ ॥

दोहा—इक नव वसु इक वर्षकी, तीज शुकल वैसाख ।
करयो तत्त्व उपदेश यह, लखि बुधजनकी भाख ॥ १६ ॥
लघुधी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थकी भूल ।
सुधी सुधार पढो सदा, जो पावो भवकूल ॥ १७ ॥

इति दौलतरामकृत छहढाला समाप्त ॥

१६१ । समाधिमरण भाषा ।

पं० सूरचन्दजी रचित ।

नरेन्द्र छन्द ।

वंदों श्रीअरहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई ॥
इस जगमें दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई ॥
अब मैं अरज करूं प्रभु तुमसे, कर समाधि उरमांहीं ।
अंतसमयमें यह वर मांगूं, सो दीजै जगराई ॥ १ ॥ भव-भवमें तनधार नये मैं, भव भव शुभ संग पायो । भव भवमें नृपरिद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो ॥ भवभवमें तन पुरुषतनों धर, नारी हू तन लीनो। भवभवमें मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनो ॥२॥ भवभवमें सुरपदवी पाई, ताके

सुख अति भोगे। भवभवमें गति नरकतनी धर, दुख पाये विधि योगे॥ भवभवमें तिर्यंचयोनिधर पायो दुख अतिभारी। भवभवमें साधर्मी जनको, संग मिलो हितकारी ॥ ३ ॥ भव भवमें जिनपूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो। भवभवमें मैं समवसरणमें, देखो जिनगुण भीनो ॥ एती वस्तु मिली भव भवमें सम्यक गुण नहिं पायो। ना समाधियुत मरण कियो मैं तातैं जग भरमायो॥ ४ ॥ काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहि कीनो। एक बार हू सम्यकयुत मैं निज आतम नहिं चीनो॥ जो निजपरकौ ज्ञान होय तो मरण समय दुख काँई। देह विनासी मैं निजभासी, जोति स्वरूप सदाई ॥ ५ ॥ विषय कषायनके वस होकर, देह आपनो जान्यो। कर मिथ्यासरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछान्यो॥ यों कलेश हियधार मरणकर चारों गति भरमायो। सम्यक दर्शन ज्ञान तीन ये हिरदेमें नहिं लायो॥ ६ ॥ अब या अरज करूं प्रभु सुनिये मरण समय यह मांगों। रोगजनित पीडा मत होवो अरु कषाय मत जागो॥ ये मुझ मरणसमय दुख दाता इन हर साता कीजै। जो समाधि युत मरण होय मुझ अरु मिथ्यागद छीजै ॥ ७ ॥ यह तन सात कुधातमई है देखत ही घिन आवै। चर्म लपेटी ऊपर सोहै भीतर विष्ठा पावै॥ अति दुर्गंध अपावनसों यह मूरख प्रीति बढावै। देह विनासी जिय अविनासी नित्यस्वरूप कहावै॥ ८ ॥ यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातैं प्रीति न कीजै। नूतन महल मिलै जब भाई तब यामैं क्या छीजै॥ मृत्युहोनसें हानि कौन है

याको भय मत लावो। समतासे जो देह तजोगे तो शुभतन तुम पावो।९। मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसरके माहीं। जीरनतनसे देत नयो यह, या सम साहू नाहीं॥ या सेती इस मृत्युसमयपर उत्सव अति ही कीजै। क्लेशभावको त्याग सयाने समताभाव धरीजै॥ १० ॥ जो तुम पूरव पुण्य किये हैं तिनको फल सुखदाई। मृत्युमित्र विन कौन दिखावै, स्वर्गसंपदा भाई॥ रागरोषको छोड सयाने, सात व्यसन दुखदाई। अंतसमयमें समता धारो परभव पंथ सहाई॥ ११ ॥ कर्म महा दुठ वैरी मेरो तासेती दुख पावै। तन पिंजरमें वंध कियो मोहि यासों कौन छुडावै॥ भूख तृषा दुख आदि अनेकन इस ही तनमें गाढे। मृत्युराज अब आय दयाकर तन पिंजरसे काढै॥ १२ ॥ नाना वस्त्राभूषण मैंने इस तनको पहराये। गंधसुगंधित अतर लगाये षटरस असन कराये॥ रात दिना मैं दास होयकर सेव करी तनकेरी सो तन मेरे काम न आयो भूल रह्यो निधि मेरी॥ १३ ॥ मृत्यु रायको शरन पाय तन नूतन ऐसो पाऊं। जामें सम्यक रतन तीन लहि आठों कर्म खपाऊं॥ देखो तन सम और कृतघ्नी नाहिं सु या जगमाहीं। मृत्युसमयमें ये ही परिजन सब ही हैं दुखदाई॥ १४ ॥ यह सब मोह वढावनहारे जियको दुर्गति दाता। इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता॥ मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने मांगो इच्छा जेती। समता धरकर मृत्यु करो तो पावो संपति तेती॥ १५॥ चौआराधन सहित प्राण तज तौ ये पदवी पावो। हरि प्रतिहरि चक्री

तीर्थंश्वर स्वर्ग मुकतिमें जावो ॥ मृत्युकल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मझारे। ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥ १६ ॥ इस तनमें क्या राचे जियरा दिन दिन जीरन हो है। तेज कांति बल नित्य घटत है या सम अथिर सु को है। पांचों इंद्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवे। ता पर भी ममता नहिं छोडै, समता उर नहिं लावै। ॥ १७ ॥ मृत्युराज उपकारी जियको तनसे तोहि छुडावै। नातर या तन बंदीग्रहमें पर्यो पर्यो विललावै ॥ पुद्गलके परमाणू मिलके पिंडरूप तन भासी। यही मूरत मैं अमूरती ज्ञानजोति गुणखासी ॥ १८ ॥ रोग शोक आदिक जो वेदन ते सब पुद्गललारे। मैं तो चेतन व्याधि बिना नित हैं सो भाव हमारे ॥ या तनसे इस छेत्र संबंधी कारण आन बन्यो है। खान पान दे याको पोष्यो अब सम भाव ठन्यो है ॥ १९ ॥ मिथ्यादर्शन आतमज्ञान बिन यह तन अपनो जान्यो। इंद्रीभोग गिने सुख मैंने आपो नाहिं पिछान्यो तन विनशनतें नाश जानि निज यह अयान दुखदाई। कुटुम आदिको अपनो जान्यो भूल अनादी छाई ॥ २० ॥ अब निज भेद जथारथ समझ्यो मैं हूं ज्योतिस्वरूपी। उपजै विनसै सो यह पुदगल जान्यो याको रूपी ॥ इष्टऽनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुदगल सागै। मैं जब अपनो रूप विचारों, तब वे सब दुख भागै ॥ २१ ॥ बिन समता तनऽनन्त धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो। शास्त्र घाततैं ऽनन्त बार मर नाना योनि भ्रमायो॥ बारअनंत हि अग्नि

माहिं जर, मूवो सुमति न लायो। सिंह व्याघ्र अहि ऽनन्त बार मुझ, नाना दुःख दिखायो ॥ २२ ॥ विन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई। मृत्युराजको भय नहिं मानो देवै तन सुखदाई ॥ यातैं जब लग मृत्यु न आवे, तबलग जपतपकीजे। जप तप बिन इस जगके मांही, कोई भी ना सीजे ॥ २३ ॥ स्वर्गसंपदा तपसे पावै, तपसे कर्म नसावै। तप ही से शिवकामिनिपति है, यासों तप चित लावै ॥ अब मैं जानी समता विन मुझ कोऊ नाहिं सहाई। मातपिता सुत बांधव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई ॥ २४ ॥ मृत्यु समयमें मोह करैं ये, तातैं आरत हो है। आरततैं गति नीची पावै यों लख मोह तज्यो है ॥ और परिग्रह जेते जगमें, तिनसे प्रीत न कीजे। परभवमें ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजे ॥ २५ ॥ जेजे वस्तु लसत हैं ते पर, तिनसे नेह निवारो। परगतिमें ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो ॥ जो परभवमें संग चलैं तुझ, तिनसे प्रीत सु कीजै। पंच पाप तज समता धारो, दान चारविध दीजै ॥ २६ ॥ दशलक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो। षोडशकारण नित्य चिंतवो, द्वादश भावन भावो ॥ चारौं परवी प्रोषध कीजे, अशन रातको त्यागो। समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो ॥ २७ ॥ अंतसमयमें ये शुभ भावहि, होवैं आनि सहाई। स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावै, रिद्धि देहिं अधिकाई ॥ खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उरमें समता लाके। जासेती गति चार दूरकर बसो मोक्षपुर जाके ॥ २८ ॥ मन थिरता करके तुम

चिंतो चौ आराधन भाई। वे ही तोकों सुखकी दाता और हितू कोऊ नाहीं॥ आगें बहु मुनिराज भये हैं तिन गहि थिरता भारी। बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन आराधन उर धारी॥२९॥ तिनमें कछु इक नाम कहूं मैं सो सुन जिय चित लाके। भावसहित अनुमोदे तासे, दुर्गति होय न जाके॥ अरु समता निज उरमें आवै भाव अधीरज जावै। यों निसदिन जो उन मुनिवरको ध्यान हिये विच लावै॥३०॥ धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि कैसे धीरज धारी। एक श्यालनी जुगबच्चाजुत पांव भख्यो दुखकारी॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥३१॥ धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी व्याघ्रीने तन खायो। तौ भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं आतम सों हितलायो। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥३२॥ देखो गज मुनिके सिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी। शीस जलै जिम लकड़ी तिनको, तो भी नाहिं चिगारी॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है मृत्यु महोत्सव बारी॥३३॥ सनतकुमार मुनीके तनमें कुष्ट बेदना व्यापी। छिन्न भिन्न तन तासों हूवो, तब चिंत्योगुण आपी॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव बारी॥३४॥ श्रेणिकसुत गंगामें डूब्यो तब जिननाम चितार्यो। धर सलेखना परिग्रह छोड्यो शुद्ध भाव उर धार्यो॥ यह उपसर्ग

सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव बारी ॥ ३५ ॥ समंतभद्रमुनिवरके तनमें छुधावेदना आई। तौ दुखमें मुनि नेक न डिगियो, चिंत्यो निजगुण भाई। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव बारी ॥ ३६ ॥ ललितघटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबीतट जानो। नद्दीमें मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव बारी ॥ ३७॥ धर्मघोष मुनि चंपानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाढ़ो। एक मासकी कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु-महोत्सव बारी ॥ ३८ ॥ श्रीदत्तमुनिको पूर्व जन्मको, वैरी देव सु आके। विक्रिय कर दुख शीततनो सो, सह्यो साध मन लाके ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव बारी ॥ ३९ ॥ वृषभसेन मुनि उष्णशिलापर, ध्यान धर्यो मन लाई। सूर्य-घाम अरु उष्ण पवनकी, वेदन सहि अधिकाई ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव बारी ॥ ४० ॥ अभयघोषमुनि काकंदीपुर, महा वेदना पाई। वैरी चंडने सब तन छेद्यो, दुख दीनो अधिकाई ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव

बारी ॥ ४१ ॥ विद्युतचरने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी। शुभभावनसे प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव बारी ॥ ४२ ॥ पुत्र चिलाती नामा मुनिको बैरीने तन घातो। मोटे मोटे कीट पड़े तन तापर निज गुण रातो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव बारी ॥ दंडक नामा मुनिकी देही बाणन कर अरि भेदी। तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि कर्म महारिपु छेदी ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव बारी ॥ ४४ ॥ अभिनंदन मुनि आदि पांचसौ घानी पेलि जु मारे। तौ भी श्रीमुनि समता धारी पूरव कर्म विचारे ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव बारी ॥४५॥ चाणक मुनि गौधरके माहीं मूंद अगिनि परजाल्यो। श्रीगुरु उर समभाव धारके अपनो रूप सम्हाल्यो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव बारी ॥ ४६ ॥ सात शतक मुनिवरने पायो हथनापुरमें जानो। बलि-ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव सो मुनिवर नहिं मानो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव बारी ॥ ४७ ॥ लोहमयी आभूषण गढ़के ताते कर पहराये। पांचों पांडव मुनिके तनमें तौ भी

नाहिं बिगाये ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव बारी ॥ ४८ ॥ और अनेक भये इस जगमें समता रसके स्वादी। वे ही हमको हो सुखदाता हर हैं टेव प्रमादी ॥ सम्यकदर्शन ज्ञान चरन तप ये आराधना चारों। ये ही मोकों सुखकी दाता इन्हें सदा उर धारों ॥४९॥ यों समाधि उरमाहीं लावो अपनो हित जो चाहो। तज ममता अरु आठों मदको जोतिस्वरूपी ध्यावो ॥ जो कोई नित करत पयानो ग्रामांतरके काजै। सो भी शकुन विचारै नीके शुभके कारण साजै ॥ ५० ॥ मात-पितादिक सर्व कुटुम सो नीके शकुन बनावै। हलदी धनिया पुंगी अक्षत दूब दही फल लावै ॥ एक ग्रामके कारण एते करैं शुभाशुभ सारे। जब परगतिको करत पयानो तब नहिं सोचैं प्यारे ॥ ५१ ॥ सर्व कुटुम जब रोवन लागै तोहि रुलावैं सारे। ये अपशकुन करैं सुन तोकों तू यों क्यों न विचारे ॥ अब परगतिको चालत बिरियां धर्मध्यान उर आनो। चारों आराधन आराधो मोहतनो दुख हानो ॥ ५२ ॥ है निःशल्य तजो सब दुविधा आतमराम सुध्यावो। जब परगतिको करहु पयानो परम तत्त्व उर लावो ॥ मोह जालको काट पियारे अपनो रूप विचारो। मृत्यु मित्र उपकारी तेरो यों उर निश्चय धारो।५३।

दोहा—मृत्युमहोत्सव पाठको, पढो सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहो, सूरचंद शिवथान ॥ ५४ ॥
पंच उभय नव एक नभ, सबतैं सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय ॥ ५५ ॥

इति समाधिमरण समाप्त।

१६२। बारहमासा नेमिराजुलका प्रश्नोत्तर।

विनवै उग्रसेनकी लाडलडी करजोर नेमिजीके आगे खरी। तुम काहे पिया गिरनार चढे हमसेती कहो कहा चूक परी॥ यह समय नहीं पिय संजमको तुम काहेको ऐसी चित्त धरी। कैसें बारहमास वितावोगे तुम समझावो मोहिको सगरी॥ १॥

तुम आगैं अषाढमैं क्यों न लिया व्रत काहेको एती बरात बुलाई। अरु छप्पन कोड जुडे यदुबंशी व्याहन आये निशान बजाई॥ संग समुद्रविजय बलभद्र मुरारिहुकी तुम्हें लाज न आई। नेमि पिया उठि आवो घरै इन बातनमैं कहो कौन बडाई॥ २॥ बडाई कहा करिये सुनि राजुल जीवन है निशको सुपनो। सुत बंधु बधू सब जात चले जलबूंद जैसे तन है अपनो॥ दिन चारकके महमान सबै थिरता न कछू सब है स्वपनो। तिहँतैं इह जान अनित्य सबै हमरे अब सिद्धनको जपनो॥ ३॥

पिया सावनमें व्रत लीजे नहीं घनघोर घटा जुर आवैंगी। चहुं ओरतैं मोर जु शोर करैं वन कोकिल कुहक सुनावैंगी॥ पिय रैन अंधेरीमें सूझै नहीं कछु दामन दमक डरावैंगी। पुरवाईकी झोंक सहोगे नहीं छिनमैं तपतेज छुडावैंगी॥ ४॥ या जियको कोइ न राखनहार कहो किसकी शरणागत जैये कालबली सबसे जगमैं तिससे निशवासर देख डरैये॥ इंद्र नरेंद्र धनेंद्र सबै जम आन परै तब बांध चलैये। यातैं कहा डर सावनको सुन राजुल चित्तको यों समझैये॥ ५॥

पिय भादवकी वरषा बरसै कैसैं दिन रैन गमावोगे। चहुं ओरतैं पौन झकोर करै तब क्यों कर बूंद बचाओगे॥ घर ही क्यों न आयकै योग करो बनमें बहु दुःख उठावोगे। कहै राजमती पिय मान कही शिवसुंदर यों नहिं पावोगे॥६॥ या जगमें सुख नेकु न राजुल दुःखमें काल अनंत गँवायो। योनिहिं लाख चुरासी फिर्‌यो गत चारूंही जाय महादुख पायो॥ रोग ही शोक वियोग भरे फिर जामन मरण अनेक सतायो। भादवकी वरषा किस गिनतीमें नरक निगोदनमें फिर आयो॥ ७॥

पिय लागैगो मास असोज जबै तब शीतल बूंद सुहावैगी। कितहूं गरजै कितहूं वरषै कितहूं दुतिचंद दिखावैगी॥ छिन वायु बहै छिन ग्रीषमता छिनमें ऋतु तीन जनावैगी। कहै राजमती पिय मान कह्यो छिन ही छिन चित्त डुलावैगी॥८॥ कैसैं कर चित्त डुलै सुन राजुल एकतैं एक समाधि लगावैं। एक फिरै तिहुंलोकमैं हिंडत एक विना फिर एक न पावै॥ जाय जहां तहां है इकलो इकलो विडवै इकलोई गंवावै। आवत जात अकेलो रहै यह आदि अनादि अकेलो ही धावै॥ ९॥

पिय कातिकमैं मन कैसें रहै जब भामिनि भौन सजावैंगी। रचि चित्र विचित्र सुरंग सबै घर ही घर मंगल गावैंगी॥ पिय नूतन नार सिंगार किये अपनो पिय टेर बुलावैंगी। पिय बारहिबार बरै दियरा जियरा तुमरा तरसावैंगी॥१०॥

तो जियरा तरसै सुन राजुल जो तनको अपनो कर

जाने। पुदगल भिन्न हैं भिन्न सबै तन छांडि मनोरथ आन समानै॥ बूडैगो सोई कलिधारमैं जड चेतनको जो एक प्रमानै। हंस पिवै पय भिन्न करै जल सो परमातम आतम जानै॥ ११॥

हिमकी ऋतु आवैगी नाथ जबै तब शीतल पौन सुहावैगी। सब शीतल नीर समीर लगै तनअंबरप्रीत जनावैगी॥ सब भोजन पान सुहान लगे सगरी तनताप बुझावैगी॥ कहै राजमती अगहनमें जबै ऋतु नायक लायक आवैगी॥१२॥

यह देह अपावन खेह भरी सुन राजुल यामें कहा थिर है। यह चामकी चादर ओट दिये इसमें कृमिकीटनको घर है॥ यह मूतन पीव पुरीष भरी यह हाड़रु पिंजरको घर है। तिहितैं इसको हम नेह तज्यो हमको अब शीतको का डर है॥१३॥

पिय पौषमें जाड़ो परैगो घनो विन सौड़के शीत कैसे भरहो। कहा ओढ़ोगे शीत लगै जब ही किधौं पातनकी धुवनी धर हो॥ तुमरो प्रभुजी तन कोमल है कैसें कामकी फौजनसों लरहो। जब आवैगी शीत तरंग सबै तब देखत ही तिनकों डरहो॥ १४॥

आस्रव होय जहांपर शोभित शीत लगै अरु पौन झकोरै। इंद्रिय पांच पसार जहां तहां रागद्वेषतैं नातो ही जोरै॥ आठ महामद माते रहैं परद्रव्यको देख जहां चित दौरै। जो परआप विचार न राजुल तो गृह आपतैं आपही बोरै॥ १५॥

पिय माघ तुषार परैगो घनो तब पाथरतैं परिहौ गिरकै। यह मानुष देह कहा बपुरी बिन अंबर शीत नहीं ठरकै॥

किन पावक होय सहाय जहां नहिं शीत तुषार नहीं हरकै ॥ कहै राजमती उठ मानु कह्यो जु समैसिर योग लियो फिरकै ॥

संवर अंवरमें रह राजुल शीत तुषार अनंत बंचाऊं। राग रु द्वेषबयार वहै तब छांय छिमा तन छानि छवाऊं। इंद्रिय पांच निरोध किये करुणा करके मद आठ गवांऊं। आप लखों परद्रव्य तजों समता गहिके मनको समझाऊं ॥ १७ ॥

पिय लागैगो फागुन मास जबै तब गावेंगी चहुंओरतें होरी। केसरकी पिचकारी लिये कर फेकैं गुलालनकी भर झोरी ॥ गावत गीत धमार वजावत ताल मृदंग लिये डफ गोरी। तब भूलोगे पिया बात सबै जब खेलन आवैंगी सब ओरी ॥

हम होरी खेलें सुन राजुल यों अपने घर ऐसे खेल मचाऊं। पांच सखी अपने संग लेकर द्वादश भांतिके नाच नचाऊं ॥ पांच सखी अपने संग लेकर निर्जरासे सब कर्म जराऊं। खेल रचूं शिवसुंदरसों तब आठहि कर्मकी धूर उडाऊं ॥ १९ ॥

पिय लागैगो चैत वसंत सुहावनो फूलैगी वेल सबै वनमाई। फूलेगी कामिनी जाको पिया घर फूलैगी फूल सबै बनराई ॥ खेलहिंगे ब्रजके वनमें सब बाल गुपाल रु कुँवर कन्हाई। नेमि पिया उठ आवो घरे तुम काहेको करहो लोग हँसाई ॥ २० ॥

तीनहु लोकको जान सबै पुरुषाकर चौदह राजु ऊँचाई। ताके कहूं घनाकार सबै तीन सौ तेतालीस है चौराई ॥ बात वलैनसौं वेढि रह्यो हरता करता न कोई ठहराई। यह आदि अनादितैं आयो चल्यो सुन राजुल यामै कहा है हँसाई ॥२१॥

पिय मास वैशाखकी ग्रीषमता ऋतु शीतल नीरकी प्यास

लगैगी। क्यों गिरिपै रहो नाथ मेरे अति घाम परै सब देह दगैगी। ऐसे कठोर भये कबतैं ममता तजके सब प्रीति पगै गी। नेमि पिया उठ आवो घरे सुन एकहि बार न सिद्धि जगैगी ॥ २२ ॥

धर्मतैं सिद्धि नजीक है राजुल धर्म कियेतैं कहा नहिं आवै। धर्मतैं इंद्र नरेंद्र धनेंद्र सुरेंद्रनका सब ही पद पावै॥ धर्म सुदर्शन ज्ञान चरित्र करै तिहितैं शिवमारग पावै। धर्म महत्त बडो जगमें जहां जीवदया तहां धर्म कहावै ॥ २३ ॥

धर्मकी बात तो सांची है नाथ पै जेठमें कैसें धर्म रहैगो। लूह चलै सरवान कमान ज्यों घाम परै गिरमेरु बहैगो ॥ पक्षी पतंग सबै डर है अपने घरको सब कोई चहैगो। भूखतृषा अति देह दहै तब ऐसो महाव्रत क्यों न बहैगो ॥ २४ ॥

दुर्लभ है नरको भव राजुल दुर्लभ श्रावक योनि हमारी। दुर्लभ धर्म जु है दश लच्छन दुर्लभ षोडशभावना भारी॥ दुर्लभ श्रीजिनराजको मारग दुर्लभ है शिव सुंदर नारी। यह सब दुर्लभ जान तबै जब दुर्लभ है सन्यासकी त्यारी ॥ २५ ॥

बारह मास जे पूरे भये तब नेमिहि राजुल जाय सुनाये। नेमहिं द्वादस भांति तबै उठ पीछेसों राजुलको समझाये॥ राजुलने तव संयम ले सब निर्जराकर वसु कर्म जराये। राजुलके पति नेमि जिनेश्वर उत्तर लालविनोदीने गाये ॥ २६ ॥ इति।

१६३। बारहमासा सीतासतीका।

यति नैनसुखदासकृत।

रागनी हिंडोला चाल श्रावणकी मल्हार तथा निहालदे।

१ विन कारण स्वामी क्यों तजी बिनवै जनकदुलारि। बिन कारण स्वामी क्यों तजी॥ टेक॥

१ आषाढ़ मास।

साढ घुमडि आये बादरा, घन गरजै चहुंओर। निर्जन बनमें स्वामी तुम तजी, बैठनकूं नहिं ठौर॥ विनकारण स्वामी क्यों तजी, विनवै जनकदुलारि विन०॥ १॥ क्या मैं सतगुरु निंदियो, क्या दियो सतियन दोष। क्या हम सत संजम तज्यो, किस कारण भये रोस॥ बिनकारण०॥२॥ क्या पर पुरुष निहारिकै, परभव कियो निदान। क्या इसभव इच्छा करी, क्या मैं कियो अभिमान॥ बिनकारण०॥ ३॥ कटुक बचन स्वामी नहिं कहे, हिंसा करम न कीन। परधनपर चित नहिं दियो, क्यों मन भयो है मलीन॥ विनकारण०॥ ४॥

२ श्रावणमास।

श्रावण तुमसँग बनविषै, विपति सही भगवान। पावपयादी वन वन मैं फिरी, तनक न राखी आन॥ विनकारण स्वामी क्यों तजी॥ १॥ स्वसुर दिसौटा जिसदिन तुम दियो, कियो भरत सरदार। तादिन विकलप नहिं कियो, तज संपति भइ लार॥ विनकारण०॥ २॥ जनक पिताकी मैं हूं लाडली, मात विदेहाकीबाल। भ्रात प्रभामंडलसे बली, विपत भई बेहाल॥ विनकारण०॥ ३॥ मातमंदोदरी गर्भसैं,

जन्मी रावणगेह। परभव करमसंयोगसे, रावण कियो है संदेह विकारण० ॥ ४ ॥

३ भादौं मास।

भादौं पंडित पूछियो, पंडित कही है विचार। कन्याके कारण राजा तुम मरो, दिनी तुरत विसार॥ विनकारण० ॥ १ ॥ गाडी धर मंजूसमें, जनक नगर बनबीच। हलजोतत किर सानके॥ लई करमने खींच विनकारण० ॥ २ ॥ मरण भयो नहिं ता दिना, करम लिखे दुख दोष। करी नजर राजा जनकने, पाली पुत्र संजोग। विनकारण० ॥ ३ ॥ जनक स्वयंबर जब कियो, लिये सब भूप बुलाय। दरशन कर थारे वश भई, पडी चरणबिच आय॥ विनकारण० ॥ ४ ॥

४ कुवार मास।

क्वारमास फिरगये भूप सव, मोकारण कियो युद्ध। बहुत बली मारे रणविषै, ठायो धनुष प्रबुद्ध॥ विनकारण० ॥ १ ॥ खरदूषणके युद्धमें, आयो रावण दौड। छलकर धोका प्रभु तोहि दियो, नाद बजायो घनघोर। विनकारण० ॥ २ ॥ जल्दी पधारो प्रभु मैं घिरगयो, तुम जानी भगवान। कष्ट पड्यो जी मेरे भ्रातपैं उपज्यो मोह महान॥ विनकारण० ॥३॥ मोहि लकोई पात बटोरिकै, करम लिखी कछु और। आप पधारे अपने बीरपै, आगयो रावण चोर॥ विनकारण० ॥ ४ ॥ चील झपट्टा करिकै लेगयो, मोकूं अधर उठाय। देखी नाथ जटायूनें, क्या तुम जानत नाहिं। विनकारण ॥ ५ ॥ झपटि झपटि वाकै सिर हुयो, मुकुट खसोट्यो मूंछ उपारि। मारि तमाचो डार्यो भूमि पर, पक्षी खाईजी पछार॥ विनकारण०

॥ ६ ॥ लछमन तुमहिं निहारिकै, बात कही करि गौर। विनहिं बुलाये आये भ्रात क्यों, है कछु कारण और॥ विनकारण० ॥ ७ ॥ काहू छलियाने यह कछु छल कियो, कै कछु करम चरित्र। नाहिं पिछान्यो जावै युद्धमें, कौन है बैरी कौन मित्र ॥ विनकारण० ॥ ८ ॥

५ कार्तिक मास।

कातिक तुरत पठाइयो, उलट तुम्हें थारे भ्रात। विनही बुलाए आये आप क्यूं, शत्रु करेंगे उतपात ॥ बिनका० ॥१॥ आएजी तुरत रक्षा करनकूं, हमसे धर प्रभु प्यार। विखरेही पाये पत्र वेल तब, खाई आप पछार ॥ विनकारण० ॥ २ ॥ भ्रात हटाई आकै मूरछा, सकल शत्रु गण जीत। पड़ा जाटायू रिसकता, श्रावण धर्म पुनीत ॥ बिनकारण० ॥ ३ ॥ जन्म सुधारयो वाको आपने, मोबिन पायो नहिं चैन। डारी डारी ढूँडी वन विषै, रोय सुजाई तुम नैन ॥ बिनकारण० ॥ ४ ॥ धीर वंधाई लछिमन भुजबली, बहुत करी थारी सेव। विपति कटैगी प्रभु धीरजधरे, तदपि न मानेथे तुम देव ॥ विनकारण० ॥ ५ ॥ ल्याऊं काढ पतालसे, ल्याऊं पर्वत फोड़। अवर मिलै तौ सब कुछ मैं करूं, चीर बगाऊं थारो चोर ॥ विनकारण० ॥ ६ ॥ फेर मिले जी प्रभु सुग्रीवसे, साहसगति दियो मार। पाय सुतारा ल्यायो हनुमान कूं, ढूंडन भेज्यो मोहि ततकार बिनकारण० ॥ ७ ॥

६ अगहन मास।

अगहन खबर मगायकै, मोढिग भेज्यो हनुमान। कूदि समुं

दर गयो गढलंकमें, भेजी तुम मुंदरी भगवान। बिनका० ॥१॥ तुमविन बैठी रोऊं बागमैं, रामही राम पुकार। अन्न कियो ना पानी मैं पियो, परवश पडीथी लाचार ॥ बिनकारण० ॥ २ ॥ मुख धुलवायो हनुमानने, तुम आज्ञा परवान। प्राण बचाये मैरे विपतिमें, करवायो जलपान ॥ बिनकारण० ॥ ३ ॥ तुरतही भेज्यो तुमरे चरणमें, चूडामणि दियो तारि। गाय फसी है गाढी गारमें, खैंच निकारोजी भरतार ॥ बिनकारण० ॥४॥

७ पौष मास।

पौष चढे जो गढ लंकपै, युद्ध कियो भगवान। गारत किये लाखों सूरमा, मार कियो घमसान ॥ विनकारण० ॥ १ ॥ काटा शिर लंकेशका, लक्ष्मीधर वर वीर। कूद पडे जी जोधा लंकमैं, लवण समुंदर चीर ॥ विनकारण० ॥ २ ॥ ल्याये तुरत छुडायके, अशरण शरण अधार। इतनी कर ऐसी क्यों करी, घरसे दई क्यूं निकार ॥ विनकारण० ॥ ३ ॥ पग भारीजी गिरिगिर मैं पड़ूं, शरण सहाय न कोय। अपनी कही ना मेरी तुम सुनी, बहुत अंदेशा है मोहि ॥ विनकारण० ॥ ४ ॥

८। माघमास।

माघ प्रभुजी पाला पड रह्या, पडनेकूं नहीं सेज। ओढनकूं नहीं कांबली, दई क्यूं विपतिमैं भेज ॥ यिनकारण० ॥१॥ सिंह धड़कैं कूकैं भेडिए, मारै गज चिंघाड़। थर थर कंपै थारी कामिनी, स्यालिनी रही है दहाड ॥ विनकारण० ॥२॥ नाचैं भूत पिशाचगण, रुंड मुंड विकराल। सनन सनन सारा

वन करैं, कांटे चुभैं जी कराल ॥ विनकारण० ॥ ३ ॥ कित बैठूं लेटूं कित प्रभू, पास खवास न कोय। अन्न करूं ना पानी मैं पिऊं, बालककूं दूख होय ॥ विनकारण० ॥ ४ ॥ तुम सब जानत मेरे हालकूं, अष्टमबलि अवतार। तुम सूरज मैं पटवीजनी, क्या समझाऊं भरतार ॥ विनकारण० ॥ ५ ॥ समरथ है प्रभु क्यों कसी, प्रगट कियो क्यों ना दोष। धोका दे क्यों धक्का दियो, आवै नहिं संतोष ॥ विनकारण० ॥ ६ ॥

९। फागुणमास।

फागुन आई जी अठाइयां, अपने करम दे दोष। ध्यान धर्यो भगवानको, बैठ रही मनमोस ॥ विनकारण० ॥ १ ॥ अरज करौं प्रभु दरवारमें, ममता भाव निवार। तुमही पिता प्रभु तुम मात हो, तुमही भ्रात हमार ॥ विनकारण० ॥ २ ॥ निर्धनके प्रभु तुम धनी, निर्जनके परिवार। इकवर राम मिलायके, दीजियो दोष उतार ॥ बिनकारण० ॥ ३ ॥ तुम हो प्रभु राजा धरमके, परजा लगायो हमैं दोष। शीलमें मेरे सब संशय करैं, राम रुसाए हुए रोस ॥ विनकारण० ॥ ४ ॥ त्याग दिये हम रामजी, त्यागि दियो संसार। गर्भवती हूं संजोगसे, इससे हुई हूं लाचार ॥ विनकारण० ॥ ५ ॥ जिस दिन प्रभु पल्लापाक हो, मिलै मोहि भरतार। भरम मिटाके धारूं धरमको, त्यागूं सब संसार ॥ विनकारण० ॥ ६ ॥ राम मनावैं तौ भी ना मनूं, करि जाऊं बनकूं विहार। करपै श्री रघुवीरके, चोटी धरूंगी उपार ॥ विनकारण० ॥ ७ ॥ भावै यों सीता बैठी भावना, ध्यावै पद नवकार। पाप धंट्यो भग-

ट्यो पुण्यफल, सुन लई तुरत पुकार ॥ विनकारण० ॥ ८॥ पुंडरीकपुर नगरका, वज्रजंघ भूपाल। आये पुण्यसंजोगसों, गज पकडन तिस काल ॥ विनकारण० ॥९॥ ढूंढत गजपति बनविषै, भनक पडी वाके कान। कोई सतवंती रोवै वनविषै, किनही सताई अज्ञान ॥ विनकारण० ॥ १० ॥ दोष लगायो कहा पूछिये, गजतजि उतर्यो धीर । विनय सहित दुख पूछन चल्यो, जैसे भैनाके घर वीर ॥ विनकारण० ॥ ११ ॥ तुम हो बहन मेरी धर्मकी, विपति कहो समुझाय। मातपिता पति परिवारसैं दूंगा बहन मिलाय ॥ बिनकारण० ॥ १२ ॥ जनक पिताकी मैं हूं लाडली, भ्रात भामंडल धीर। स्वसुर हमारे दशरथ नृप बली, भर्ता श्री रघुवीर ॥ विनकारण० ॥ १३ ॥ रावण हरकै लै गयो, दोष धरै संसार। शीलमें सब संशय करैं, दीनी राम निकार ॥ विनकारण ॥ १४ ॥ सुनी कथा छाती थरहरी, टपकैं असुवनधार। हायरे कर्म ऐसी क्यों कसी, कियो तुरत उपगार ॥ विनकारण० ॥ १४ ॥ देव धरम दिय बीचमें, बहन बनाई ततकार। पुंडरीकपुर लै गयो, करिकै गज असवार ॥ विनकारण० ॥ १६ ॥ पुत्र भये लव अंकुश बली, शिवगामी अवतार। वज्र जंघ रक्षा करी, पालि किये हुशियार ॥ विनकारण० ॥ १७ ॥

१० चैत्रमास।

चैत्रमास नारदमुनि मिले, चरण पड़े दोऊ वीर। राम लषनकीसी संपदा, हूज्यो थारै वरवीर ॥ विनकारण० ॥१॥ पूछ्यो तबै अपनी मातसैं, राम लखन माता कौन। टसटस

लागे आंसू टपकने, मारयो मन धारयो मौन ॥ विनकारण ॥ २ ॥ नारद मुनि समुझाइयो, पिछलो सकल वृतंत । सुनत उठे योधा खडग लै, बैठ विमान तुरंत ॥ विन०॥ घेरि अजुध्या रणभेरी दई, कांपै सुरग पताल । सोच भयो श्रीरघुवीरको, आये कौन अकाल ॥ विनकारण० ॥४॥ निकसे दोऊ भ्राता जुद्धकूं, खूब मचा घमसान । राम लषन घवरा दिये, तोड्यो रथ काटे बाण ॥ विनकारण० ॥ ५ ॥ हलमूशल धारे रामने, लछमन चक्र सँभार । सातबार फेंक्यो तानके, वृथाही गये सातौं बार ॥ विनकारण० ॥ ६ ॥ हम हरि बल अरु ये किधों उपज्यो सोच अपार । आग बभूला होके फिर लियो, चक्र-प्रलय करतार ॥ विनकारण० ॥ ७ ॥ तब नारद आये भूमि पर, रामलषणढिग जाय । बात कही सब समुझायकै, किसपै कोपे रघुराय ॥ विनकारण० ॥ ८ ॥ पुत्र तुम्हारे दोऊ भुज-बली, लवअंकुश बलवंत । मातबिपति सुन कोपिया, भाख्यो सकल वृतंत ॥ विनकारण० ॥ ९ ॥ भरि आई छाती श्रीरघु-वीरकी, रणकूं दियो है निवार । आय परे सुत चरणमें, लीने दोऊ पुचकार ॥ विनकारण० ॥ १० ॥

११ । वैशाख मास ।

मास विसाख बसंत रुत, सुनि सीताजीकी सार । भागपड़े हनुमतसे बली, ल्याए करि मनुहार ॥ विनकारण० ॥ १ ॥ वज्रजंघ आयो धूमसे, लायो सब परिवार । राम कहैं मैं आनें दूं नहीं, सीता दई मैं निकार ॥ विनकारण० ॥ २ ॥ जो आवै तो आवो इसतरां, कूदो अगनिमझार । देय परीछा

अपने शीलकी, होवे मेरी पटनार ॥विनकारण०॥३॥ सीता सती प्रण धारियो, होवै कुंड तयार । अगन जलावो देरी मत करो, सौ जोजन बिसतार ॥ विनकारण० ॥४॥ साड़ी कसि त्यारी करी, अंग ढक्यो बड़भाग । कुंड खुदायो मनभावतो, चेतन कर दई आग ॥ विनकारण० ॥ ५ ॥ जाय चढी ऊंचे दमदमे, देखैं सब संसार । सत मूरत सूरत सोहनी, मनमैं हर्ष अपार ॥ विनकारण० ॥ ६ ॥ देखैं सुरगण देवता, देखैं भवनपतीस । चंद्र सूरज देखैं ज्योतिषी, देखैं भूत पतीस ॥ विनकारण० ॥ ७ ॥ देखैं सब विद्याधरा, देखैं गण गंधर्व । कमर कसी फौजैं आ पड़ी, देखैं राजा सर्व ॥ विनकारण० ॥ ८ ॥ अगनि लपट ऊठी गगनलौं, तड़तड़ाट भये घोर । कहत प्रजा श्रीरामसों, क्यों प्रभु भए हो कठोर ॥ विनकारण० ॥ ९ ॥ वज्र बचै ना ऐसी अगनिमैं, फाटै धरणि पताल । पर्वत फटि मठ गिर पडैं, हे प्रभु कीजिये टाल ॥ विनकारण० ॥ १० ॥ राम खडग सूत्यो हाथमें, मत कोइ कहो जी बनाय । आज्ञा मानै मेरी जानकी, देवै भरम मिटाय ॥ विनकारण० ॥११॥ हुकम दियो रघुवीरने, शीलपरीक्षा देह । नातर क्यौं आई तू यहां, परजा करै है संदेह ॥ विनकारण० ॥ १२ ॥ पंच परमगुरु वंदिकैं, करि पतिकूं परणाम । छिमा कराई सब जीवसौं, देखैं लछमन राम ॥ विनकारण० ॥१३॥ पुत्र जुगल छोड़े रोवते, सोहैं चंद्रसमान । हरष भरी सतवंती महा, बोली वचन महान ॥ विनकारण० ॥ १४ ॥ जो परपुरुष निहारिकै, मैं कछु कियो है कुभाव । भस्म अगनि मोहि कीजियो, नातर जल हो जाव ॥ विनकारण स्वामी० ॥१५॥

१२। जेठ मास।

जेठ तपै सूरज आकरो, नीचे अगनि प्रचंड। आसपास जल थल सबी, सूकि गए बनखंड ॥ बिनकारण० ॥ १ ॥ कूदपड़ी जलती अगनिमें, शांति भई ततकार। उभरे कँवल अकाश लौं, लीनी अधर सहार ॥ विनकारण० ॥ २ ॥ जल लहरावै बोलैं हँसनी, कर रही मीन कलोल। छत्र फिरैजी उसके सीस पै, इंद्र चँवर रहे ढोल ॥ विनकारण० ॥३॥ शीतल मंद सुगंध जुत, मीठी मीठी चलत बयार। बरषैं मनु अमृत कणी, देव करैं जै जैकार ॥ विनकारण० ॥ ४ ॥ धन्य सती धन सतवंतिनी, धन धन धीरज येह। ध्रिग ध्रिग हम उनकूं करैं, जिनके मनसंदेह ॥ विनकारण० ॥ ५ ॥

बारह भावना सीताजीकी।

सीता भावै मनमें भावना, यह संसार अनित्य। धर्म विना तीनों लोकमैं, शरण सहाई ना मित्त ॥ विनकारण० ॥ ६ ॥ उलट पुलट चाले रहटसा, ये संसारी चक्र। एक अकेलो भटकै आत्मा, क्या पशु पंछी क्या शक्र ॥ विनकारण० ॥ ७ ॥ ना कोई जगमैं आपना, औ न हम काहूके मीत। अशुचि अपावन तनविषै, करम करै विपरीत ॥ विनकारण० ॥ ८ ॥ संवर जल विन ना बुझै, तृष्णा अगनि प्रचंड। कर्म खिपाये विन ना खपै, भटकैं सब ब्रहमंड ॥ बिनकारण० ॥ ९ ॥ दुर्लभबोध जगत्तमैं, दुर्लभ श्रीजिन धर्म। दुर्लभ स्वपथ विचार है, कर्पन डारयो भर्म ॥ विनकारण० ॥ १० ॥ परवस भोगी भारी वेदना, स्ववश

सही नहिं रंच। सास्वत सुख जासों पावती, लई करमने वंच ॥ विनकारण० ॥ ११ ॥ अब मैं सब वेदन सही, कीनी धरम सहाय। परतिज्ञा पूरी करूं, मोह महा दुखदाय ॥ विनकारण ॥ १२ ॥ राम कहै प्यारी चल घराँ, ल्या भुजमैं भुज डार। पाडि शिखा करपै धरि दई, त्याग्यो हम संसार ॥ बिनकारण० ॥ १३ ॥ तुम त्यागी निर दोषकूं, हम त्यागे लख दोष। करिके छिमा मैं संजम लियो, करियो मत अफसोस ॥ बिनकारण० ॥१४॥ गई सतीजी बन खंडकूं, भई अरजिका धीर। उग्र उग्र तप वह करै, सब दुख सहै है शरीर ॥ बिनकारण० पूरी करि परजायकूं, अच्युत सुरगमझार। इंद्र भईजी पुण्य सँजोगसों, भोगै सुक्ख अपार ॥ बिनकारण० ॥ १६ ॥ इति

१६४ चौबीस दंडक।

दोहा—वंदों वीर सुधीरको, महावीर गंभीर।
वर्द्धमान सन्मति महा, देवदेव अतिबीर ॥ १ ॥
गत्यागत्य प्रकाश जो, गत्यागत्य वितीत।
अद्भुत अतिगत सुगति जो, जैनेश्वर जगतीत ॥२॥
जाकी भक्ति विना विफल, गये अनंते काल।
अगिनत गत्यागति धरीं, घट्यो न जगजंजाल ॥३॥
चौबीसौं दंडक विषै, धरी अनंती देह।
लख्यो न निजपद ज्ञानविन, शुद्ध स्वरूप विदेह ॥४॥
जिनवाणीपरसादतैं, लहिये आतमज्ञान।
दहिये गत्यागत्य सब, गहिये पद निर्वान ॥ ५ ॥
चौवीसौं दंडक तनी, गत्यागति सुनि लेहु।
सुनकर विरकत भाव धर, चहुंगति पानी देहु ॥ ६ ॥

चौपाई।

पहिलो दंडक नारिक तनो। भवनपती दसं दंडक भनो॥ ज्योतिसव्यंतरस्वर्गनिवास। थावर पंच महादुखरास॥ ७॥ विकलत्रय अरु नर तिर्यंच। पंचेंद्री धारक परपंच॥ यह चौवीस दंडक कहे। अब सुन इनमें भेद जु लहे॥ ८॥ नारककी गति आगति दोय। नर तिर्यंच पंचेंद्री जोय॥ जाय असैनी पहला लगै। मनविन हिंसाकर्म न पगै॥ ९॥ सरीसर्प दूजे लौं जाय। अरु पक्षी तीजे लौं थाय॥ सर्प जांय चौथे लौं सही। नाहर पंचम आगैं नही॥ १०॥ नारी छट्ठे लगही जाय। नर अरु मच्छ सातवैं थाय॥ एतो नारक आगति कही। अब सुन नारककी गति सही॥ ११॥ नरक सातवेंको जो जीव। पशुगति ही पावै दुखदीव॥ अरु सब नारक मर नर पशू। दोउं गति आवै परवशू॥ १२॥ छट्ठेको निकस्यो जु कदाप। सम्यक सह श्रावग निष्पाप॥ पंचम निकस्यो मुनि हू होय। चौथेको केवलि हू कोय॥ १३॥ तृतिय नर्कको निकस्यो जीव। तीर्थंकर भी हो जगपीव॥ यह नारककी गत्यागती। भाषी जिनवाणीमें सती॥ १४॥ तेरह दंडक देव निकाय। तिनको भेद सुनो मनलाय॥ नर तिर्यंच पंचेंद्री विना। औरनको नहिं सुरपद गिना॥ १५॥ देव मरै गति पांच लहाहिं। भू जल तरुवर नर तिरमांहि॥ दूजे सुरग उपरले देव। थावर है न कह्यो जिनदेव॥ १६॥ सहस्रारतैं ऊंचे स्वरा। मरकर होवै निश्चय नरा॥ भोगभूमिके तिर्यंच नरा। दूजे देवलोकतैं परां॥ १७॥ जाय नहीं

यह निश्चय कही। देवन भोगभूमि नहि गही॥ कर्मभूमियां नर अरु ढोर। इन विन भोगभूमिकी ठौर ॥ १८ ॥ जाइ न तातैं आगति दोइ॥ गति इनको देवनकी होइ ॥ कर्म भूमिया तिर्यग बुद्ध। श्रावकव्रत धर वारम शुद्ध ॥ १९ ॥ सहस्त्रार ऊपर तिर्यंच। जाय नहीं तज है परपंच। अव्रत सम्यक दृष्टी नरा ॥ बारमतैं ऊपर नहिं धरा॥ २० ॥ अन्य-मती पंचागिनि साध। भवनत्रिकतैं जाइ न वाद॥ परिव्राजक त्रिदंडी देह। पंचम परै न उपजै जेह॥ २१ ॥ परमहंस नामैं परमती॥ सहस्रार ऊपर नहिं गती। मोक्ष न पावै परमत मांहि। जैन विना नहिं कर्म नसाहिं ॥ २२ ॥ श्रावक आर्य अणुव्रत धार। बहुरि श्राविकागण अविकार॥ सौलह स्वर्ग परैं नहिं जाय। ऐसो भेद कहैं जिनराय॥ २३ ॥ द्रव्यलिंग-धारी जे जती। नवग्रीवक ऊपर नहिं गती। नवहि अनुत्तर पंचोत्तरा॥ महामुनी विन और न धरा॥२४॥ केई बार जीव सुर भया। पण केइक पद नाहीं गह्या। इंद्र भयो न शची हू भयो। लोकपाल कबहूं नहिं थयो॥ २५॥ लौकांतिक हूवो न कदापि। नहीं अनुत्तर पहुंच्यो आप। ए पद धर बहु भव नहि धरै। अल्पकालमैं मुक्तिहि वरैं॥ २६॥ हैं विमान सर-वारथ सिद्ध। सबतैं ऊंचो अतुल सुरिद्ध॥ ताके सिरपर है शिवलोक। परैं अनंतानंत अलोक॥ २७॥ गत्यागत्य देव-गति भनी। अब सुन भ्रात मनुषगति तनी। चौवीसौं दंडक के मांहि। मनुष जांहि यामैं शक नाहि ॥ २८॥ मोक्ष हु पावे मुनीश। सकल धराको जो अवनीश॥ मुनि विन

मोक्ष नहीं कोऊ वरे । मनुष विना नहिं मुनि है तरे ॥ २९॥
सम्यक दृष्टी जे मुनिराय । भवजल उतरें शिवपुर जाय ।
तहां जाय अविनाशी होय ॥ फिर पीछे आवै नहिं कोय ॥
॥ ३० ॥ रहै शाश्वते शिवपुरमांहिं । आतमराम भयो सक
नांहिं । गति पचीस कहीं नरतनी । आगति फुनि बाईसहि
भनी ॥ ३१ ॥ तेजकाय अरु वाय जु काय । इन विन और
सबै नर थाय । गति पचीस आगति बाईस ॥ मनुषतनी जो
भाखी ईस ॥ ३२ ॥ ताहि सुरासुर आतमरूप । ध्यावै चिदा-
नंद चिद्रूप ॥ तौ उतरो भवसागर जिया । और न शिवपुर
मारग लिया ॥ ३३ ॥ यह सामान्य मनुष्यकी कही । अब सुन
पदवीधरकी सही ॥ तीर्थंकरकी दो आगती । स्वर्ग नरकतैं
आवै सती ॥ ३४ ॥ फेरि न गति धारैं जगदीस । जाय वि-
राजैं जगके सीस ॥ चक्री अर्धचक्रि अरु हली । सुरगलोक
तैं आवैं बली ॥ ३५ ॥ इनकी आगति एक हि जान । गति
की रीति कहूं जु बखानि । चक्रीकी गति तीन जु होय ।
सुरग नरक अरु शिवपुर जोय ॥ ३६ ॥ तप धारै तौ शिवपुर
जांय । मरैं राजमैं नरकहि ठांयें ॥ आखरिमैं है पद निर्वान ।
पदवी धारक बडे प्रधान ॥ ३७ ॥ बलभद्रनकी दोय हि गती
सुरग जांहि कै है शिवपती ॥ तप धारैं ये निश्चय भया । मुक्ति
पात्र ये श्रुतमैं लह्या ॥ ३८ ॥ अर्द्धचक्रि को एकहि भेद ।
नारक होय लहै अति खेद । राजमांहिं ये निश्चय मरैं । तद
भव मुक्तिपंथ नहिं धरै ॥ ३९ ॥ आखिर पावै जिनवरलोक ।
पुरुष शलाका शिवके थोक ॥ ये पद कबहुं न पाये जीव ॥ ये

पद पाय होय शिवपीव ॥४० और हु पद कइयक नहिं गहे। कुलकर नारदपद हु न लहे॥ रुद्र भए न मदन ना भए। जिनवर मातपिता नहि थये ॥४१॥ ये पद पाय जीव नहिं रुले। थोडेहि दिनमें जिन सम तुलै॥ इनकी आगति श्रुतमें जानि गतिको भेद कहूं जो बखानि॥ ४२॥ कुलकर देवलोक ही गहै। मदन सुरग शिवपुरको लहैं। नारद रुद्र अधोगति जाय। लहैं कलेश महादुख पाय ॥ ४३ ॥ जन्मांतर पावैं निरवान। बडे पुरुष जे सूत्र प्रमान॥ तीर्थंकरके पिता प्रसिद्ध स्वर्ग जांय कै हो हैं सिद्ध॥ ४४ ॥ माता स्वर्गलोक ही जाय आखिर शिवपुरलोक लहाय। ये सब रीति मनुषकी कही। अब सुन तिरयंचन गति सही॥ ४५॥ पंचेंद्री पशु मरण कराय। चौवीसौं दंडकमै जाय॥ चौवीसौं दंडकतैं मरै। पशु होय तौ नाह न करै॥ ४६॥ गति आगती कही चौबीस। पंचेंद्री पशुकी जिन ईस। तौ परमेश्वरको पथ गहो॥ चौविस दंडक नाहीं लहौ॥ ४७॥ विकलत्रयकी दश ही गती। दश आगती कहीं जगपती॥ पांचों थावर विकल जु तीन। नर तिर्यंच पंचेंद्री लीन ॥ ४८॥ इनहीं दशमैं उपजें जाय। पृथिवी पानी तरवर काय॥ इनहींतैं विकलत्रय आय। इन ही दसमें जन्म कराय॥ ४९॥ नारक बिन सब दंडक जोय पृथ्वी पानी तरुवर सोय। तेज वायु मरि नवमें जाय। मनुष होय नहिं सूत्र कहाय॥ ५०॥ थावर पंच विकलत्रय ठौर। ये नवगति भाषै मदमोर। दसतैं आवै तेज अरु वाय। होय सही गावै जिनराय ॥५१॥ ये चौईस दंडके कहे। इनकूं त्याग

परम पद लहे ॥ इनमैं रुलै सु जगको जीव । इनतैं रहित सु त्रिभुवनपीव ॥५२॥ जीवईसमैं और न भेद । ए करमी वे कर्म उच्छेद ॥ कर्म बंध जोलों जगजीव। नाशे कर्म होय शिव पीव ॥

दोहा—मिथ्या अव्रत योग अर, मद परमाद कषाय ।
इंद्रियविषय जु त्याग ये, भ्रमन दूरि ह्वै जाय ॥
जिन विनगति भवतैं धरी, भयी नहीं सुरझार ।
जिन मारग उर धारिये, हो हैं भवदधि पार ॥ ५५ ॥
जिन भज सब परपंच तज, बडी बात है येह ।
पंच महाव्रत धारिकै, भवजलकों जल देह ॥ ५६ ॥
अंतर करण जु सुद्ध ह्वै, जिनधर्मी अभिराम ।
भाषा कारण कर सकूं, भाषी दौलतराम ॥ ५७ ॥ इति

१६५ । श्रीचौवीसतीर्थंकरोंके चिह्न ।

वृषभनाथका 'वृषभ' जु जान । अजितनाथके 'हाथी' मान ॥
संभवजिनके 'घोडा' कहा । अभिनंदनपद 'बंदर' लहा ॥ १ ॥
सुमतिनाथके 'चकवा' होय । पद्मप्रभके 'कमल' जु जोय ॥
जिनसुपासके 'सथिया' कहा । चंद्रप्रभपद 'चंद्र' जु लहा ॥२॥
पुष्पदंतपद 'मगर' पिछान । 'कल्पवृक्ष' शीतलपद मान ॥
श्रीश्रियांसपद 'गेंडा' होय । वासुपूज्यकै 'भैंसा' जोय ॥ ३ ॥
विमलनाथपद 'शूकर' मान । अनँतनाथके 'सेही' जान ॥
धर्मनाथके 'वज्र' कहाय । शांतिनाथपद 'हिरन' लहाय ॥ ४ ॥
कुंथुनाथके पद 'अज' चीन । अरजिनके पद चिह्न जु 'मीन' ॥
मल्लिनाथ पद 'कलसा' कहा । मुनिसुव्रतके 'कछुआ' लहा ॥५॥
'लालकमल' नमिजिनके जोय । नेमिनाथ पद 'संख' जु जोय ॥
पार्श्वनाथके 'सर्प' जु कहा । वर्द्धमानपद 'सिंह' हि लहा ॥६॥

१६६ संक्षिप्त सूतक विधि ।

सूतकमें देव शास्त्र गुरुकी पूजन प्रक्षालादिक करना, तथा मंदिरजीकी जाजम वस्त्रादिको स्पर्शन करना नहिं चाहिये। सूतकका समय पूर्ण हुये बाद पूजनादि कर के पात्रदानादि करना चाहिये।

१—जन्मका सूतक दश दिन तक माना जाता है।

२—यदि स्त्रीका गर्भपात (पांचवें छठे महीनेमें) हो तो जितने महीनेका गर्भ पात हो उतने दिनका सूतक माना जाता है।

३—प्रसूति स्त्रीको ४५ दिनका सूतक होता है कहीं कहीं चालीस दिनका भी माना जाता है। प्रसूति स्थान एक मास तक अशुद्ध है।

४—रजःस्वला स्त्री चौथे दिन पतिके भोजनादिकके लिये शुद्ध होती हैं परन्तु देवपूजन, पात्रदानके लिये पांचवें दिन शुद्ध होती हैं। व्यभिचारिणी स्त्रीके सदा ही सूतक रहता है।

५—मृत्युका सूतक तीन पीढ़ी तक १२ दिनका माना जाता है। चौथी पीढ़ीमें छह दिनका, पांचवीं छट्ठी पीढी तक चार दिनका, सातवीं पीढीमें तीन, आठवीं पीढ़ी में एक दिन रात, नवमी पीढीमें स्नानमात्रसे शुद्धता होजाती है।

६—जन्म तथा मृत्युका सूतक गोत्रके मनुष्यको पांच दिनका होता है। तीन दिनके बालककी मृत्युका एकदिनका आठ वर्षके बालककी मृत्युका तीन दिनतकका माना जाता है। इसके आगे १२ दिनका।

७—अपने कुलके किसी गृहत्यागीका सन्यास मरण, वा किसी कुटुम्बीका संग्राममें मरण होजाय तो एक दिनका सूतक माना जाता है।

८—यदि अपने कुलका कोई देशांतरमें मरण करै और १२ दिन पहले खबर सुने तो शेष दिनोंका ही सूतक मानना चाहिये। यदि १२ दिन पूर्ण होगये हों तो स्नानमात्र सूतक जानो।

९—गौ, भैंस, घोड़ी आदि पशु अपने घरमें जनै तो एक दिनका सूतक और घरके बाहर जनै तो सूतक नहिं होता। दासी दास तथा पुत्रीके घरमें प्रसूति होय तो एक दिन, मरण हो तो तीन दिनका सूतक होता है। यदि घरसे बाहर हो तो सूतक नहीं। जो कोई अपनेको अग्नि आदिकमें जलाकर वा विष शस्त्रादिसे आत्महत्या करै तो छह महीने तकका सूतक होता है। इसीप्रकार और भी विचार हैं सो आदिपुराणसे जानना।

१०—बच्चा हुये बाद भैंसका दूध १५ दिन तक, गायका दूध १० दिन तक, बकरीका ८ दिन तक अभक्ष्य (अशुद्ध) होता है। देशभेदसे सूतक विधानमें कुछ अधिक भी होता है परन्तु शास्त्रकी पद्धति मिलाकर ही सूतक मानना चाहिये।

* समाप्त *

सुलभ जैन-ग्रंथमाला

आजकल बहुतसे धन-लोलुपी बुकसेलर पतले कागज और बारीक अक्षरोंमें मांसके बेलनसे अनेक ग्रन्थ छपा छपाकर उनकी दुगुणी तिगुणी न्योछावर रखकर लंबे चौडे इस्तहार दे देकर भोलेभाले जैनी भाइयोंको ठग रहे हैं, और महा अपवित्रतासे छपे हुये ग्रन्थोंका प्रचार कर रहे हैं, इसकारण संस्थाने यह 'सुलभ जैनग्रन्थमाला' प्रकाशित करना प्रारंभ किया है। इस ग्रन्थमालामें दर्शनपाठ सूत्र भक्तामर आदि ३२ ग्रन्थ छप गये। हरिवंशपुराण पद्मपुराण आदि बड़े २ भाषा ग्रन्थ सर्वसाधारण भाइयोंके हितार्थ छपाकर बहुत थोड़ी न्योछावरमें देनेका बीड़ा उठाया है। सो सब भाइयोंको सबसे सस्ती न्योछावरमें चिकने पुष्ट कागजोंमें बडे २ अक्षरोंमें कपडेके बेलनसे पवित्रताके साथ छपे हुये ग्रन्थ इसी संस्थासे ही लेना चाहिये, संस्थाकी बराबर सस्ती न्योछावरमें कोई भी पुस्तकविक्रेता कदापि नहीं दे सक्ता। अगर ऐसी सस्ती न्योछावरमें कोई बुकसेलर देनेका इस्तहार देवे तो समझ लेना चाहिये कि या तो कागज पतले रद्दी हैं या अक्षर बारीक हैं या उस ग्रन्थको संक्षेप करके थोड़ा पाठ (छोटा ग्रन्थ) छपाया है, क्योंकि—वे जो ग्रन्थ छपाते हैं वे कुछ पैदा करनेकेलिये छपाते हैं और संस्था सिर्फ ज्ञानप्रचारके लिये छपाती है, पैदा करनेके लिये यह संस्था स्थापित नहिं हुई है। यह बात ध्यानमें रखलें।

व्यवस्थापक—

भारतीय जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था

९ विश्वकोष लेन, पो० बाघबाजार, (कलकत्ता)